CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
२८

महाकविभासप्रणीतं

प्रतिमानाटकम्

'विमला'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः—

आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र

साहित्याचार्य, व्या० शा०

एम० ए० (द्वितय), पी-एच्० डी०, डिप्-इन-एड्०

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

SCANNED

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
२८

महाकविभासप्रणीतं

प्रतिमानाटकम्

'विमला'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार—
आचार्य जगदीशचन्द्रमिश्रः
बी० ए० (आनर्स), एम० ए० (हिन्दी-संस्कृत)
डिप्-इन-एड्०, रिसर्चस्कॉलर, साहित्याचार्यः

Bharatiya Vidya Bhawan's Sri Sankaracharya Mahavidyalaya
565

प्रकाशक व पुस्तक विक्रेता
खण्डेलवाल एण्ड संस
☎ (S) 443101 (R) 442100
अठखम्भा बाजार, वृन्दावन - 281121

चौखम्बा सु… न

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकाशक—

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३३३४३१

सर्वाधिकार सुरक्षित

संस्करण १९९७

मूल्य ४०-००

अन्य प्राप्तिस्थान—

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए., जवाहरनगर, बंगलो रोड

दिल्ली ११०००७

Bharatiya Vidya Bhawan's ... Mahavidyalaya
*565

प्रधान वितरक—

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३२०४०४

मुद्रक—

श्रीजी मुद्रणालय

वाराणसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

THE

CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA

28

PRATIMĀNĀṬAKA

OF

MAHĀKAVI BHĀSA

Edited with

'VIMALĀ' SANSKRIT & HINDĪ COMMENTARIES

By

Acharya Jagadisha Chandra Mishra

B. A. (Hons). M. A. (Sanskrit-Hindi) Dip. In Ed.

Research Scholar, Sahityacharya.

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

VARANASI

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
(Oriental Publishers & Distributors)
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
VARANASI 221001

Also can be had of
CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A., Jawaharnagar, Bungalow Road
DELHI 110007
Telephone : 236391

*

Sole Distributors
© CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)
Post Box No. 1069
VARANASI 221001

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भूमिका

संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति और विकास

नाटक के स्वरूप एवं लक्ष्य

कलाकार की मानसिक अभिव्यक्ति ही कला का बाह्य रूप धारण करती है। अभिव्यक्ति के बाह्य उपकरणों को मूर्त्त आधार या सामग्री भी कहते हैं इस भेद के आधार पर कला का वर्गीकरण किया गया है इस प्रकार कलाकृतियों के दो विभाग किये जाते हैं—उपयोगी कला एवं ललितकला। पुनः ललितकला पाँच भागों में विभक्त की जाती है—वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला एवं काव्यकला।

काव्यकला के दो प्रमुख भेद माने गये हैं-गद्यकाव्य एवं पद्यकाव्य। नाटक दोनों ही के अन्तर्गत आता है। नाटक ही काव्य का एक ऐसा अंग है जो श्रवणेन्द्रिय और नेत्रेन्द्रिय दोनों ही के द्वारा मन को आनन्दित करने की क्षमता रखता है। इस प्रकार तृप्तिविधान के आधार पर काव्य के पुनः दो भेद हो जाते हैं—श्रव्य एवं दृश्य। नाटक को हम नाट्यकला भी कहते हैं।

क्षेत्र के व्यापक आयाम में नाट्यकला को सर्वाधिक रम्य काव्यकला माना गया है—'काव्येषु नाटकम् श्रेष्ठम्'। संस्कृत में दृश्यकाव्य को रूपक कहा गया है। संस्कृत भाषा में नाटक रूपक का ही एक भेद है। संस्कृत काव्यशास्त्र में रूपक के दश भेद हैं।[1] इन रूपकों के साथ उपरूपकों की भी चर्चा है। ये उपरूपक १८ हैं।[2]

---

१. नाटकमथ प्रकरणम् भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥ सा० दर्पण, ६।३।

२. नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्।
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङ्खणं रासकं तथा॥
संलापकम् श्रीगदितं शिल्पकञ्च विलासिका।
दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीको भाणिकेति च॥
अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणि मनीषिणः।
विना विशेषं सर्वेषाम् लक्ष्य नाटकवन्मतम्॥
—साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६ श्लो० सं० ६।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पाश्चात्य जगत् में नाटक के प्रसंग में अनुकरण का व्यवहार अरस्तू का मौलिक प्रयोग नहीं कहा जा सकता है। अरस्तू से पूर्व ग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने इसी अनुकरण के आधार पर काव्य का तिरस्कार किया था। उसने काव्य को अनुकरण होने के कारण ही सत्य से दूर समझ कर इसकी अवहेलना की थी।[१] उनका आरोप था कि एक तो भौतिक पदार्थ स्वयं सत्य की अनुवृत्ति है और फिर नाटक या काव्य तो इन भौतिक पदार्थों की भी अनुवृत्ति है। अतः अनुकरण का भी अनुकरण होने के कारण यह और भी त्याज्य है। उनके अनुसार विभिन्न कलाकार अपने-अपने माध्यम से उपकरणों के अनुसार भौतिक जीवन और जगत् का अनुकरण करते हैं—चित्रकार रूप और रंग के द्वारा, अभिनेता वेशभूषा, आंगिकचेष्टा तथा वाणी के द्वारा। अरस्तू ने इसी प्रचलित शब्द को ग्रहण किया, किन्तु उसमें नया अर्थ भर दिया।

बुचर के अनुसार अरस्तू के अनुकरण शब्द का अर्थ है सादृश्यविधान या मूल का पुनः उत्पादन, सांकेतिक उल्लेखन नहीं।[२] पाट्स ने अनुकरण का अर्थ इस प्रकार किया है—अपने पूर्ण अर्थ में अनुकरण का आशय है ऐसे प्रभाव का उत्पादन, जो किसी स्थिति, अनुभूति अथवा व्यक्ति के शुद्ध प्रकृति रूप से उत्पन्न होता है। इनकी दृष्टि में अनुकरण का अर्थ है आत्माभिव्यंजन से भिन्न जीवन की अनुभूति का पुनः सृजन।[३] एटकिन्स ने सृजनात्मक दर्शन की क्रिया अथवा प्रायः पुनः सृजन का ही दूसरा नाम अनुकरण माना है।[४] स्टोक जेम्स ने इसे जीवन के कल्पनात्मक पुनः निर्माण का पर्याय माना है। उनकी दृष्टि में अनुकरण से अभिप्राय है नाटक में जीवन का वस्तुपरक अंकन, जिसे हम जीवन का कल्पनात्मक पुनः निर्माण कह सकते हैं।[५]

काव्य के अनुकरण-सिद्धान्त के सम्बन्ध में ऊपर लिखित पाश्चात्य विद्वानों के विभिन्न मतों का अपना एक अलग महत्त्व है। किन्तु प्रकृति के अर्थ को इस प्रकार सीमित करने का कोई कारण नहीं प्रतीत होता है। वस्तुतः प्रकृति यहाँ जीवन के समग्र रूप अर्थात् अन्तर्बाह्य दोनों रूपों की समष्टि का ही पर्याय है, अतः उनका अनुकार्य इन तीन प्रकार की वस्तुओं में से ही कोई एक हो सकती है—जैसी वे थीं या हैं, जैसी वे कही या समझी जा जाती हैं अथवा जैसी वे होनी चाहिये।

उक्त तीनों प्रकारों से प्रथम प्रकृति अथवा जीवन के बहिरंग पक्ष का द्योतक है, शेष दोनों अंतरंग के। जो घटित हो चुका है वह जीवन का मूर्त अंग बन जाता है और जो

---

1. Art is imitation–Aristotle.
२. अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्, रूपकं तत्समारोपत्— ।
3. Fine art is a copy of twice remove from truth.
4. Aristotle's theory of poetry and Fine Art, page 118.
5. Aristotle on the theory of poetry, Preface—Page 8.
6. Literary Criticism—Page 79.
7. The making of Literature—Page 53.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

घटित हो सकता है, वह अमूर्त्तकल्पना का अंश है। मूर्त्त देश और काल की सीमा में परिबद्ध होने के कारण विशिष्ट रहता है, इसके विपरीत अमूर्त्त, भाव, विचार एवं कल्पना की सीमाओं से मुक्त होने के कारण सामान्य अर्थात् सार्वभौम तथा सार्वकालिक बन जाता है। विशिष्ट का सत्य सीमित है, सामान्य का असीम, इसलिये यह भव्यतर है, इसमें दार्शनिकता अधिक है। इस प्रकार जीवन के मूर्त्त पक्ष के चित्रण में ऐन्द्रिय ज्ञान का प्राधान्य रहता है और इसलिए वह वस्तुपरक है। अमूर्त्त पक्ष का चित्रण निश्चय ही मुख्यतया कल्पना, अनुभूति तथा विचार पर आश्रित रहता है अर्थात् भावपरक होता है।

किन्तु, अरस्तू के इस अनुकरणसिद्धान्त का क्रोचे के सहजानुभूतिसिद्धान्त से सीधा विरोध है। क्रोचे के मतानुसार कला मूलतः सहजानुभूति है, जो अभिव्यक्ति से अभिन्न है। कला का मूल रूप कलाकार के मानस में घटित होता है—रंग, रेखा, शब्द, लय आदि में उनका अनुकरण सर्वथा आनुषंगिक घटना है। इस प्रकार अरस्तू का अनुकरण क्रोचे के सिद्धान्त के अनुसार कलासृजन के प्रसंग में केवल आनुषंगिक प्रक्रिया मात्र रह जाता है।

भारतीय काव्यशास्त्र के लिए ये अनुकरण शब्द नये नहीं हैं। आचार्य भरत ने ही नाटक को लोकस्वभाव का अनुकरण[1] वा लोकवृत्त का अनुकरण[2] माना है। स्वभाव तथा वृत्त शब्दों का प्रयोग यहाँ व्यापक अर्थ में किया गया है। इसके अन्तर्गत लोकजीवन के समस्त अन्तर्बाह्यरूपों का–वेशभूषा, कार्यव्यापार, वाणी, व्यवहार, भावादि सभी का समावेश है। भरत ने विस्तार से रंगमंच पर इनके अनुकरण का विधान किया है। नाट्यशास्त्र में केवल वेशभूषा, क्रियाकलाप आदि बाह्य रूपों का ही नहीं—नाना अनुभवों के द्वारा स्थायी, संचारी आदि मानसिक विकारों के अभिनय का ही सूक्ष्म विधान है। किन्तु वास्तव में यहाँ अनुकरण से अभिप्राय प्रायः अभिनय ही है, जैसा भरत के अनुयायी धनञ्जय ने अपने दशरूपक में स्पष्ट किया है।[3]

अवस्था का अनुकरण ही नाट्य है। जहाँ काव्य में निबद्ध या वर्णित धीरोदात्त या धीरोद्धत, धीरललित, धीरप्रशान्त प्रकृति के नायकों का आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक इन चार ढंग के अभिनयों के द्वारा अवस्थानुकरण किया जाता है, वह नाट्य है।[4] अवस्थानुकरण से यह तात्पर्य है कि चाल-ढाल, वेशभूषा, आलाप-प्रलाप आदि के द्वारा पात्रों की लौकिक अवस्था का अनुकरण इस ढंग से किया जाय कि नटों में पात्रों की तादात्म्यापत्ति हो जाय।

---

१. लोकस्वभावानुकरणाच्च नाट्यस्य सत्त्वमीप्सितम्—नाट्यशास्त्र (काव्यमाला) पृ० १० ।

२. लोकवृत्तानुकरणम् शास्त्रमेतन्मया कृतम् । वही ।

३. अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् । दशरूपक—अ० १ श्लो० ६ ।

४. काव्योपनिबद्धधीरोदात्ताद्यवस्थानुकारश्चतुर्विधाभिनयेन तादात्म्यापत्तिर्नाट्यम् ।
दशरूपक—पृ० ५ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यही नाट्यरूप रूपक भी कहलाता है ।[१] जैसे रूपक अलंकार में हम देखते हैं कि मुख पर चन्द्रमा का आरोप कर दिया जाता है, वैसे ही नाट्य में नट पर रामादि पात्रों की अवस्था का आरोप किया जाता है ।[२] ऊपर लिखित विवरणों से अनुकरण या अनुकृति के अर्थों में संदेह नहीं रह जाता है। नाट्य में जिस अनुकृति की व्यवस्था है वह निश्चित रूप से नटकर्म ही है, कविकर्म नहीं। अनुकृति का विषय अनुकार्य है। भारतीय काव्यशास्त्र में सामान्यतः अनुकरण का ही अर्थ मान्य रहा है। भरतसूत्र के व्याख्याता भट्टलोल्लट ने इसे और स्पष्ट कर दिया है। उनके अनुसार ललना उद्यान आदि आलंबन-उद्दीपन विभावों द्वारा उत्पन्न होकर कटाक्ष भुजाक्षेप आदि अनुभावों द्वारा प्रतीतियोग्य बनकर निर्वेदादि व्यभिचारीभावों से परिपुष्ट होकर रत्यादिक स्थायी भाव ही मुख्य रूप से अनुकार्य रामादि में रस रूप में परिणत हो जाता है। साथ ही नट में भी उसका आभास प्राप्त होता है, क्योंकि वह रामादि के रूप का अपने ऊपर यथावत् आरोप कर लेता है ।[३] गोविन्द ठाकुर ने इस मत में थोड़ा संशोधन कर इसे और स्पष्ट रूप दिया है ।[४] अभिनव गुप्त ने भी अभिनव-भारती में अनुकार शब्द का प्रयोग नटकर्म के लिए ही किया है ।[५] इस प्रकार इन उद्धरणों में रामादि के लिए अनुकार्य, अभिनेता के लिए अनुकर्त्ता और अभिनय के लिए अनुकरण शब्द का प्रयोग है। विश्वनाथ ने इस तथ्य को और स्पष्ट करते हुए कहा है कि रामादि अनुकार्य की रति आदि का उद्‌बोध रस नहीं हो सकता ।[६] इसका तात्पर्य है कि इस देश में रंगमंच के प्रयोगविज्ञान को ही अनुकरण कहा गया है, कविव्यापार को नहीं। आदिम यवनाचार्य ने भी प्रायः इस स्वतःस्पष्ट तथ्य को मौलिक रूप से यथावत् ग्रहण किया था और इसी के आधार पर वहाँ काव्य के विषय में अनुकरण सिद्धान्त का

---

१. रूपकम् तत्समारोपात्—द० रू० पृ० ४ ।

२. नटे रामाद्यवस्थारोपेण वर्त्तमानत्वात् रूपकं मुखचन्द्रादिवत् इत्येकस्मिन्नर्थे प्रवर्त्तमानस्य शब्दत्रयस्य 'इन्द्रः पुरन्दरः शक्रः' इतिवत् प्रवृत्तिनिमित्तभेदो दर्शितः । वही ।

३. एतद्विवृण्वते, विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालम्बनोद्दीपनकारणं रत्यादिको भावो जनितः । अनुभावैः कटाक्षभुजाक्षेपप्रभृतिभिः कार्यैः प्रतीतियोग्यः कृतः, व्यभिचारिभिः निर्वेदादिभिः सहकारिभिरुपचितो मुख्यया वृत्या रामादावनुकार्ये तद्रूपतानुसंधानात्······प्रतीयमानो रस इति भट्टलोल्लटप्रभृतयः—दशरूपकं पृ० ५ ।

४. रामादिगतसीताविषयकरत्यादिरेव रसः सहृदयेन काव्योपात्तलिङ्गैरादावनुमीयते । ततस्तस्य कमनीयविभावाद्यभिनयप्रदर्शननिपुणे रामाद्यनुकारिणि नटे सादृश्यज्ञानरूपदोषादारोपः साक्षात्कारात्मको धर्म्यंशे लौकिक आरोप्यांशे त्वलौकिको रामोऽयं सीताविषयकरतिमा-नित्याकारकचमत्कृतिरिति हेतुः ।—काव्यप्रदीप पृ० ६३ ।

५. नहि नटो रामसादृश्यं स्वात्मनः शोकं करोति, सर्वथैव तत्र तस्याभावात् भावेनानुकारत्वात् । अभि० भारती पृ० ३७ ।

६. अनुकार्यस्य रत्यादेरुद्‌बोधो न रसो भवेत् ॥ सा० पृ० ३।४८ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जन्म हुआ था। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि भारतीय काव्यशास्त्र में कविकर्म के लिए 'अनुकरण' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है।' यहाँ काव्य को दिव्य प्रतिभाजन्य अलौकिक सिद्धि माना गया है; कला नहीं। काव्य विधा है—वरन् विधाओं में भी श्रेष्ठ है, किन्तु अभिनयकला उपविधा है।[1] अभिनेताओं की अपेक्षा यहाँ कवियों को बड़ा माना गया है और अभिनय की अपेक्षा काव्य को। काव्य की इसी बहुमान्यता के कारण 'अनुकरण' शब्द का प्रयोग काव्य के लिए नहीं अपितु कला अर्थात् अभिनय, नृत्त, चित्र आदि के लिए किया गया है।[2] अतः निर्विवाद रूप से इस देश में कवि का कर्तृत्व ही स्वीकार किया गया है, अनुकर्तृत्व नहीं—कविप्रतिभा कारयित्री है, अनुकारयित्री नहीं। काव्य कारण है, अनुकरण नहीं।

फलतः हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि काव्य और कला दोनों अलग-अलग तत्त्व हैं। इस दृष्टि से अरस्तू और भारतीय आचार्यों का मूल मन्तव्य तत्त्वतः भिन्न नहीं है। लक्ष्य तक पहुँचने के दोनों के मार्ग भिन्न हैं। दोनों के यात्रारम्भ भी दो स्थान से प्रारंभ हैं पर गन्तव्य दोनों का एक ही है। अरस्तू का कवि प्लेटो द्वारा तिरस्कृत अनुकर्त्ता है और भारतीय आचार्यों का कवि वेदवन्दित 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः' है। अतएव अरस्तू कवि के तिरस्कार का परिशोध करने के लिए प्रयत्नशील है और भारतीय आचार्य उसके अतिरंजित स्तवन को विवेकसम्मत रूप देने के लिए। एक ने अनुकरण की हीनता का उन्नयन किया है, दूसरे ने सृजन की अतिरंजना का संतुलन, पर दोनों ने नाटक को मानव तथा मानवेतर प्रकृति का अनुकरण कर उसके द्वारा आनन्द की उत्पत्ति या रसोद्बोध का साधन माना है। ये केवल बाह्य प्रकृति का ही अनुकरण नहीं करते, प्रत्युत मानव की अन्तःप्रकृति को, उसके मानसिक भावों को भी अनुकृत करते हैं। एक कुशल नाटकार अपने पात्र के मनोगत रागादि को भी ठीक उसी तरह वर्णित करता है, जैसे उसके बाहरी रूप को। किसी भी नाटक की सफलता भी तभी मानी जाती है, जब कि नाटककार ने पात्रों की आभ्यन्तर प्रकृति को सुन्दर तथा मार्मिक रूप से अभिव्यक्त किया हो। भारतीय अलंकारशास्त्र में रससिद्धान्त की महत्ता इसी ओर संकेत करती है और दृश्यकाव्य के क्षेत्र में इसकी आत्मरूप में प्रतिष्ठा भरत मुनि के भी बहुत पहले नन्दिकेश्वर या कई अन्य आचार्यों द्वारा हो चुकी थी। इस प्रकार नाटक का एक मात्र लक्ष्य मानव तथा मानवेतर प्रकृति का चित्रण है।

नाटक की उत्पत्ति और विकास

(१) परम्परा का द्युलोकवाद

भारतीय परम्परा के अनुसार जैसा नाट्यशास्त्र में बतलाया गया है, नाटक की उत्पत्ति त्रेतायुग में ब्रह्मा के द्वारा की गई थी। सत्ययुग में सभी प्राणी अत्यन्त सुखी थे। उन्हें किसी

१. अतः अभिनेतृभ्यः कवीन् एव बहुमन्यामहे, अभिनयेभ्यः काव्यमेवेति–भोज, शृंगार-प्रकाश।

२. यथा नृत्ते तथा चित्ते त्रैलोक्यानुकृतिः स्मृता। चित्रसूत्र।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकार के मनोविनोद की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु त्रेतायुग के आते ही संसार में दुःखों का आविर्भाव हुआ। अतः देव तथा दानव दोनों मिलकर ब्रह्माजी के पास गये और कहा कि संसार के दुःखों से क्षणिक मुक्ति के लिए अथवा मनोविनोद के लिए, हे पितामह! हमें कोई ऐसी वस्तु प्रदान करें जिससे हमारा मनोरंजन तो हो ही, क्षण भर के लिए हम अपने सांसारिक दुःख को भी भूल जाँय। ब्रह्मा उनकी प्रार्थना से तुष्ट होकर ध्यानावस्थित हुए। फिर उन्होंने सांसारिक जीवों के मनोरञ्जनार्थ नाट्यवेद को प्रकट किया। इसके लिए उन्होंने चारों वेदों से सहायता ली। ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर नाट्यकला की सृष्टि की और इसे पंचम वेद कहकर प्रसिद्ध किया। इसमें भगवान् शंकर ने ताण्डवनृत्य, भगवती पार्वती ने लास्य नृत्य, एवं भगवान् विष्णु ने चारों वृत्तियों का समावेश कर इसमें पूर्ण कलात्मकता उत्पन्न कर दी। इतना ही नहीं स्वर्ग के शिल्पी विश्वकर्मा ने इसके लिए एक रंगमंच का निर्माण किया। सर्वप्रथम इन्द्रध्वज पर्व पर त्रिपुरदाह एव समुद्रमंथन नाटक अभिनीत हुए। ब्रह्मा ने नाटक खेलने के लिए भरत मुनि को सौ अप्सरायें भी इस लिए सौंपी कि मुनि उन्हें नाट्यकला की व्यावहारिक शिक्षा दें। मर्त्यलोक तक इस कला को पहुँचाने का भार भरत मुनि को सौंपा गया। इस प्रकार द्युलोक से यह नाट्यकला मर्त्यलोक में पहुँची। इस भरत उपाख्यान में भारतीय परम्परा नाटकों को दैवी उत्पत्ति मानती है।

नाट्यवेद के विकासक्रम में कुछ तथ्य विचारणीय हैं—

(१) भरत के नाट्यशास्त्र की रचना के पूर्व भारतीय नाटक तथा भारतीय रंगमंच पूर्णतः विकसित हो चुके थे।

(२) नाट्यकला के निर्माण में चारों वेदों का योग है।

(३) पहले नर-नारी दोनों अभिनय करते थे।

(४) सभी नाटक धार्मिक पर्वों पर ही खेले जाते थे।

(५) वैदिक काल में नाटक की सृष्टि नहीं हुई थी।

धार्मिक भावना या मृतकपूजावाद

डॉ० रिज्वे का विचार है कि सारे संसार में नाटकों की उत्पत्ति मृतात्माओं के प्रति प्रकट की हुई श्रद्धा से हुई।[२] इनकी मान्यता है कि मृत वीरों के शव पहले सुरक्षित रखे जाते थे और उनके श्राद्ध के दिन उनकी वीरतापूर्ण जीवनी का प्रदर्शन होता था। उसी परम्परा को भारत में रामलीला और कृष्णलीला के साथ जोड़कर यह निष्कर्ष निकाला है कि ये लीलायें भी वीरपूजा का ध्वंसावशेष हैं और भारत में भी वीरपूजा से ही नाटकों की उत्पत्ति हुई है। डॉ० रिजवे के इस मत को कई यूरोपियन विद्वान् नहीं मानते।

---

१. जग्राह पाठ्यम् ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥—भरत, नाट्यशास्त्रम्।

२. संस्कृत साहित्य का इतिहास by B. P. Saxena. Page—91.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मे-पोलवाद

डॉ० कीथ ने ऋतु परिवर्तन के समय होने वाले उत्सवों, नृत्यगान से नाटकों की उत्पत्ति मानी है। पाश्चात्य विद्वान् इसे (May Pole) वाद कहते हैं। पाश्चात्य देशों में मई का महीना अत्यन्त आनन्दप्रद होता है। इस माह से वहाँ खूब उत्सव होते हैं, लोग नाचते कूदते हैं तथा आनन्द मनाते हैं। इतना ही नहीं, वे लोग एक लम्बा बांस गाड़कर उसके नीचे इकट्ठे होते हैं और सभी स्त्री-पुरुष मिलकर साथ ही साथ नृत्य करते हैं। भारतवर्ष में इन्द्रध्वज का उत्सव भी लगभग इसी प्रकार हुआ करता था। इससे सिद्ध होता है कि नाटकों की उत्पत्ति वसन्त में मनाये जाने वाले त्यौहारों के आधार पर हुई होगी। यह तो स्पष्ट ही है कि सारे संसार में वसन्त का आगमन सभी प्राणियों के लिए सुखद होता है। अतः उसी समय सभी सभ्य जातियाँ प्रायः उत्सव मनाती हैं।[1] किन्तु इस वाद में यही दोष दिखाई देता है कि 'मे-पोल नृत्य' का सम्बन्ध इन्द्रध्वज पर्व से जोड़ा गया है। मे-पोल वसन्त में होता है जबकि इन्द्रध्वज का पर्व भारत में वर्षा के अन्त में हुआ करता है, क्योंकि वह इन्द्र की-मेघ की–विजय का सूचक है। भरत के नाट्यशास्त्र में भी इन्द्रध्वज का उल्लेख मिलता है।

कृष्णोपासनावाद

इस सिद्धान्त के अनुसार नाटकों की उत्पत्ति कृष्ण की उपासना से सम्बन्धित बतलायी गयी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कृष्णोपासना के कई अंग इस प्रसंग में बड़े महत्त्वशाली हैं। उदाहरण के लिए जैसे रथयात्रायें, नृत्य, वाद्य और गीत तथा लीलायें सभी ऐसे उपकरण हैं जो संस्कृत नाटक के निर्माण में सहायक सिद्ध हुए हैं। इसी मत के आधार पर विद्वानों की राय है कि संस्कृत नाटक का सर्वप्रथम विकास कृष्णोपासना के आधार पर उसके प्रमुख स्थान शूरसेण प्रदेश में हुआ। यह भी सर्वमान्य नहीं है क्योंकि राम, शिव आदि अन्य देवताओं की प्रसिद्ध उपासनाओं ने भी भारतीय नाटक के विकास में अवश्य सहयोग दिया होगा। बाद में उसकी उपेक्षा की गई है।

लोकप्रिय स्वाँगवाद

प्रो० हिलब्रैंट तथा स्टेनकोनो का विचार है कि भारतवर्ष में पहले लोकप्रिय स्वांग अधिक प्रचलित थे और उन स्वांगों से ही नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ है। इन स्वांगों में रामायण तथा महाभारत के आख्यान मिलाकर ही नाटकों की कथावस्तु तैयार की गई होगी। किन्तु इस मत का खण्डन डॉ० कीथ ने किया है। उनका मत है कि नाटक के प्रचार

---

१. अयं ध्वजमहः श्रीमान् महेन्द्रस्य प्रवर्त्तते। अत्रेदानीमयं वेदो नाट्यसंज्ञः प्रयुज्यताम्॥ —नाट्यशास्त्र।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से पूर्व स्वांगों के प्रचलित होने का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। मि० कोनो ने जिन प्रमाणों का उल्लेख किया है वे सभी महाभाष्य के समकालीन तथा उसके उपरान्त के हैं। अतः उनसे स्वांगों की प्राचीनता सिद्ध नहीं होती। हाँ प्रो० हिलब्रैंट ने जो युक्तियाँ दी हैं उनमें कुछ बल है। उन्होंने नाटकों में संस्कृत के साथ प्राकृत का प्रयोग, गद्य-पद्य का संमिश्रण रङ्गशालाओं में आडम्बर-न्यूनता तथा सादगी का होना एवं विदूषक जैसे लोकप्रिय पात्र के आधार पर नाटकों को लोकप्रिय स्वांगों से उत्पन्न माना है। उक्त चारों बातों में से पहली तीन बातों का समाधान तो बहुत अच्छी तरह हो जाता है और नाटकों की उत्पत्ति का सम्बन्ध धार्मिक संस्कारों से जुड़ जाता है। किन्तु नाटकों में विदूषक जैसे पात्र की सत्ता का प्रादुर्भाव महाव्रत संस्कार में शूद्र पात्र की आवश्यकता से हुआ माना जाता है और महाव्रत एक धार्मिक संस्कार है। दूसरे पक्ष में तो कोई ऐसा प्रमाण ही नहीं मिलता, जो नाटकों में विदूषक रखने की प्रथा का सम्बन्ध किसी लौकिक लीला से सिद्ध करता हो।

पुत्तलिका नृत्यवाद

जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् पिशेल साहब ने कठपुतली के नाच से नाटकों की उत्पत्ति मानी है। सम्पूर्ण विश्व में नाटकों का प्रसार भारत से ही प्रारम्भ हुआ है। कठपुतली के नाच में सूत्रधार और स्थापक दो ऐसे शब्द आते हैं। नचाने वाला सूत्र (डोरी) धारण कर पुतलियों को नचाता है और नाच के बाद एक तरफ स्थापित कर देता है। इस आधार पर सूत्रधार और स्थापक दोनों शब्द आते हैं। नाटकों में दोनों शब्द ज्यों के त्यों लिये गये हैं। किन्तु इस बाद में भी त्रुटि दिखलायी पड़ती है। कठपुतलियों के नाच का इतिहास दृष्टि में रखकर मानना पड़ता है कि नाटकों का प्रारम्भ इससे पहले ही हो चुका था। दूसरे रसभाव-संवलित नाटक की उत्पत्ति इस सामान्य नृत्य से मानना नितान्त निराधार तथा असंगत प्रतीत होता है। डॉ० पिशेल ने जिस व्युत्पत्ति का सहारा लेकर सूत्रधार के अर्थ पर आधारित इस मत का प्रतिपादन किया है। वह अर्थ ही प्रायः कमजोर है। शारदातनय के अनुसार कथावस्तु, नायक, रस आदि का सूत्र अर्थात् संक्षेप में जो वर्णन करता है इसलिए वह सूत्रधार कहलाता है न कि डोरे पकड़ने के कारण।[२]

छायानाटकवाद

डॉ० पिशेल के एक दूसरे मत के अनुसार नाटकों का विकास छाया-नाटक से हुआ है। डॉ० लूडर्स एवं डॉ० कोनो भी इस मत के समर्थक हैं। पहले प्रायः छाया के द्वारा बहुत सारे खेल दिखलाने की प्रथा प्रचलित थी। इस सन्दर्भ में एक बात और ध्यान देने योग्य है कि रूप

१. भारतीय काव्यशास्त्र पृ० ३२०।

२. सूत्रयन् काव्यनिक्षिप्तवस्तुनेतृकथारसान्।
नान्दी श्लोकेन नान्द्यन्ते सूत्रधार इति स्मृतः। शारदातनय-भावप्रकाश।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शब्द इस सिद्धान्त के अनुसार जितना अन्वर्थक सिद्ध होता है उतना किसी और से नहीं। किन्तु इस संदर्भ में डॉ० कीथ का कहना है कि यह मत महाभाष्य के एक स्थल के अयथार्थ अर्थावधारण पर अवलम्बित है। इस वाद में सबसे बड़ी त्रुटि तो यही है कि इसके आधार पर नाटकों के गद्य-पद्य के मिश्रण तथा संस्कृत-प्राकृत के प्रयोग का कोई कारण नहीं बताया जा सकता है। दूसरे, अन्य वादों की भाँति इस वाद के मानने वाले को भी नाटकों की सत्ता छाया द्वारा दिखाये जाने वाले खेलों के जन्म से पूर्व ही स्वीकार करनी पड़ती है। संस्कृत में कुछ छायानाटक यों भी पाये जाते हैं। इन छायानाटकों में 'दूताङ्गद' विशेष प्रसिद्ध है। छायानाटक में महीन पर्दे के पीछे वास्तविक अभिनेताओं या मूर्तियों का छाया अभिनय दिखाया जाता है। दर्शक पर्दे पर उसकी छाया मात्र देखते हैं। संस्कृत के दो चार इने गिने परवर्ती छायानाटकों के आधार पर भारतीय नाटकों की उत्पत्ति या विकास मानना अति-उपहासास्पद प्रतीत होता है।

यूनानी नाट्यकलावाद

कुछ विद्वानों ने नाट्यकला की उत्पत्ति एवं विकास का स्रोत यूनानी नाट्यकला को ही माना है। इसके प्रमाण में वे यवनिका शब्द उपस्थित करते हैं और कहते हैं कि यवनिका 'यवन' शब्द से व्युत्पन्न है। इस विषय में इतना ही कहना है कि संस्कृत नाटकों में 'जवनिका' शब्द का व्यवहार होता था, जिसका अर्थ है पर्दा (ढकने वाला)।

संवादसूक्तवाद

ऋग्वेद में १५ से कुछ अधिक ऐसे संवादसूक्त मिलते हैं जिनमें धार्मिक भावनाओं के अतिरिक्त लोकव्यवहार से सम्बन्ध रखने वाले संवाद आये हैं। १८६९ ई० में प्रो० मैक्स-मूलर का ध्यान इधर गया। उन्होंने अत्यधिक खोजबीन के बाद संस्कृतनाटकों की उत्पत्ति का बीज इन संवाद सूक्तों में पाया। कुछ दिनों के बाद प्रो० लेवी ने भी इस बात का समर्थन किया। वरन् थोड़े से विद्वानों ने इस संदर्भ में गंभीरतापूर्वक विचार करने का आग्रह किया। स्वयं भी इन्होंने इसकी गंभीर खोज की और नाटकों का मूल इन संवाद सूक्तों को ठहराया। डॉ० हरटल ने एक पग और आगे बढ़कर यह घोषणा की कि वैदिक नाटक के विकास का मूलरूप हमें सुपर्णाध्याय में देखने को मिलता है। दूसरे अन्यान्य पाश्चात्य एवं पौर्वात्य विद्वानों ने भी ऋग्वेद के इन संवादों में नाटकोत्पत्ति की मूल सामग्री खोजने की चेष्टा की है। वैसे नाटक के तीन मुख्य उपकरण होते हैं—नृत्य, गीत व संवाद। पहले इन संवादों के साथ नृत्य एवं गीत भी रहे होंगे, किन्तु आज उनका रूप वहाँ नहीं मिलता। वैसे ऋग्वेद में विवाहसूक्त के अन्तर्गत नवदम्पती के सामने पुरन्ध्रियों के नृत्य करने का उल्लेख मिलता है। भारतीय परम्परा भी इस सिद्धान्त में आस्था रखती है।

वैदिकानुष्ठानवाद

कुछ विद्वान् वैदिक अनुष्ठानों में नाटकों की उत्पत्ति के बीज ढूँढ़ते हैं। वैसे देखा जाय तो वैदिक अनुष्ठानों में नाटक के प्रायः सभी प्रमुख तत्त्व मिल जाते हैं। ऋग्वेद के संवाद जिनकी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऊपर चर्चा की जा चुकी है वे भी यज्ञानुष्ठान के एक अङ्ग हैं। यह अनुष्ठान एक प्रकार का नाटक ही तो कहा जा सकता है। इस अनुष्ठान में कुमारियाँ अग्नि के चारों ओर नाचा करतीं थीं। इन सूक्तों में शूद्र एवं वैश्य का प्रकाश के लिए पारस्परिक कलह भी नाटक ही है। यज्ञमण्डप में बैठे याजकों एवं यजमानों के मनोविनोदार्थ संवाद सूक्तों की कल्पना भी नाटकों की ओर ही संकेत करती है। कुछ विद्वानों के अनुसार नाटक के प्रायः सभी प्रमुख तत्वों को वैदिक अनुष्ठानों में आसानी से खोजा जा सकता है।

महाभारत एवं रामायण में नाटकीय संकेत

वेदों के बाद रामायण एवं महाभारत में भी अभिनय के संकेत हमें मिलते हैं। कीथ के मतानुसार महाभारत एवं रामायण के नट शब्द के आधार पर ही नाटकों का अस्तित्व नहीं माना जा सकता है। रामायण में 'नाटक' तथा नट शब्द का प्रयोग हमें मिलता है। अयोध्या के वर्णन में महर्षि वाल्मीकि ने बताया है कि वहाँ नाटक की मण्डलियाँ तथा वेश्यायें थीं।[1] राम के राज्याभिषेक काल में भी नटों, नर्त्तकों आदि का उपस्थिति होना लिखा है।[2]

महाभारत में 'नट' 'शैलूष' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। हरिवंश पर्व के ९१ से ९७ अध्याय तक नाटक खेले जाने के पूर्ण संकेत मिलते हैं। वज्रनाभ नामक दैत्य का वध करने के लिए श्रीकृष्ण तथा यादवों ने कपट-नटों का वेश धारण किया था। इस नाटक के बाद श्रीकृष्ण ने कौबेरम्भाभिसार नाटक भी खेला। नाटक के वशीकरण से अमित वज्रनाभ का वध प्रद्युम्न ने किया तथा उसकी पुत्री प्रभावती से उन्होंने विवाह किया। महाभारतकाल में नट का सर्वाङ्गीण रूप हमें विद्यमान मिलता है। यह बात अलग है कि डॉ० कीथ हरिवंश तथा महाभारत (हरिवंशेतर) के रचनाकाल में पर्याप्त अन्तर मानते हैं।

बौद्ध, जैन एवं वात्स्यायन के कामसूत्र में नाटकीय संकेत

बौद्ध, जैन एवं वात्स्यायन के कामसूत्र में भी नाटक का स्पष्ट संकेत हमें मिलता है। ईसा की दूसरी शती से बहुत पूर्व रचित वात्स्यायन के कामसूत्र में लिखा है कि बाहर से आये हुए नट प्रथम दिन नागरिकों को नाटक दिखायें, अपना पारिश्रमिक दूसरे दिन उनसे प्राप्त करें। यदि लोग दूसरे दिन नाटक देखना चाहें तो फिर देखें अन्यथा सम्मानपूर्वक अभिनेताओं को विदा कर दें। नगर के नटों एवं आगन्तुक नटों के बीच परस्पर सहयोग की भावना रहनी चाहिए।[3] इससे भी बहुत पहले पाणिनि के अष्टाध्यायी सूत्रों में ही शिलाली तथा कृशाश्व के

---

१. वधूनाटकसंघैश्च संयुक्ताम्। वा० रा० अ० का०।

१. नटनर्त्तकसंघानां गायकानाञ्च गायताम्।
यतः कर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः॥ वही।

३. कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणमेषां दद्युः। द्वितीयेऽहनि तेभ्यः पूजानियतं लभेरन्। ततो यथाश्रद्धमेषां दर्शनमुत्सर्गो वा। व्यसनोत्सवेषु चैषां परस्परैककार्यता।"

—कामसूत्र १।४।२८–३१।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नटसूत्रों का उल्लेख मिलता है।[१] इससे शिलाली तथा कृशाश्व इन दो आचार्यों के नटसूत्रों का पता चलता है। डॉ० कीथ प्रो० सिलवाँ की साक्षी पर इसका अर्थ उल्टा करते हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने तो स्पष्ट रूप से 'कंसवध' तथा 'बलिबंध' इन दो कथाओं से सम्बद्ध नाटकों का उल्लेख किया है।[२]

निष्कर्ष

निष्कर्षस्वरूप हम कह सकते हैं कि भाष्यकार पतन्जलि से पूर्व महाकवि भास से लेकर बीसवीं शती तक संस्कृत-नाटकों की अपनी अलग एक विशिष्ट परम्परा रही है। भारतीय नाटकों की उत्पत्ति और विकास में किसी विदेशी बीज का अन्वेषण दुराग्रह अथवा हठधर्मिता के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता है। मात्रा एवं गुण दोनों दृष्टियों से संस्कृत साहित्य का नाटक अङ्ग इतना समृद्ध है कि हर दृष्टि से विश्व की किसी भी भाषा के नाटक-साहित्य के सन्मुख वह अपना गर्वोन्नत मस्तिष्क ऊपर उठा सकता है। संस्कृत भाषा में एक से एक नाटक प्रकाश में नहीं आ सके हैं। कुछ का तो उल्लेख मात्र काव्यशास्त्र के कुछ लक्षणग्रंथों में उदाहरण रूप में ही उपलब्ध है। कुछ पाण्डुलिपियाँ संगृहीत हैं और कुछ काल-कवलित भी हो गये हैं। महाकवि भास के नाटकों का ही पहले लोगों को कुछ पता नहीं था। १९१३ ई० में म० म० गणपति शास्त्री ने उन्हें प्रकाशित किया। संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति मूलरूप में वेद से ही है। तब से लेकर आज तक इसके विशाल साहित्य की समृद्धि का श्रेय भरत को दिया जा सकता है।

महाकवि भास

महाकवि भास अपने कवित्व से जितने ही श्रद्धास्पद हैं, अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से उतने ही अधिक विवादास्पद। इधर १९१२ ई० में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री को ट्रावणकोर की खोज में संस्कृत के १३ नाटक मिले थे। उनके अनुसार इन नाटकों के रचयिता वही महाकवि भास हैं, जिनका उल्लेख महाकवि कालिदास ने 'अपने मालविकाग्निमित्र' नाटक की प्रस्तावना में किया है।[३] विचार करने पर निःसदिग्ध रूप से यह कहा जा सकता है कि ये तेरहों नाटक महाकवि भासकृत ही हैं, क्योंकि इन नाटकों की आकृति और प्रकृति में अत्यधिक समता पायी जाती है। सबों की भाषा और शैली एक-सी मुहावरेदार एवं प्रांजल है। सबों में समान रूप से कुछ न कुछ अपाणिनीय शब्द प्रयुक्त हैं।

१. (क) पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः (४।३।११०)।
   (ख) कर्मन्दकृशाश्वादिनिः—४।३।१११.
२. इह तु कथं वर्त्तमानकालता कंसं घातयति बलिं बन्धयतीति चिरहते कंसे चिरबद्धे च बलौ।
३. प्रथितयशसाम् भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथम् वर्त्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।—मा० अ० प्रस्ता०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एक ही सुन्दर भाव या विचार की प्रकारान्तर से पुनरुक्ति की गई है। इतना ही नहीं इन नाटकों में प्रयुक्त अनेक मुहावरे, वाक्य, पद्य एवं श्लोकों के चरण भी समान हैं। इनके पात्रों के नामों तक में समरूपता पायी जाती है। इनके सभी नाटकों में प्रस्तावना की जगह स्थापना शब्द का प्रयोग हुआ है। इनके सभी नाटक—'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' के नाटकीय निर्देश से ही प्रारंभ होते हैं। इन सारे नाटकों में भरतवाक्य की समता भी इस कथन को प्रमाणपुष्ट करता है। संस्कृत साहित्य के बहुत सारे स्वदेशी एवं विदेशी आलोचकों में इस बात पर काफी मत-भिन्नतायें हैं। फिर भी भास के सम्बन्ध में अनेक प्राचीन उल्लेखों से यह सिद्ध होता है कि ये समस्त रचनाऐं भासकृत ही हैं।[1]

भास का काल-निर्णय

संस्कृत साहित्य के इतिहास की सर्वाधिक कठिनाई कवियों और उनकी कृतियों का काल निर्णय में है। भास के स्थितिकाल का भी प्रश्न उतना ही जटिल है। इतना तो निर्विवादरूप से कहा जा सकता है कि भास महाकवि कालिदास से पूर्व एक ख्यातिप्राप्त नाटककार थे। इस कथन की सम्पुष्टि उनके काव्यों की एक विशिष्ट शैली जो बाद के काव्यों की अलंकृत शैली से सर्वथा भिन्न होती है। इस कथन की पुष्टि भास के नाटकों में प्रयुक्त भाषा में आर्ष एवं अपाणिनीय प्रयोगों से तथा उनके नाटकों में चित्रित पुरातन वातावरण से भी होती है। कालिदास ने अपने प्रसिद्ध नाटक मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में महाकवि भास का उल्लेख किया है। इससे यह स्वतः प्रमाणित होता है कि भास कालिदास से लगभग १०० वर्ष पूर्व अवश्य थे। कालिदास का स्थितिकाल अब विद्वानों के बीच प्रथम शताब्दी ई० पू० मान्य होना चाहिए। कुछ यूरोपीय विद्वानों भास को द्वितीय या चतुर्थ शताब्दी ई०में निर्धारित करते हैं। भास के नाटकों की खोज से पूर्व संस्कृत के उपलब्ध नाटकों में शूद्रक का 'मृच्छ-कटिक' नाटक ही सर्वाधिक प्राचीन माना जाता था। किन्तु अब भास के 'चारुदत्त' नामक नाटक की उपलब्धि के बाद यह लोग मानने लगे हैं कि 'मृच्छकटिक' की रचना चारुदत्त के अनुकरण पर की गई है।[2] कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्' का एक श्लोक उद्धृत किया है।[3] इससे भी यह प्रमाणित होता है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र की रचना के पूर्व भास एक ख्यातिप्राप्त प्रामाणिक ग्रंथकार के रूप में विश्रुत हो चुके थे।

---

१. सूत्रधारकृतारम्भैः—नाटकैर्बहुभूमिकैः। स पताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव। हर्षचरित।

२. प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनामित्यादि। मा० मि० प्र० प्र० खण्ड।

3. S. K. Belvalkar—'The relationship of Shudrak's Mrichhakatika to the Charudatta of Bhasa'—Proceedings of 1st Oriental Conference. 1919 vol. II pp. 189-204.

४. नवं शरावं सलिलस्य पूर्णम् सुसंस्कृतम् दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं च गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न बुध्येद्॥ अर्थशास्त्र १०।३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्तःसाक्ष्य

भास से नाटकों का आधार रामायण, महाभारत एवं लोककथायें हैं। रामायण एवं महाभारत का समय ई० पू० छठी शती के आसपास है। भास के उदयन से सम्बन्धित नाटक भी इसी बात को पुष्ट करते हैं। उदयन एक ऐतिहासिक पुरुष थे। इनका समय भी ईसवी पूर्व छठी शती के लगभग है। अतः हम कह सकते हैं कि भास निश्चित रूप से ई० पू० दूसरी या तीसरी शती में विद्यमान थे।

प्रतिमानाटक से पंचम अंक में रावण ने जो अपना परिचय दिया तथा अपने द्वारा अधीत विद्याओं[1] का उल्लेख किया है, निश्चित रूप से उन सबों का अध्ययन-अध्यापन ई० पू० चतुर्थ शती के लगभग ही था। इससे भी भास के स्थितिकाल का बोध होता है।

प्रतिमानाटक में चित्रित राजवंश नन्दवंश के समकालीन है। रामगिरि का राजधानी के रूप में एवं पाटलिपुत्र का एक सामान्य नगर के रूप में चित्रित करना भी इस बात का प्रमाण है कि भास ५ वीं शती ई० पू० से बहुत पीछे हैं।

सामाजिक दशाओं का चित्रण भी इनकी प्राचीनता ही सिद्ध करता है। प्रतिमानाटक में उल्लिखित मन्दिरों के घेरे में बालू डालने की प्रथा आपस्तम्ब ई० पू० चतुर्थ शती के ग्रंथ में ही मिलती है। देवकुल की संथापना जिसमें मृत राजाओं की प्रतिमा रक्खी जाती थी जिनके नाम पर इस नाटक का नामकरण किया गया है, शैशुनाग राजाओं के युग को याद दिलाती है। इसमे भी इनकी प्राचीनता सिद्ध होती है। भरतवाक्य में हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक एकछत्र राज्य का उल्लेख भी प्रायः नन्दवंशीय नरेश की ही स्मृति है।

बहिःसाक्ष्य

बाणभट्ट (७वीं शती) ने भास के नाटकचक्र की विशिष्टता का उल्लेख किया है। वामन ने स्वप्नवासवदत्ता के चतुर्थ अंक के तीसरे श्लोक के कुछ शब्दों को बदल कर व्याजोक्ति के उदाहरण में संगृहीत किया है।[2] वामन ने ही अपने ग्रंथ में चारुदत्त के प्रथम अंक के द्वितीय श्लोक[3] तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण के चतुर्थ अंक के दूसरे श्लोक[4] को भी अपने ग्रंथ में उद्धृत किया है। शूद्रक ने अपने मृच्छकटिक का निर्माण भास के चारुदत्त को सामने रख कर

---

१. "काश्यपगोत्रोऽस्मि साङ्गोपाङ्गम् वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रम्, बार्हस्पत्यम् अर्थशास्त्रम्, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च।

२. शरच्चन्द्रांशुगौरेण वाताविद्धेन भामिनि। काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं कृतम्।
का० लं० सू० वृ० ४।१।३।

३. हरिततनुषु बभ्रुत्वग्विमुक्तासु यासाम्।
कनककणसधर्मा मन्मथो रोमभेदः॥ का० लं० सू० ४।१।३।

४. मधुपिपासुमधुव्रतसेवितं मुकुलनालमजृम्भितवीरुधाम्॥ वही ५।२।१३।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ही किया था। कालिदास के अतिरिक्त अश्वघोष ने अपने बुद्धचरित में भास के प्रतिमानाटक के एक श्लोक को ज्यों के त्यों रख दिया है।[1]

इस प्रकार अन्तःबाह्यसाक्ष्य के आधार पर इस निष्कर्ष पर आते हैं कि भास का स्थिति-काल निश्चय ही ई० पू० द्वितीय या तृतीय शती अवश्य है। इनके नाटकों में वर्णित तथ्यों के आधार पर भी हम यह कह सकते हैं कि इनका जन्म उस समय अवश्य हुआ होगा, जब ब्राह्मण-धर्म का पुनरुत्थान हो चुका होगा। ये पौराणिक ब्राह्मण-धर्म के उपासक थे।

भास की रचनाएँ

भास के नाम से अब तक १३ नाटक उपलब्ध हुए हैं। इन नाटकों में भास की मौलिकता एवं अनूठी कल्पनाशक्ति एवं अद्भुत नाट्यकला-कुशलता का परिचय मिलता है। इन नाटकों को सर्वप्रथम हम दो तरह से वर्गीकृत कर सकते हैं पहला वर्गीकरण नाटकीय संविधान की दृष्टि से है, दूसरा इतिवृत्त के मूलस्रोत को दृष्टि में रखकर किया जा सकता है। उपलब्ध इन तेरह रूपकों में आठ तो पूरे नाटक हैं एवं ५ एकांकी हैं। प्रतिमानाटक, स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, बालचरित, पञ्चरात्र, अभिषेक, अविमारक और दरिद्रचारुदत्त नाटक हैं तथा मध्यमव्यायोग, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार और ऊरुभङ्ग एकांकी हैं। विषयानुसार इन्हें हम पाँच श्रेणियों में विभक्त करते हैं।

१—राम कथा पर आश्रित नाटक—	(१) प्रतिमा (२) अभिषेक (३) पञ्चरात्र।
२—महाभारत की कथा पर आश्रित—	(४) मध्यमव्यायोग (५) दूतघटोत्कच (६) कर्णभार।
३—भागवतकथात्मक—	(७) दूतवाक्य (८) ऊरुभङ्ग (९) बालचरित।
४—लोककथात्मक—	(१०) दरिद्रचारुदत्त (११) अविमारक।
५—उदयनकथाश्रित—	(१२) प्रतिज्ञायौगन्धरायण (१३) स्वप्नवासवदत्तम्।

प्रतिमानाटक—यह सात अङ्कों का एक नाटक है। इसमें रामवनवास से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की घटनाओं का उल्लेख है। महाराज दशरथ की मृत्यु के बाद ननिहाल से लौटते हुए भरत ने मार्ग में अयोध्या के समीप देवकुल में अपने दिवंगत पूर्वजों के साथ जब महाराज दशरथ की भी प्रतिमा देखी तो उन्हें उनकी मृत्यु का पता लगा। इस घटना के आधार पर ही इस नाटक का नाम प्रतिमानाटक रखा गया है।

अभिषेकनाटक—यह छह अङ्कों का एक नाटक है। इसमें रामायण के किष्किन्धा, सुन्दर एवं लंकाकाण्ड की कथा का वर्णन है।

---

१. द्रष्टव्य–बुद्धचरित-१२।६०, प्रतिमानाटक १।९८, श्लोक निम्नलिखित है—
काष्ठं हि मथ्नन् लभते हुताशं भूमिं खनन् विन्दति चापि तोयम्।
निर्वन्धिनः किञ्चन नास्त्यसाध्यं, न्यायेन युक्तं च कृतं च सर्वम्॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पञ्चरात्र—यह तीन अङ्कों का छोटा 'समवकार' है, इसमें महाभारत की छोटी सी घटना का भिन्न प्रकार से वर्णन किया गया है। दुर्योधन ने प्रतिज्ञा की थी कि यदि अज्ञातवासी पाण्डव पांच रात के भीतर मिल जायँ तो उन्हें आधा राज्य दे दूँ। द्रोण के सत्य प्रयास से पाण्डव मिल गये और उन्हें आधा राज्य भी दे दिया गया।

मध्यमव्यायोग—यह एक अङ्क का व्यायोग है। इसकी कथा महाभारत से ली गई है। भीम ने एक भयंकर राक्षस से ब्राह्मणपुत्र की रक्षा किस तरह की है उसी का वर्णन है।

दूतघटोत्कच—यह एक एकांकी है। यह भी महाभारत की कथा पर आश्रित है। श्रीकृष्ण ने घटोत्कच को दूत बनाकर दुर्योधन के निकट भेजा है।

ऊरुभङ्ग—यह भी एकांकी है। इसमें भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध का वर्णन है। इसमें दुर्योधन की करुण मृत्यु का प्रसंग उल्लिखित है।

कर्णभार—इस एकांकी में कर्ण ने ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र को अपना कवच कुण्डल दान में दिया है।

दूतवाक्य—यह एक एकांकी 'व्यायोग' है। श्रीकृष्ण ने पाण्डवों की ओर से कौरवों के पास सन्धि-सन्देश दिया है और उन्हें वहाँ से विफल लौटना पड़ा है।

बालचरित—सात अङ्कों का यह एक नाटक है। इसमें श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कंसवध तक की कथा वर्णित है।

अविमारक—यह छह अंकों का एक नाटक है। इसमें राजकुमारी कुन्ती तथा राजकुमार अविमारक की प्रणयगाथा का वर्णन है।

दरिद्र चारुदत्त—इस 'प्रकरण' में धनहीन किन्तु चरित्रनिष्ठ ब्राह्मणकुमार चारुदत्त एवं वारवनिता वसन्तसेना का आदर्श प्रेम वर्णित है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण—यह छह अंकों का एक नाटक है। इसमें मन्त्री यौगन्धरायण की कुशलता के कारण उदयन एवं वासवदत्ता के रहस्यमय विवाह का वर्णन है।

स्वप्नवासवदत्ता—भास की नाट्यकुशलता का यह चूडान्त निदर्शन है। सात अंकों का यह नाटक उदयन और वासवदत्ता की विचित्र किन्तु रोमांचक कथा से भरपूर है। [illegible]त्री की दृढ़प्रतिज्ञ[illegible] कुटिल नाटक का यह एकमात्र निदर्शन है।

महाकवि भास के द्वारा रचित इन तेरह नाटकों को संदिग्ध दृष्टि से देखने वाले आलोचकों में प्रमुख हैं डॉ० वार्नेट, डॉ० सिल्वन लेवी, डॉ० बुल्हनर, म० म० डॉ० कुप्पूस्वामी शास्त्री प्रभृति। ऊपर लिखित १३ नाटकों को भास के 'नाटकचक्र' के रूप में मानने वाले विद्वानों में हैं-डॉ० कीथ, डॉ० टामस, डॉ० स्वरूप प्रभृति। डॉ० गणपति शास्त्री की खोज ने तो इन नाटकों को भासकृत सिद्ध कर दिया है, ऐसे ही राजशेखर ने अपनी सूक्तिमुक्तावली में निम्नलिखित श्लोक उद्धृत कर उन्हें इन नाटकों का रचयिता सिद्ध कर दिया है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भासनाटकचक्रेऽस्मिन् छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

१२वीं शती के कल्हण ने अपनी सूक्तिमुक्तावली में उपर्युक्त सूक्ति का पुनरुल्लेख कर भास के नाटकचक्र की प्राचीन स्मृति को प्रमाणसिद्ध कर दिया है ।

भास की नाट्यकला

भास के नाटकों की वस्तु का क्षेत्र विस्तृत है । अतः उनके नाटकों की विविधता एवं मौलिकता उनकी नाट्यकुशलता का परिचायक है । इनके प्रायः सभी नाटक अभिनेय हैं । भास के मूर्त्तपरक दृष्टिकोण ने अमूर्त्त की अपेक्षा मूर्त्त को ही अधिक महत्त्व दिया है । अतः इनके नाटकों में सूक्ष्म चरित्रविश्लेषण की अपेक्षा मूर्त्त घटनासंगठन अधिक रुचिकर बना है । नाट्यशास्त्र के प्रायः सभी नियमों का अक्षरशः पालन न करने पर भी उनके सभी नाटक रोचक हैं । रामायण से सम्बद्ध इनके नाटक कथासंविधान की दृष्टि से यद्यपि शिथिल हैं, फिर भी उनकी अभिनेयता में कहीं कोई खोट नहीं है । जहाँ तक महाभारत की कथा पर आश्रित नाटकों का प्रश्न है उन्हें भास ने अपनी अनूठी कल्पनाशक्ति से अत्यन्त रोचक बना दिया है । घटना का ऐक्य उनके घात-प्रतिघात, कवित्व, चरित्र-चित्रण हर दृष्टि से ये नाटक आकर्षक हैं । सर्वाधिक खूबी की बात तो यह है कि इन नाटकों में न तो कहीं वर्णन की अधिकता है और न अभिनेयता की अवहेलना । कथावस्तु का न कहीं अनावश्यक विस्तार ही है और न कार्यान्विति की शिथिलता । यही कारण है कि इनके सभी छोटे-बड़े नाटक रंग-मंच के बिलकुल उपयुक्त हैं । अपने वर्णन चातुर्य एवं नाट्यनैपुण्य द्वारा भास अनुपस्थित पात्रों या परोक्ष घटनाओं को रङ्गमंच पर, उपस्थित या घटित किये बिना ही प्रेक्षकों के मन में उनका ऐसा आभास करा देते हैं, मानो उनका प्रत्यक्ष चित्रण हो रहा हो ।

भास चरित्रचित्रण में भी निपुण हैं । अपने पौराणिक पात्रों को उन्होंने वास्तविकता, मनोवैज्ञानिकता और मार्मिकता के साथ चित्रित कर उन्हें सर्वथा नवीन बना दिया है । इनके प्रायः सभी नाटक संघर्ष का द्वन्द्व प्रधान हैं । यह संघर्ष दोनों ही प्रकार का है–घटनाव्यापार-सम्बन्धी तथा पात्रों के मानसिकस्थितिसम्बन्धी । इन्होंने पौराणिक सत्यता पर अपनी कल्पना का रङ्ग चढ़ा कर इतिहासपुराण के रूखे चित्रों को काव्यमय बना दिया है, किन्तु उस कल्पना से पौराणिक तथ्यों को कहीं खण्डित नहीं होने दिया है । यह भास की मौलिक विशेषता है । इनके नाटकों का घटनाक्रम संघर्षपूर्ण है । अतः इनके आदर्श पात्रों का चरित्र भी अन्तर्द्वन्द्वयुक्त है । इनके नायक के व्यक्तित्व में अनासक्तिमय प्रत्यक्ष कर्मवाद की मंजुल झांकी प्रस्तुत है । निष्काम भाव से जीवन के कठोर कर्मक्षेत्र में यह अवतीर्ण होता है । इनके सभी पात्र प्रायः प्रकारमात्र न होकर सजीव व्यक्ति हैं । इनका व्यक्तित्व इतना स्पष्ट एवं ऐसा सुलभ हुआ है कि उसे हम भूल नहीं सकते । पद्यों का आश्रय लेकर अपने पात्रों में संवाद कराने का भास का अपना ढङ्ग अनूठा है । किसी पद्य को दो भागों में विभक्त कर उन्हें विभिन्न पात्रों के मुख से कथोपकथन के रूप में उपस्थित करवाना भास की अपनी विशेषता है । शीघ्र उत्तर-प्रत्युत्तर तथा चुभते हुए संवादों के नाटकीय प्रयोगमें भास अकेले हैं ।

१. द्रष्टव्य—प्रतिमानाटक श्लोक ३।१, एवं पंचरात्र १।५७ तथा ऊरुभंग २१ इत्यादि ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भास की कवित्व-शक्ति

महाकवि भास के नाटकों में कविता एवं नाटकीयता का संयोग संस्कृत नाटकों की एक विचित्र घटना कही जा सकती है। सामान्यतः संस्कृत नाटकों का लक्ष्य चारित्रिक अन्तद्वन्द्वचित्रण की अपेक्षा रसानुभूति कराना होता है। संस्कृत नाटकों ने अपने ह्रासोन्मुख काल में तो इस भविष्य के नीचे दबकर प्रायः अपना अस्तित्व ही खो दिया है। किन्तु भास के प्रायः सभी नाटकों में नाटकीयता और कविता का संतुलन आकर्षक है। भास कवि नाटक में कहीं घटनाचक्रको गतिशील बना रहा है तो कहीं नाटकीय कुतूहल को सजीव करता है। दृश्यों का स्वाभाविक विनियोग, संवादों की सरल भाषा और पदों की प्रसङ्गानुकूल भावात्मकता नाटकों की प्रभावोत्पादकता में सीधे हाथ बँटाती है। भासके प्रसंगानुकूल कवित्वपूर्ण पद्यों मे कहीं से जोड़ नहीं दिखलाई देते हैं।

मानवीय तथा बाह्य प्रकृति के चित्रण में भास अपने ढंग के अकेले कवि हैं। मानव मन में नित नूतन उठनेवाले भावों के अंकन में ये लगभग वाल्मीकि के समीप हैं। प्रकृति के नाम रूपों के ये जागरूक द्रष्टा हैं। अपनी अनुभूति को सरल बोधगम्य भाषा में अभिव्यक्त करने में ये मनोहर कवि हैं। रात का सघन अंधकार इनके शब्दों में कितना प्रभावशाली बन गया है—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता॥

(मालूम पड़ता है कि अंधेरा शरीर को लेप रहा है, आकाश से काजल की वर्षा हो रही है। दुष्टों की सेवा जिस तरह निष्फल होती है उसी तरह इस अन्धेरे के कारण लोगों की दृष्टि निष्फल हो गई है।)

अनुष्टुप् के बत्तीस अक्षरों का यह छन्द अर्थ चमत्कार में ध्वनि-प्रतिध्वनियों से परिपूर्ण संगीत समारोह सा आकर्षक हो उठा है। कोमल वर्णों का विन्यास, मनोरम अर्थच्छवि, उपमा और उत्प्रेक्षा का संयोग भास के कवित्व का साक्षी बन गया है।

भास के नाटकों में आलोचना के योग्य अनेक विषय हैं और प्रत्येक विषय के विविध स्तर हैं। स्तर-स्तर पर सहृदयता के लिए अटकाव है। इनके नाटकों में सर्वप्रथम सांस्कृतिक वैभवों का आक्षितिज प्रसार पाठक या दर्शक के प्राणों पर रजतातप का साया डालना है। दण्डकारण्य से अयोध्या के राजभवन तक संस्कृति का एक समान ताना-बाना बुन आश्रम-द्रुम कुटिया के पुलिन, ऋषिकन्याएँ, प्रौढ़ा तापसी, वृद्ध कुलपति सब एक-ही सुरभि के बहुरंग सुमन हैं। वनवासिनी सीता का व्यक्तित्व इसी आवेष्टन में से उभरता है, वह तरुओं की स्निग्ध छाया और मधुमाधवी की स्वर्णरेणु में अपने जीवन को संजोती है। वह अपने अकृत्रिम स्नेह से इन वृक्षों को सींचती है—

योऽस्याः करः शाम्यति दर्पणेऽपि स नैति खेदं कलशं वहन्त्याः।
कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभिः कठिनीकरोति॥

प्रतिमा १।२५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पंचवटी में अपने कोमल करों से पेड़ों को सींचने वाली सीता का यह सुकुमार-कठोर चित्रण किसके मूक प्राणों को नहीं लेता है। नाटकीयता की दृष्टि से इस श्लोक में घटनाओं का गत्यात्मक घात-प्रतिघात, उनकी एकता और सार्थकता, सीता की चरित्र-चित्रणात्मक स्वाभाविकता मानो सभी एक साथ मुखरित हो उठे हैं।

नाटक घात-प्रतिघात में ही आगे बढ़ता है। विभिन्न परिस्थितियों में मनुष्य के हृदय में जो-जो भाव उदित हुआ करते हैं, उनका समुचित शब्दों में उपन्यास करना किसी भी नाटककार की सफलता की कौसटी है। पिता की मृत्यु का कारण जानकार भी सारे भावों को हृदय में समेटे भरत वनकी ओर उन्मुख हैं। पर ज्यों ही उन्हें रामका साक्षात्कार होता है भरत का गंभीर स्वर गूंज उठता है। तात्पर्य यह है कि भरत को अब पता चल रहा है कि उसके पिता ने पुत्र के वियोग में प्राणत्याग कर कितना बड़ा दुष्कर कार्य किया है। जब मेरा भ्रातृस्नेह इतना प्रबल है तो भला उनका पुत्रस्नेह क्या होगा? बात सीधी होकर भी मर्मस्पर्शिनी है।

अद्य खल्ववगच्छामि पित्रा मे दुष्कृतं कृतम्।
कीदृशस्तनयस्नेहो भ्रातृस्नेहोऽयमीदृशः।। प्रतिमा ४।१२

ऐसी कितनी ही छोटी बड़ी घटनाएँ घात-प्रतिघात के झंकोरों के साथ नाटकीय कथानक की गति में प्रखरता लाती हैं। सच तो यह है कि प्रवाह में तीव्रता न लाएँ ऐसा कोई भी अंश नहीं ढूँढ़ निकाला जा सकता है। ऐसा लगता है नाट्यकला की कोई भी मर्मस्पृक् सूक्ष्मता भास से अभासित रह कर नहीं छूटने पाई। समाजी सुव्यवस्था के लिए राजपद की कितनी महनीय आवश्यकता है, भास के शब्दों में—

गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः।। प्रतिमा ३।२४।

रक्षक के बिना पाली गई गायें जैसे शीघ्र नष्ट हो जाती हैं, उसी तरह शासक के बिना प्रजा का नाश अवश्यम्भावी है। घरेलू उपमा के कारण यह बात हृदय को छू लेती है।

भास की नाट्यकला में स्वाभाविक लगती हैं उनकी उपमाऐं। उनकी अमूर्त भावनाओं को मूर्त्त और मूर्त्त को मार्मिक बनाने का उपकरण बनी हैं उनकी उपमाऐं। प्रकृति और मानव के तीव्र रागात्मक साहचर्य के कारण ही इनकी उपमायें सटीक एवं सार्थक बनी हैं। इतना ही नहीं, इनकी उपमाओं का उत्स जीवन की निःशेष अनुभूतियों के भीतर हैं। अतः इनमें नवीनता और विविधता का प्रकर्ष है। रामवनगमन का एक चित्र द्रष्टव्य है—

सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता।। प्रतिमा २।६

शाम की वेला में सूर्य की तरह राम चले गये। दिन की तरह लक्ष्मण उनके पीछे चले गये। सूर्य और दिवस के अन्त में छाया की तरह सीता अदृश्य हो गई। इन सारी उपमाओं में जो औचित्य का विलास स्फुरित हो रहा है—वह इतना कमनीय, इतना मनोहर, इतना आकर्षक है कि देखते ही बनता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भास की शैली

प्रसाद, माधुर्य एवं ओज भास के शैली के विशेष गुण हैं। इनसे नाटकों में बिकट बन्ध, क्लिष्ट कल्पना और सामाजिक शब्दों की बहुलता का तो एकान्त अभाव ही है। स्वाभाविक पदविन्यास के साथ सुकोमल भाव की सुष्ठुता की प्रचुर मात्रा से प्रतिशब्द स्निग्ध है। भास के संवादों की सरल भाषा, जिसमें समासान्त पदों के दर्शन दुर्लभ हैं—का प्रयोग प्रायः सर्वत्र दीख पड़ता है। इनके पद्यों में प्रसङ्गानुकूल भावात्मकता इनकी शैली में चार चाँद लगा देती है। कवित्व की दृष्टि से हो सकता है भास से अश्वघोष प्रौढ़ सिद्ध हों, पर शैली की दृष्टि से भास उन्हें बहुत पीछे छोड़ जाते हैं। इनका शैली यद्यपि प्रसादगुण संपन्न ही अधिक है तथापि प्रसंगानुकूल वीररस की अभिव्यक्ति में इन्होंने ओज का भी सहारा लिया है। शृंगार और वीररस की व्यञ्जना में भास विशेष आकर्षक हैं।

भास ने उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा जैसे सरस, सरल एवं प्रचलित अलङ्कारों का ही अधिकतर प्रयोग किया है। रस और अवसर के अनुरूप इन्होंने अपनी शैली में स्थल-स्थल पर परिवर्तन किया है। वाक्‌विस्तार की जगह भास ने संक्षिप्त एवं परिमित प्रयोग द्वारा कहीं-कहीं अपने भावों की मार्मिक व्यञ्जना की है। जैसे—**अनुक्त्वैव वनं गताः—प्रतिमा २।१७॥** ऐसी संक्षिप्त शैली से भास ने राम-लक्ष्मण-सीता के अकथनीय हृद्गत भावों के मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित कर दिये हैं। शैली की इस विशेषता के कारण ही भास के भाव कभी-कभी अस्पष्ट और दुर्बोध हो जाते हैं।

भासकी यथार्थता से उत्प्रेरित कल्पना का नमूना, शृङ्गार की सुन्दर अभिव्यक्ति दर्शनीय है। दो सदृश वस्तुओं की कल्पना के पट पर भरत के क्रोधकम्पित अधरोष्ठ से फड़कता यह प्रतिज्ञावाक्य सजीव चित्र बनकर आंखों के आगे खिंच सा जाता है। चित्र को चटकदार बनाने में शील संक्रान्तदोष और अपूर्व धर्म-स्थापन-वस्त्वन्तर की स्थिति भव्य उपादान भर कर रह गई है, उसने चित्र को छेंक नहीं दिया, ढंक नहीं दिया है—

त्यक्त्वा स्नेहं शीलसंक्रान्तदोषैः पुत्रास्तावन्नन्यपुत्राः क्रियन्ते।
लोकेऽपूर्वम् स्थापयास्येन धर्मं भर्तृद्रोहादस्तु मातात्यतामा॥—प्रतिमा ३।१८

भास के माघ शब्दों की पकड़ से बिछलते हुए से दीखते हैं। शब्द भावों को पकड़ने के लिए लपकते हुए से दीखते हैं। इस कला में भास के हाथ इतने सधे हुए हैं कि सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को प्रदर्शित करने और छोटे में बड़ी-बड़ी गम्भीर और भावपूर्ण बात करने में समर्थों पर ही उँगली पहुँच जाती है।

'अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते'—प्रतिमा

यह वाक्य सभी लेखक नहीं लिख सकते। यहाँ पर कोई पर्यायवाची शब्द वह अर्थ नहीं प्रकट कर सकता है जो तुल्यशील और द्वन्द्व शब्द प्रकट कर रहे हैं। अतः कहा जाता है शैली की पहली शर्त है शब्दों का चुनाव, क्योंकि कवि के विचारों की मौलिकता शैली की मौलिकता को जन्म देती है। प्रत्येक गौरैया अपने लिए अलग अपना घोंसला बनाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इनकी शैली में मुख्यतः दो तथ्य प्रमुख हैं--संक्रमण और परिवर्तन। इनसे पद और वाक्य आपस में इस प्रकार अनुस्यूत हैं कि उनमें से किसी एक को निकाल देने से अर्थच्छवि ही नष्ट हो जाती है। इनके पद्य में वाक्य की एसी स्थिति रहती है कि पाठक या दर्शक अनायास एक दूसरे पर सरकते चले जाते हैं। फिर पदों के बीच इनका कसाव वा संघटन इतना तीव्र होता है कि एक के बाद दूसरे की ओर हम स्वतः खिसक जाते हैं। यही है भास की शैली की प्रमुख विशेषता, जो उन्हें संस्कृत के अन्य नाटककारों से अलग कर देती है।

भास की भाषा एवं प्राकृत

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का वह रूप जिसका पाणिनि के अष्टाध्यायी में विवेचन किया गया है 'संस्कृत' कहलाता है। ई० पू० छठी शताब्दी अथवा इससे कुछ पहले पाणिनि ने अपने समय के शिष्ट-समाज के व्यवहारकी भाषा आदर्श रूप में ग्रहण कर उसके आधार पर प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' की रचना की। ब्राह्मणग्रंथों में अनेक स्थानों पर इस बात का उल्लेख हुआ है कि उस समय उदीच्य भाषा (पंजाब की भाषा) आदर्श भाषा मानी जाती थी। इसमें आर्यभाषा का प्राचीनतम रूप बहुत कुछ सुरक्षित था। मध्यदेश एवं पूर्व अंचल की भाषा में मूल आर्यभाषा से भिन्नताएँ आ गई थीं, इससे यह भी प्रमाणित होता है कि उस समय संस्कृत भारत में बोलचाल की भाषा थी।

हमने जैसा पहले निर्देश किया है महाकवि भास की भाषा पाणिनि व्याकरण की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। इससे यह सिद्ध होता है कि भास का अस्तित्व पाणिनि की निष्ठित भाषा से प्रायः अवश्य पूर्व था।

भास नाटकचक्र में प्रयुक्त संस्कृत भाषा में निम्नलिखित अपाणिनीय प्रयोग विचारणीय हैं--

(i) अवन्त्याधिपतेः
(ii) तमौषम्
(iii) निगाह्य उल्काम्
(iv) आपृच्छामि भवन्तौ
(v) इहोपलप्स्यति चिरम्
(vi) कथमगणितपूर्वं द्रक्ष्यते तं नरे
(vii) गमिष्ये विबुधावासम्
(viii) कर्षमाणः
(ix) रक्षमाणा
(x) प्रति गर्जमाणम्

विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर आते हैं इनमें से कई प्रयोग तो छन्द की सुविधा के लिये किये गए हैं और कई स्थित्यनुकूल। इस सम्बन्ध में डॉ० कीथ का कहना है कि भास के इन आर्ष प्रयोगों पर सम्भवतः रामायण तथा महाभारत के आर्ष प्रयोगों का प्रभाव है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नाट्यशास्त्र की प्राचीन परम्परा से यह सिद्ध है कि संस्कृत के नाटकों में प्राकृत भाषा का प्रयोग अपेक्षित है। सामान्यतः संस्कृत नाटकों में दो प्रकार की प्राकृत प्रयुक्त होती है। नाटकों के पद्यभाग में महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग तथा गद्यभाग में शौरसेनी का प्रयोग देखा जाता है। किन्तु भास ने अधिकतम नाटकों में शौरसेनी प्राकृत का ही प्रयोग किया है। इनका एक नाटक 'दूतवाक्य' है जिसमें प्राकृत का प्रयोग नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी नाटकों में प्राकृत का प्रयोग है। मागधी का प्रयोग इन्होंने प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण, चारुदत्त, बालचरित, पञ्चरात्र तथा कर्णभार में किया है।

जिस प्र कार प्राचीन भारतीय आर्यभाषा को साधारणतया संस्कृत कह दिया जाता है, उसी प्रकार मध्य भारतीय भाषा के लिए 'प्राकृत' शब्द का व्यवहार किया जाता है। प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति प्रकृति अर्थात् जनसाधारण से है। अतः प्राकृत का अर्थ हुआ जन-साधारण की भाषा। शिष्ट समाज की भाषा का संस्कृत से भेद करने के लिए जनसामान्य की भाषा की प्राकृत की संज्ञा दी गई है।

भासने अपने नाटकों में स्त्री-पात्रों के लिए शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग किया है। मध्यदेश की भाषा होने के कारण यह संस्कृत के बहुत समीप रही है, इसकी अनेक निजी विशेषताएँ भी हैं।

भास और रङ्गमञ्च

रंगमञ्च की दृष्टि से भास के प्रायः सभी नाटक उपयुक्त हैं। इनके नाटकों के दृश्यों में यदि सामान्य परिवर्तन कर दिये जाँय तो सभी नाटक आसानी से खेले जा सकते हैं। इनके कुछ नाटक ऐसे हैं जिनके बीच-बीच में संगीत और नृत्य का भी समायोजन किया गया है। बाल-चरित के तृतीय अङ्क में हल्लीषक नृत्य की योजना इस दृष्टि से अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है। पञ्चरात्र के द्वितीय अंक में भी कुछ इसी ढंग की योजना की गई है। अभिषेक में गंधर्व और अप्सरा के द्वारा विष्णुस्तुति की योजना इसी संगीत-संदर्भ की एक कड़ी है। इनके सभी नाटक विस्तार-दोष से रहित होने के कारण ही अभिनेय हैं। घटनाचक्र की दृष्टि से उदयन सम्बन्धी एवं प्रणयकथा वाले नाटक आसानी से मंच पर उतारे जा सकते हैं। भारतीय नाट्यशास्त्र के नियमानुसार मंच पर किसी पात्र का वध वर्जित है। किन्तु भास के नाटकों में बाली, दुर्योधन, कंस प्रभृति का मंच पर ही वध किया गया है। इससे यह पता चलता है कि भास का जानबूझ कर ही नियमविरुद्ध ऐसा विधान है, क्योंकि वे पापी पात्रों की मंच पर मृत्यु दिखाकर सामाजिकों पर विशेष प्रभाव डालना चाहते हैं। चन्द्रमा में कलंक की तरह मंचीय दृष्टि से कुछ दोष भी हैं। अरिष्ट, कालिय, कात्यायनी देवी, कृष्ण तथा देवी के आयुधों का मूर्त्त रूप में मंच पर लाया जाना तथा राजलक्ष्मी और शाप का मानवीरूप में मंच पर आना कुछ अस्वाभाविक सा लगता है। अच्छा होता कवि इन्हें मंच पर न लाकर इनकी सूचना भर देता।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतिमानाटक नाम की अन्वर्थकता

प्रस्तुत नाटक का नाम प्रतिमानाटक है। मलयालम लिपिमें लिखित जिन १३ नाटकों का उद्धार स्व० म० म० गणपतिशास्त्री ने किया है, उनमें यह एक महत्त्व पूर्ण नाटक है। इसका नाम तृतीय अंक के प्रतिमागृह की घटना के आधार पर रक्खा गया है। प्राचीन काल में राजाओं के देवकुल होते थे जिनमें मृत्यु के बाद राजाओं की पत्थर की मूर्तियाँ स्थापित की जाती थीं। इक्षाकुवंश का भी ऐसा ही देवकुल था जिसमें मृत नरेशों की मूर्तियाँ स्थापित की गई थीं। ननिहाल से लौटते समय देवकुल में स्थापित दशरथ की प्रतिमा को देखकर ही भरत ने उनकी मृत्यु का अनुमान अपने आप कर लिया था। इसी कारण से इस नाटक का नाम 'प्रतिमानाटक' पड़ा।

नाम्ना कर्मानुरूपेण ज्ञायते गुणदोषयोः

—औचित्यविचारचर्चा

किसी भी नाटक के प्रकृत अर्थानुकूल नाम चुनने में नाटककार की कला एवं क्षमता लक्षित होती है। प्रस्तुत अर्थ के अनुरूप नाम के सुनते ही सहृदयों के हृदय विकसित हो जाते हैं। इसी अन्वर्थकता की दृष्टि से महाकवि भास ने नाटक की प्रमुख घटना के आधार पर ही इस नाटक का नामकरण किया है। इस नाटक का नाम मूल पुस्तक की संभावनाओं को अभिव्यक्त करता है।

प्रतिमा के इतिवृत्त का मूलाधार

भारतीय काव्यशास्त्र में दो प्रकार की कथावस्तु का विवेचन है। एक है प्रसिद्ध और दूसरा है उत्पाद्य। प्रसिद्ध कथावस्तु में पुराण, दन्तकथायें और इतिहास का अन्तर्भाव है और उत्पाद्य कथा काल्पनिक सृष्टि होती है। भारतीय साहित्य के समृद्ध युग के समस्त महाकाव्यों एवं नाटकों के कथानक 'प्रसिद्ध' अर्थात् पुराण-इतिहास पर आश्रित हैं। प्रतिमा-नाटक का मूलवृत्त भी वाल्मीकि-रामायण पर आश्रित है। वाल्मीकि-रामायण के अयोध्या एवं अरण्यकाण्ड में वर्णित वृत्त ही वस्तुतः इस नाटक का आधारवृत्त है।

किसी भी सुन्दर वस्तु में, चाहे वह जीवधारी हो या अवयवों से संघटित कोई अन्य पूर्ण पदार्थ, अंगों का व्यवस्थित अनुक्रममात्र पर्याप्त नहीं है, वरन् उसका एक निश्चित आयाम भी होना चाहिए, क्योंकि सौन्दर्य आयाम और व्यवस्था पर निर्भर होता है। इस दृष्टि से रामायण के दो काण्डों की घटनाओं को ही भास ने अपनी नाटकीय कल्पना से अभिनेय बनाया है। यद्यपि भास के अन्य रूपकों की अपेक्षा प्रतिमा का स्वरूप विस्तृत है किन्तु नाटकीय आयाम की दृष्टि से सात अंकों यह नाटक सुन्दर एवं व्यवस्थित है।

प्रतिमानाटक की कथावस्तु का मुख्य गुण इसकी एकान्विति है। श्री राम का सीता और लक्ष्मण के साथ वनगमन नाटक की प्रमुख घटना है जिसका अवबोध प्रतिमागृह से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्बन्धित है। यह घटना नाटकीय चक्र में इस तरह गुंथी है कि राम का वनगमन स्वतः सम्पूर्ण कार्य व्यापार को अपने साथ लेकर कथानक की धुरी बन गया है। कथानक की सारी संघटनाएँ इस तरह सजाई गई हैं कि इसके एक अंग को भी अगर अपनी जगह से इधर-उधर किया जाय तो नाटक का सर्वाङ्ग ही शिथिल हो जाय। अतः यह कहा जा सकता है कि इस कथानक में पूर्ण एकान्विति है।

प्रतिमा की कथावस्तु का दूसरा गुण है इसकी पूर्णता। नाटक की घटनाओं को इस तरह सजाया गया है कि नाटक के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते प्रेक्षकों की प्रायः सम्पूर्ण जिज्ञासा की सम्पूर्त्ति हो जाती है। राम के राज्याभिषेक की स्थिति से उन्हें हटाकर वन भेजा गया। प्रेक्षकों का कौतुक या जिज्ञासा जो यहाँ लगी —राम के राज्याभिषेक होते ही-उसकी सम्पुष्टि हो जाती है। यहाँ कथानक का अवसान प्रेक्षकों की पूर्ववर्त्ती परिचित घटनाओं का अनिवार्य परिणाम हुआ है। प्रेक्षकों की प्रारंभ में उत्पन्न जिज्ञासा की क्रमिक पूर्ति की अनिवार्य व्यवस्था की गई है। इस दृष्टि से भी प्रतिमा का कथानक उचित है।

प्रतिमा के कथानक में कुछ ऐसे प्रसंगों का भी समावेश किया गया है जो संभाव्यता या आवश्यकता के नियम के अधीन संभव हैं। रामायण में घटित घटनाओं के सन्निवेश के साथ ही संभाव्य घटनाओं का पल्ला भी नहीं घटा है। पर नाटककार पूर्णतः सचेष्ट है कि नाटक की एक भी घटना असंभाव्य न हो। अतः इस वृत्त की सारी घटनाएँ संभाव्य की परिधि में घटित तथ्यों का विश्लेषण बन गया है।

इसके कथानक के विभिन्न अंगों का विकास सहज रूप में हुआ है। संवृत्ति विवृत्ति, स्थिति, विपर्यय और अभिज्ञान की दृष्टि से भी प्रतिमानाटक की कथावस्तु सतेज है। इसकी सारी घटनाएँ एक दूसरे का सहज विकास है। इसके कथानक में श्रोता या प्रेक्षक के मन में कुतूहल उत्पन्न करने की पूर्ण क्षमता है। इसकी घटनाएँ अचानक मोड़ लेकर सहसा लोगों को चौंका देती हैं। इसमें कार्य-कारण की पूर्वापरता इस तरह व्यवस्थित की गई है कि पद-पद में प्रेक्षक विस्मय विमुग्ध होता चलता है। इसकी वस्तुसंघटना, सुगठित, सुनियोजित एवं मनोरम है। इसमें विभिन्न प्रसंगों की योजना इतने कौशल से की गई है कि उनमें वास्तव एवं सामञ्जस्य बना रह गया है और सामाजिकों का औत्सुक्य अन्त तक भंग नहीं होने देता। कथावस्तु के विश्लेषण से सम्बन्धित एक पाश्चात्य विद्वान् कोलरिज का कहना है कि किसी भी नाटक की वस्तु का अभिप्राय मात्र कथा से नहीं है बल्कि उस पूरे परिवेश से है जो कथानक को एक रूप देता है।

प्रतिमा की रसयोजना एवं अंकविभाजन

रसव्यञ्जना की दृष्टि से प्रतिमा नाटक का अपना अलग महत्त्व है। संभोग की सफलता तथा वियोग की मर्मद्रावक विह्वलता—में करुणों की ऐसी हृदयस्पर्शी मन्दाकिनी इसमें प्रवाहित हुई है कि सहृदय पाठक उसमें अवगाहन करते नहीं अघाता। अन्य रसों के भी मधुर एवं मार्मिक छींटे अथवा मोहक ऊर्मियाँ इस मन्दाकिनी की महिमा में योग देती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रथम अंक

(प्रथम-द्वितीय दृश्य)

महाराज दशरथ के राजप्रासाद में राम के राज्याभिषेक की तैयारी चल रही है। महाराजा की आज्ञा से अभिषेक की पूर्ण तैयारी कर ली गई। प्रतिहारी उनकी आज्ञा के सम्बन्ध में कन्चुकी से सारी बातें जानना चाहती है। कन्चुकी द्वारा प्रतिहारी को राजा की सारी स्थिति का पता चल रहा है। राजछत्र, राजसिंहासन एवं मंगल कलश की तैयारी पूरी हो चुकी है। राजपुरोहित अभिषेक के लिए राजाज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे थे कि सहसा अभिषेक के बाजे बन्द हो गये। बालकों से खोलती सीता शंकाकुल हो उठती हैं। रामको ही उठना पड़ता है। उन्हें वन जाने की आज्ञा मिलती है। वन जाने से पूर्व राम ने सीता के आग्रह पर लक्ष्मण को और लक्ष्मण की प्रार्थना पर सीता को वन जाने की अनुमति देकर, उन दोनों के साथ वन के लिए प्रस्थान किया। मोह एवं क्रोध उनके कर्त्तव्यपथ में बाधक नहीं बन पाते। इस अंक के प्रारंभ में जो वात्सल्य का प्रवाह उमड़ा वह करुणा की गंभीरता में खो गया।

द्वितीय अंक

इस अंक में शोकविह्वल दशरथ का मार्मिक चित्रण हुआ है। राम को वन जाने से रोकने से असमर्थ महाराज शोकोन्मत्त हो उठे। उन्होंने अपनी चेतना खो दी। आर्त्त, विह्वल महाराज धरती पर जलहीन मत्स्य की तरह छटपटाने लगे। कौसिल्या उन्हें आश्वस्त करने मे सायास यत्नशील थीं। इसी बीच अयोध्या के बाहर राम, लक्ष्मण और सीता को छोड़ कर सुमन्त्र के आगमन और से रामवनगमन का समाचार सुनकर महाराज दशरथ मूर्च्छित होकर गिरे और निष्प्राण हो गये। करुणा मानो बीभत्स को साथ लेकर मूर्त्तिमन्त हो उठी।

तृतीय अंक

भ्रातृप्रेम की साक्षात् प्रतिमूर्ति भरत ननिहाल से लौटने वाले थे। मृत महाराज दशरथ की प्रतिमा स्थापित हो रही थी। इस अवसर पर अन्तःपुर की रानियाँ वहाँ उपस्थित होने वाली थीं पिता की अस्वस्थता की खबर सुनकर आकुल भरत अयोध्या की ओर लौट रहे थे। भरत बहुत दिन से ननिहाल में थे। उन्हें यह प्रतिमागृह देवालय सा प्रतीत हुआ। इतनी ही देर में भरत के स्वागतार्थ उपस्थित व्यक्ति ने अयोध्या-प्रवेश के पूर्व शुभ मुहूर्त की यहीं प्रतीक्षा करने को कहा। देवदर्शनार्थ वे प्रतिमागृह में पहुँच गये। वहाँ देवकुलिक ने उन्हें क्रमशः दिलीप, रघु और अज की प्रतिमाओं का परिचय दिया। उन्हें अब पता चला यह देवालय नहीं प्रत्युत उनके पूर्वजों का स्मारक गृह है। प्रतिमागृह में स्वर्गीय महाराज दशरथ की स्थापित प्रतिमा को देखते ही भरत मूछित हो गये। मूर्च्छा टूटने पर भरत को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राम-वनगमन तथा दशरथ-मरण का वृत्तान्त सुनते ही भरत पुनः चेतनाशून्य हो गये। इसी बीच राजमाताएँ भी वहाँ उपस्थित हो जाती हैं। भरत ने अपनी अनुपस्थिति में इस अनर्थ का मूल कारण अपनी माँ-कैकेयी को ही समझा। इस लिये खुले शब्दों में उन्होंने अपनी माँ कैकेयी की भर्त्सना की। वृद्ध मंत्री सुमन्त्र को साथ लेकर राम को जंगल से लौटा लाने के लिये अयोध्या से प्रस्थान किया।

चतुर्थ अङ्क

राम लक्ष्मण और सीता के साथ वनवासी बने दण्डकारण्य में थे। भरत सुमन्त्र को साथ लेकर राम की कुटिया पर पहुँच गये। भरत की आवाज पहचानते ही राम उनसे मिलने के लिए उत्सुक हो गये। बातचीत के बाद भरत राम की पादुका लेकर अयोध्या लौट गये। भरत की शर्त राम ने मान ली। वनवास की अवधि समाप्त होते ही वे अपना राज्य-भार संभाल लेंगे। इस बीच भरत उनका प्रतिनिधित्व करेंगे। इस अङ्क में प्राणवत्ता वियोग-मूलक भ्रातृत्व के साथ वात्सल्य-रस का अपूर्व प्रवाह है।

पञ्चम अङ्क

पितृश्राद्ध के लिए राम चिन्तातुर थे। सहसा अतिथि की आवाज सुनकर राम बाहर आ गये। कपटी परिव्राजक के रूप में रावण उपस्थित था। राम ने परिव्राजक का अतिथि-सत्कार किया। आतिथ्य ग्रहण करने के बाद अतिथि ने राम को श्राद्ध के लिए स्वर्णमृग के निवाप का उपदेश दिया। स्वर्णमृग को देखते ही राम ने उसका अनुसरण किया। तीर्थागत कुलपति की अभ्यर्थना में लक्ष्मण पहले ही कुटीर छोड़ चुके थे। आतिथ्य के लिये सीता बाहर रुकी थी। एकान्त देखकर रावण ने सीता को अपना असली परिचय दिया। सीता भयभीत हो गईं। रावण ने अवसर का लाभ उठाकर बलात् सीता का अपहरण किया। अपहृत सीता का करुण-क्रन्दन सुनकर जटायु ने मार्गावरोध करना चाहा। इस अङ्क में अपहृत सीता की विकल स्थिति में करुण और अन्त में जटायु तथा रावण-सन्मुखीकरण में अद्भुत रस का उत्थापन हुआ है।

षष्ठ अङ्क

(प्रथम दृश्य)

रावण और जटायु का आकाश में युद्ध ठन गया। राम की अनुपस्थिति में सीता को छुड़ाने के लिए जटायु ने अपने जान की बाजी लगा दी। भयङ्कर युद्ध के बाद जटायु की मृत्यु हो गई। जनस्थान के दो ऋषिकुमार सीताहरण और जटायुवध की घटना से अवगत कराने के लिए राम को ढूँढने निकले।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(द्वितीय दृश्य)

जनस्थान से लौटकर वृद्ध सचिव सुमन्त्र ने सीताहरण की सूचना भरत को दी। पहले तो इस दुःखद घटना को उन्होंने पर्याप्त छिपाने की चेष्टा की पर असत्य भाषण के भय से इसे छिपा न सके। भरत ने इस दुःखद समाचार का सारा क्रोध कैकेयी पर उतार दिया। अन्ततः कैकेयी ने अपने दोष का परिहार तथा राजा की शापकथा का सम्पूर्ण भेद भरत को समझाकर शान्त किया। सुमन्त्र के साक्ष्य पर भरत ने इसे स्वीकार किया। इसके बाद भरत ससैन्य रावण पर आक्रमण की तैयारी में लग गये। इस अंक में जटायु की मृत्यु में करुण तथा रहस्योद्घाटन में अद्भुतरस का उत्थापन हुआ है।

सप्तम अंक

रावणविजय के बाद राम पुनः जनस्थान पहुँचे। लक्ष्मण और जानकी उनके साथ ही थे। परस्पर तीनों में पूर्व परिचित स्थानों के सम्बन्ध में बातें चल ही रहीं थीं कि ससैन्य भरत के आगमन की उन्हें सूचना मिली। भरत के साथ वृद्ध सचिव सुमन्त्र तथा कैकेयी प्रभृति मातायें भी आई थीं। सब के सामने ही भरत ने राम को उनका राज्यभार समर्पित कर दिया। महारानी कैकेयी के आदेश से राम ने अपना राज्यभार स्वीकार कर लिया। इस अंक में वात्सल्य एवं अद्भुत की मनोरम व्यञ्जना हुई है। नाटकान्त में अनेक रसों की चर्वणा के बाद सामाजिकों की चित्तवृत्ति शान्तरस में निमज्जित हो जाती है—

यथा रामश्च जानक्या बन्धुभिश्च समागतः।
तथा लक्ष्म्या समायुक्तो राजा भूमिं प्रशास्तु नः॥

रामायण के मूलवृत्त से प्रतिमा के इतिवृत्त की भिन्नता

प्रतिमानाटक का इतिवृत्त सात अङ्कों में विभाजित है। इसके इतिवृत्त का मूलाधार रामायण है। यह नाटक उस मूल वृत्त का कविकल्पनाप्रसूत नवीकृत रूपान्तर है। यद्यपि रामायण के प्रख्यात इतिवृत्त के निर्वाह में भास को बड़ी सावधानी वरतनी पड़ी है, फिर भी रामायण के उक्त प्रख्यात वृत्त में इन्होंने कुछ हेर-फेर कर उसकी वास्तविकता को अक्षुण्ण रखते हुए अपनी वस्तु का निर्माण किया है।

प्रतिमानाटक के प्रथम अंक में सीता की वल्कल-क्रीड़ा कवि का कल्पनाप्रसूत संयोजन है। रामायण में इस घटना का कहीं भी उल्लेख या संकेत नहीं है। इस परिवर्त्तन ने कथा में पूर्ण नाटकीयता ला दी है तथा कथा के मूल स्रोत को निर्बाध रूप से आगे बढ़ने का मार्ग परिष्कृत एवं प्रशस्त कर दिया है। इस परिवर्त्तन से सीताराम के मधुर गार्हस्थ्य जीवन का प्रकाशन होता है। राम के राज्याभिषेक में रामायण में भरत के साथ शत्रुघ्न को भी अनुपस्थित रखा गया है। जब कि इस नाटकमें इस शुभावसर पर शत्रुघ्न अयोध्या में उपस्थित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिखाये गये हैं। ऐसा करके भासने भ्रातृत्व का एक आदर्श स्थापित किया है। राम के शील और भरत के भ्रातृत्व की पृष्ठभूमि में राज्याभिषेक के अवसर पर शत्रुघ्न की अयोध्या में उपस्थिति आवश्यक प्रतीत होती है। मूल कथा में राम कैकेयी के भक्त नहीं हैं, किन्तु सीताहरण पर उन्होंने अपने बद्ध मूल भाव को व्यक्त किया है। इस प्रकार की भावना इस नाटक में कहीं भी व्यक्त नहीं की गई है, प्रत्युत नाटक में यह जानने पर भी कि कैकेयी ने अभिषेक को रोका है—राम कैकेयी पर अपना थोड़ा भी क्षोभ प्रकट नहीं होने देते हैं। ठीक इसके विपरीत, लक्ष्मण ने जब कैकेयी पर दोषारोपण किया तो उसे—'आः, अपण्डितः खलु भवान्' कहकर राम ने उनकी भर्त्सना ही की है।

द्वितीय अंक में भास ने मूलवृत्त में थोड़ा परिवर्त्तन किया है किन्तु यह हल्का परिवर्त्तन भारतीय संस्कृति की ओर एक गंभीर संकेत बन गया है। रामायण के दशरथ मूक हैं। कैकेयी के उत्पीडन से दग्ध रहकर 'सौतिया डाह' के विरुद्ध मुँह नहीं खोलते, किन्तु भास के दशरथ इस पीड़ा के विरुद्ध चीख उठते हैं—

> गतो रामः प्रियं तेऽस्तु, त्यक्तोऽहमपि जीवितैः।
> क्षिप्रमानीयताम् पुत्रः पापं सफलमस्त्विति ॥ २।२०

कैकेयी के सौतिया डाह से विचलित होकर आक्रोश तथा क्षोभ से काँपते हुए शब्दों में जो कुलिश कठोर बचन दशरथ ने कहा है, उसका कोई जवाब नहीं। लज्जा, रोष और आक्रोश से उद्दीप्त दशरथ के इस कथा में पौरुष की दीप्ति चमक उठी है। मृत्युशय्यापर तड़पते दशरथ के सन्मुख स्वर्ग से आये पूर्वजों का जो दृश्य है वह नाटककार की निजी कल्पना है, रामायण में इसका कोई निर्देश नहीं है। किन्तु इन दोनों कल्पनाओं के माध्यम से भास ने नारी के सम्बन्ध में विशृंखल तत्कालीन संस्कृति को आत्मसात करने की चेष्टा की है वहीं दूसरी ओर मरणासन्न दशरथ के उदात्त चरित में समाज के, उच्चगृह के एवं सम्भ्रान्त परिवार के परस्पर विरोधी तथ्यों को संभालने की लचक भर दी है। स्वर्ग से समागत पूर्वजों के दृश्यविधान द्वारा भास ने दशरथ के कर्म-संकुल जीवन के सभी अवयवों की सार्थकता को कायम रखने के लिए त्याग और बलिदान की व्यापकता को प्रदर्शित करने की चेष्टा की है।

तृतीय अंक में देवकुल की कल्पना नाटककार की स्वतंत्र उर्वर मस्तिष्क की देन है, रामायण में प्रतिमागृह की कुछ चर्चा भी कहीं नहीं है किन्तु भास के नाटक में प्रतिमागृह की चर्चा न तो आकस्मिक है और न कठिन प्रयोग ही प्रत्युत यह घटना सम्पूर्ण नाटक की केन्द्रभूमि बन गई है। इस घटना को भास ने बड़ी स्वाभाविक रीति से नियोजित किया है। इस दृश्य के सन्निवेश से दशरथमरण जैसा दुःखद प्रसंग भरत के सामने बिना मुंह खोले अत्यन्त कौशल पूर्वक स्वयं स्पष्ट हो गया है। प्रतिमागृह की अकेली घटना ने इस नाटक के सुनियोजित प्रसंगों के लिए मनोवैज्ञानिक कड़ी प्रस्तुत कर दी है। ऐसी कड़ी, जो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वर्त्तमान को अतीत से जोड़ती है, कार्य को कारण से जोड़ती है और मानवजीवन को ईश्वरीय जीवन से जोड़ती है। भास की यह योजना नाटक की एक विचित्र घटना है जो नाटक को पूर्ण रूपेण आच्छादित किये हुए है, किन्तु जो भरत के भ्रातृत्व का थोड़ा भी प्रभाव छिन्न नहीं करती, प्रत्युत यहीं से उसका कर्मसंकुल जीवन प्रारंभ होकर उसे असाधारण व्यापकता एवं सार्वलौकिकता प्रदान करती है।

पञ्चम अंक में रावण जिस तरह और जिस अवसर पर राम के सामने उपस्थित होता है–यह रामायण की घटना से मेल नहीं खाता है। इसमें कंचनपार्श्व की कल्पना भी अभिनव है। दशरथ के श्राद्धनिमित्त कंचनपार्श्व के अन्वेषण में राम को सीता के समीप से अलग हटाने का क्रम भी एक विचित्र है। तीर्थाटन से लौटे कुलपति के सन्मानार्थ कुमार लक्ष्मण को आश्रम से हटा देने की कला भी अद्भुत है। रावण-समागम एवं सीता-हरण की सारी घटनाएँ कुमार लक्ष्मण की दीर्घ अनुपस्थिति में ही घट जाती हैं। इस तरह लक्ष्मण की अनुपस्थिति में आश्रम में घटित होने वाली घटनाओं की जहाँ एक ओर स्वाभाविक पीठिका उत्पन्न होती है, वहीं दूसरी ओर महारानी सीता के शील का भी संरक्षण होता है। रामायण की सीता प्रतिमानाटक की सीता के सन्मुख बिल्कुल हल्की नजर आती है। रामायण में मायामृग के भुलावे में सुदूर निकले राम के पीछे लक्ष्मण को न जाते देख सीता अत्यन्त क्रुद्ध हो जाती है और उचित अनुचित का बिना कुछ ख्याल किये सामान्य झगड़ालू औरत की तरह अनाप-सनाप बकने लगती है—

तमुवाच ततस्तत्र क्षुभिता जनकात्मजा,
सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातस्त्वमसि शत्रुवत्।
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे,
इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामम् लक्ष्मण मत्कृते॥
लोभात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम्।
व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते॥

—अरण्यकाण्ड ४५-५-७

सीता की इस उक्ति से लगता है जैसे किसी निम्न स्तर की कोई महिला अपने ही से सामान्य कोटि के पुरुष से रूखे वचन कह रही हो, किन्तु भास ने सीता के इस निम्न व्यक्तित्व का चित्रण करना अनुचित समझकर लक्ष्मण को आश्रम से अनुपस्थित कर सीता के सम्मानित व्यक्तित्व का संरक्षण किया है।

षष्ठ अंक में वृद्ध सचिव सुमन्त्र का पुनः दण्डकारण्य जाना और वहाँ से सीताहरण की सूचना भरत को देना-भास की अपनी कल्पना है। रामायण में सुमन्त्र की दुबारा वनयात्रा का कहीं उल्लेख नहीं है। सीताहरण से दुःखी भरत का कैकेयी को कोसना–कैकेयी द्वारा रहस्योद्घाटन, सुमन्त्र की साक्षी, चौदह दिन की जगह चौदह वर्ष के लिए कैकेयी द्वारा भ्रम-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वश रामवनवास की याचना रामायण की कथा से बिलकुल भिन्न है। रामणविजय के लिए भरत की सैनिक तैयारी भी रामायण के वृत्त से भिन्न है। कहने का तात्पर्य यह है कि वृत्त का परिवर्त्तन पात्रों के व्यक्तित्व के अनुरूप गरिमा एवं अभिरामता के उचित उद्गारों से उद्भासित है, जिसे खण्ड-खण्ड रूप में भी आस्वाद्य समझा जा सकता है तथा संदर्भशुद्धि एवं प्रबन्धपरिवेश के अनुरोध से इन चरित्रों को अखण्ड में भी देखा जा सकता है।

सप्तम अंक में राम का राज्याभिषेक जंगल में ही कराया गया है। अयोध्या की प्रजा, विभीषण, सुग्रीव, जाम्बवान्, हनुमान आदि के सम्मुख ही महारानी कैकेयी के आदेश से भरत ने राम को उनका राज्य लौटाया था। पुनः राज्याभिषेक के लिए सबों का अयोध्या के लिए प्रस्थान कवि की अपनी कल्पना है। एक बात ध्यान देने लायक है कि इस नाटक में भरत को लक्ष्मण से छोटा बतलाया गया है जिसका औचित्य ठीक से हृदयङ्गम नहीं हो पाता है। फिर भी ऐसे कतिपय छोटे-मोटे दोषों के बावजूद यह कहा जा सकता है कि भास ने अपना समस्त कल्पनावैभव जी खोलकर इस नाटक में लुटाया है। वृत्त का एक एक परिवर्त्तन इतना सटीक, अर्थगर्भ, प्रतीकात्मक एवं सोझल है कि हम नाटककार की प्रशंसा किये बिना रह नहीं सकते। स्थल-स्थल पर छोटे बड़े आवर्त्त हैं, जहाँ पाठक या श्रोता गहरे पैठकर अपूर्व रसबोध प्राप्त करता है।

प्रतिमानाटक का शास्त्रीय पक्ष

प्रतिमानाटक का सम्पूर्ण घटनाचक्र सात अंकों में विभाजित है। इनसे प्रारंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम इन पाँचों अवस्थाओं का स्पष्ट बोध होता है।

प्रथम अंक में नाटक तथा उनके पात्रों का परिचय प्राप्त हो जाता है। फल समस्या का खुला उल्लेख है तथा प्रमुख पात्रों की मौलिक विशिष्टताओं के साथ उनके कुल, शील एवं प्रधान मनोवृत्तियों का निदर्शन है। गृह-कलह, महाराज दशरथ का पुत्रस्नेह, राज्याभिषेक पर रोक राम को वन जाने की आज्ञा, लक्ष्मण का कैकेयी पर क्रोध, राम की उदासीनता, सीता और लक्ष्मण के साथ वनगमन की तैयारी प्रभृति समस्याओं का जाल फैल जाता है।

द्वितीय अंक इसी समस्या का निदर्शन है। राम सीता और लक्ष्मण को वनगमन से रोकने में असमर्थ महाराज दशरथ शोकोन्मत्त होकर मूर्च्छित होकर गिरते हैं और निष्प्राण हो जाते हैं। अब साम्राज्य संरक्षण की विशिष्ट समस्या सन्मुख उपस्थित हो जाती है।

तृतीय अंक प्रयत्नावस्था का है। फलप्राप्ति में दो विघ्न हैं—गृह कलह जो महारानी कैकेयी के कुचक्र के रूप में दिखाई पड़ता है तथा रामकी वनयात्रा। दोनों समस्याओं का उपाय निकालना है। प्रयत्नस्वरूप भरत जी ननिहाल से ठीक समय पर प्रतिमा गृह में पहुँच कर सारी अवस्थाओं से अज्ञात होकर परिस्थिति पर नियंत्रण पाने के लिए प्रयत्नशील होते दीखते हैं।

इसी अंक में भरत का कैकेयी पर क्षुब्ध होना तथा अपने राज्याभिषेक के बदले रामके साथ वनवास निश्चय करने की दृढ़ता से उत्पन्न समस्याओं का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होने लगता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चतुर्थ अंक में घटनाक्रम पूर्ववत् चलता रहता है। सुमन्त्र के साथ भरत जी रामकी कुटिया पर जा पहुँचे हैं। भ्रातृमिलन के बाद भरत राम के प्रतिनिधि रूप में अयोध्या का राज्य चलाने पर किसी प्रकार तैयार हो जाते हैं और राम, सीता तथा लक्ष्मण से विदा लेते हैं। इस प्रकार इस अंक में प्राप्त्याशा की स्थापना न होकर राम के दुःखों का द्वार खुल जाता है।

पंचम अंक में कपट परिव्राजक के रूप से रावण का समागम काञ्चनपार्श्व के पीछे राम का जाना, सीतापहरण जैसी घटनाओं से राम के दुःखों की चरम सीमा का बोध होता है। इसे ही पाश्चात्य नाटक प्रणाली में चरम सीमा कहा जाता है।

षष्ठ अङ्क में सीतापहर्त्ता रावण के साथ आकाश में जटायु का युद्ध होता है। युद्ध में जटायु की मृत्यु हो जाती है। इसी अंक के दूसरे दृश्य में जनस्थान से लौटे सुमन्त्र अयोध्या के राजप्रसाद में भरत से मिलते हैं। सीतापहरण के संवाद से दुःखी भरत कैकेयी पर अपना रोष प्रकट करते हैं। वहीं सुमन्त्र के साक्ष्य पर कैकेयी ने सन्मुख रहस्योद्घाटन किया। आश्वस्त भरत रावण पर आक्रमण की तैयारी में जुट जाते हैं—इससे उज्ज्वल भविष्य की आशा में नियताप्ति का इसी अंक में बोध होता है।

सप्तम अंक सुन्दर और प्रभावशाली है। यहाँ अन्त में रावण का गढ़ टूटता है। युद्ध में उसकी पराजय होती है। लंका से सीता को लेकर राम पवित्र उत्साह के साथ जनस्थान लौट कर आते हैं। यहीं सम्पूर्ण प्रजामण्डल, माताएँ, गुरुजन एवं भाई भरत से उनकी भेंट होती है। यही उनका राज्याभिषेक भी हो जाता है। सभी विघ्न दूर हो जाते हैं। अतः इस अंक में फलप्राप्ति का स्वरूप सर्वथा भव्य एवं प्रभावोत्पादक है।

अर्थप्रकृति

कार्य की अवस्थाओं के साथ अर्थ प्रकृतियों का स्पष्ट विनियोग होता गया है।

बीज—अर्थ प्रकृति—प्रथम दृश्य—सूत्रधार—'भवतु विज्ञातम्,—मुदिता नरेन्द्र भवने…प्रतिहाररक्षीव' ॥ २ ॥ इसी स्थल से फलाधिकारी कार्य व्यापार में संलग्न होता है।

बिन्दु—अंक के अन्तिम दृश्य में जहाँ, दशरथमरण का प्रसंग है, यहाँ तक मुख्य कथा-वस्तु अविच्छिन्न नहीं रहती। किन्तु अर्थप्रकृति चतुर्थ अंक के पूर्वार्द्ध तक चलती रहती है। इसके बाद कुछ नवीन योजना [illegible] अन्तर्निहित हो जाता है। यहीं से पताका प्रकरी और कार्य का सूत्रारंभ होकर नाटकान्त में अवसन्न होते हैं।

सन्धियाँ

मुख—भरत के अयोध्या की रक्षा के लिए प्रयत्नशील होने से मुखसंधि प्रारंभ होती है। यहीं से प्रारंभ अवस्था तथा बीज अर्थप्रकृति का बोध होता है। मुखसंधि द्वितीय अंक की समाप्ति तक चलती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

 BVBSSMV

प्रतिमुख—भरत का रामोन्मुख जंगल की ओर होना ही प्रतिमुख संधिका प्रारंभ होता है। यहाँ पर बीज की लक्ष्यालक्ष्यबोधक अनेक बातें हमारे सामने आने लगती हैं। इसका विस्तार उस स्थल तक चलता है जहाँ सुमन्त्र भरत को जानकीहरण की सूचना देते हैं।

गर्भ—अयोध्या के राजमहल में कैकेयी, सुमन्त्र, भरत और राजपुरोहित के सम्मेलन में रहस्योद्घाटन के साथ गर्भसन्धि प्रारंभ होती है। यहाँ बीज का चढ़ाव-उतार दिखाई देता है और कुतूहल बढ़ जाता है। दुविधा की दशा पंचम अंक के द्वितीयार्ध तक चलती है। यहाँ तक गर्भसन्धि चलती है।

विमर्श—रावण का परिवर्त्तित परिव्राजक के रूप में आश्रम प्रवेश विमर्शसन्धि का स्थल है। यह विपत्तिमूलक है। नियताप्ति कार्य की झलक भी इसी अंक में हमें मिलती है।

निर्वहण—लंकाविजय के साथ ही निर्वहण सन्धि प्रारंभ हो जाती है। यहाँ से विरोध का स्वतः सफाया हो जाता है तथा राम की सफलता का मार्ग स्वयं प्रशस्त होते चलता है। निर्वहण सन्धि फल प्राप्ति तक चलती है।

नाटककार ने नाटक को रोचक बनाने के लिए यथावसार एवं यथास्थान गीतों का समावेश किया है—ये गीतात्मक छंद, स्थिति एवं पात्र के विचार से लिखे गये हैं। अतः ये सर्वथा स्वाभाविक हैं। यह नाटक तत्कालीन साहित्यिक सृष्टि का एक सच्चा स्वप्न है, मानवता का मानचित्र है, तथा भारतीय संस्कृति का दर्पण है।

चरित्रचित्रण

राम

राम प्रतिमा-नाटक के धीरोदात्त नायक हैं। नाटककार ने राम के व्यक्तित्व में अनासक्तिमय प्रत्यक्ष कर्मवाद की मंजुल झांकी प्रस्तुत की है। निष्काम भाव से जीवन के कठोर कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण होते हैं। अन्त में वे अपने अतुलनीय पराक्रम से प्राप्त लंका के साम्राज्य को रावण के भाई विभीषण को आसानी से समर्पित कर देते हैं।

राम के चरित्र में प्रारंभ से ही विरागपूर्ण भावना का दर्शन होता है। कैकेयी के द्वारा उन्हें वनवास मिला है, पर उसके प्रति किञ्चिन्मात्र भी क्रोध नहीं है, राज्याभिषेक छोड़कर उन्हें वन जाना पड़ रहा है, पर वे इससे जरा भी विचलित नहीं होते हैं। लोग इस धैर्य पर आश्चर्य प्रकट करते हैं, पर वे इसे सामान्य बात समझकर टाल जाते हैं। उनका कहना है यदि पुत्र ने अपने पिता की आज्ञा का पालन किया तो इसमें आश्चर्य क्या? इतना ही नहीं वे रामायण के राम से भी अधिक प्रभविष्णु, सहिष्णु एवं कोमल हैं। अपने वनवास के सम्बन्ध में उनकी यह धारणा उन्हें कितना ऊपर उठा देती है—

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव तावत्, मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव।
नवनृपतिविमर्शो नास्ति शंका प्रजानामथ च न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे॥

—प्रतिमा, १।१४,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किन्तु, रामायण के राम का इस अवसर पर कुछ दूसरा ही रूप है—

गुरुश्च राजा च पिता च वृद्धः क्रोधात् प्रहर्षादथवापि कामात्।
यद् व्यादिशेत् कार्यमवेक्ष्य धर्मं कस्तन्न कुर्यादनृशंसवृत्तिः॥
वा० रा० अ० का० २१, ५६,

वस्तुतः रामायण के राम उनके सामने बौने प्रतीत होते हैं। प्रतिमा के राम महान् त्यागी एवं प्रचण्ड पितृभक्त हैं। ये आदर्शवाद के सजीव उदाहरण हैं। सांसारिकता उन्हें एक विचित्र उलझन में डाल देती है। वैराग्यभावना और कर्त्तव्यबुद्धि के बीच संघर्ष इनके व्यक्तित्व का एक विशिष्ट अंग है। राजकुमार होकर भी जीवन के प्रति निस्पृहता, विपत्तियों के वात्याचक्र में भी कर्त्तव्य के प्रति निष्ठावान् होना इनकी विशालता के प्रतीक हैं।

रामायण के राम जहाँ अपनी विमाता कैकेयी पर क्रुद्ध होकर खरी खोटी सुनाने लगते हैं–

मम प्रवजनादद्य कृतकृत्या नृपात्मजा।
सुतं भरतमव्यग्रमभिषेचयताम् ततः॥—वा० रा० अ० का० २२।१२,

वहीं प्रतिमा के राम अति विनतभाव से माँ की आज्ञा शिरोधार्य करते प्रतीत होते हैं। उन्हें कैकेयी प्रति थोड़ी भी अनास्था नहीं होती। प्रत्युत उन्हें इसमें भी कोई शुभ संदेश ही प्रतीत होता है। वृद्ध सचिव सुमन्त्र जब इस विपत्ति का कारण कैकेयी को बताते हैं, तो राम इसे विपत्ति न मानकर उसकी ओर से वकालत शुरू कर देते है।

यस्याः शक्रसमो भर्त्ता मया पुत्रवती च या।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति॥

भास संस्कृत नाटक के सर्वाधिक भावुक कवि थे। प्रतिमा के प्रत्येक पात्र की मनःस्थिति में अपने आपको ढालकर तदनुकूल सोचने बोलने की अपूर्व क्षमता उन्हें प्राप्त थी। वह राम हों या भरत, रावण हो या विभीषण, सीता हो या कौशल्या, कैकेयी हो या सुमित्रा, सुमन्त्र हो या राजपुरोहित—ऐसा मालूम पड़ता है नाटककार ने अपने व्यक्तित्व को उन विभिन्न पात्रों के व्यक्तित्व से इतना तदाकार कर दिया है कि विभिन्न सत्ता की स्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता।

सीता

प्रतिमा का कथाभाग यद्यपि मूल रूप से वाल्मीकि रामायण का उपजीव्य है तथापि महाकवि भास ने इसकी कथा में परिवर्त्तन लाकर एक विशिष्ट रचना का गौरव दे दिया है। प्रतिमा की सीता भी रामायण की सीता से भिन्न हैं। रामायण की सीता महाराज दशरथ के वनवास की आज्ञा से उत्पीड़ित होकर अपने पति राम पर बरस पड़ती हैं, किन्तु ठीक इसके विपरीत प्रतिमा की सीता इतनी गौरवशालिनी हैं, इतनी गंभीर हैं कि राम के राज्याभिषेक में उसे न तो अधिक प्रसन्नता होती है और न वनगमन सुनकर वह फूफकार हो उठती है। वह तो राम से इतना ही कहती है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रियं मे, महाराज एव महाराजः, आर्यपुत्र एव आर्यपुत्रः ।

लगता है भास ने अपने हृदय की सारी कोमलता लेकर सीता का निर्माण किया है, किन्तु रामायण की सीता इससे भिन्न है। वह अपने अधिकार को जानती है, उसके लिए दृढ़ होकर विरोध भी करती है। राम के वनगमन काल में वह निम्नलिखित शब्दों में अपना अधिकार प्रकट करती है—

"यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघवः ।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान्" ॥

—वा० राम०, अयोध्याकाण्ड ।

निश्चय ही यह केवल पातिव्रत का पालन ही नहीं, प्रत्युत विद्रोही नारीत्व का चीत्कार है। जब कि ऐसे अवसर पर प्रतिमा की सीता केवल इतना ही कहती है—

"ननु सहधर्मचारिणी खल्वहम्"

—प्रतिमा प्र० अं० ।

लंकाविजय के पश्चात् राम ने राक्षस-गृहप्रवासिनी सीता के शङ्कनीय सतीत्व से विचलित होकर आक्रोश तथा क्षोभ से काँपते हुए शब्दों में जो कुलिश कठोर वचन कहे, उसके प्रत्युत्तर में अन्तर में वज्रनिर्घोष और विद्युत् भरी मेघमाला-सी सीता बरस पड़ती है—

किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम् ।
रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव ॥
न तथाऽस्मि महाबाहो यथा मामवगच्छसि ।
प्रत्ययं गच्छ मे स्वेन चारित्रेणैव ते शपे ॥

वह कहती है—जैसे नीच जाति के पुरुष अपनी ही सी साधारण स्त्री से रूखे वचन कहते हैं, वैसे ही कठोर और दारुण वचन आप मुझे क्यों सुना रहे हैं? मैं वैसी नहीं हूँ; जैसी आप मुझे समझ रहे हैं। अपने चरित्र की शपथ खाकर कहती हूँ, आप मेरी बात पर विश्वास कीजिए।

आप ऐसी-वैसी नीच प्रकृति की स्त्रियों की चाल देखकर समूची स्त्री जाति के बारे में आशङ्का कर रहे हैं, किन्तु यदि आपने परीक्षा करके मुझे जाँच लिया है तो इस निर्मूल शङ्का को सर्वथा त्याग दीजिए। यहाँ सीता के प्रभाव के आगे राम तक क्षुद्र दीख रहे हैं।

महाकवि भास ने प्रतिमा में सीता का चरित्र विशेष रूप से अङ्कित किया है। रागरङ्ग के पूर्वाग्रह से रहित, निर्वैयक्तिक दृष्टिकोण से सीता को एक आर्यरमणी के रूप में चित्रित किया है। यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि राम यदि मर्यादापुरुषोत्तम बनकर प्रतिमा में पौरुष के प्रतीक हैं तो सीता उनकी सत्प्रेरणा के रूप में प्रतिष्ठित की गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरत

प्रतिमा में हमें एक तपःपूत, शीलनिधान व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं; जो अर्जित प्रतिभा के सहज तेज से नहीं, पश्चात्ताप के दुःख की आँच से निखरा है। पश्चात्ताप तोड़ता भी है, जोड़ता भी है। पर जब वह तोड़ या जोड़ नहीं पाता है, तब व्यक्तित्व को प्रबल संकल्पशक्ति पर आश्वस्त या आधारित कर देता है। ऐसी कल्याणकारी उद्भावनाओं से प्रेरित, तोड़जोड़ से असम्पृक्त संकटापन्न स्थिति में हम भरत को बिलखते पाते हैं :—

स्पृशति तु यदि नीचो मामयं शुल्कशब्द-
स्त्वथ च भवति सत्यं तन्न देहो विशोच्यः।

—प्रतिमा ३।६।

निश्चय ही ननिहाल से लौटकर भरत, विषम स्थिति में, अन्तर्विरोधी विचारधाराओं के चौराहे पर, प्रतिमागृह में ठहरकर, सोचने के लिए बाध्य हुए थे, और अन्त ने मस्तिष्क-मंथन से उत्पन्न, अमृतमय शुभाशा की परिकल्पना से ही, जनस्थान की ओर दौड़ पड़े थे—

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ॥ प्र० ३।१०।

कैकेयी की कलुषित एवं गंदली गंगा से उत्पन्न अपने विशेषाधिकार को भरत ने अपने भ्रातृत्व पर चढ़ा दिया। उनका यह विचार क्षणिक भावावेश पर निर्भर नहीं था। वह तो अन्तर्व्यथा से उत्पन्न श्रद्धा और निष्ठा की ज्वाला में तपा तपाया था। जनस्थान में ऐसे ही भाग्य से परिपूर्ण भरत को अपने अङ्क में भरकर राम ने कहा था—

सुचिरेणापि कालेन यशः किञ्चिन्मयार्जितम्।
अचिरेणैव कालेन भरतेनाद्य सञ्चितम् ॥ ४।२६

यथार्थतः भरत राम के अनुज हैं, सुख-दुःख के सहभोक्ता हैं। वे अपनी जननी की भूल से पूर्णतः अवगत हैं। अतः इसे मानते हैं कि उनकी जो अन्तःप्रेरणाएँ हैं—अगर उनके साथ माँ के अपराध का बोध न जुड़ा होता, तो संभवतः उनका व्यक्तित्व राम के प्रति इस समर्पण में सर्वाधिक ऊँचा होता। प्रतिमागृह में अपनी माँ कैकेयी को देखते ही भरत जी फूट पड़ते हैं। हाय, माँ कौसल्या और सुमित्रा के बीच खड़ी तुम गंगा यमुना के बीच क्षुद्र नदी की तरह हो तो लगती हो—

मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं न शोभसे।
गंगायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता ॥ ३।१६

इतना कहकर ही भरत को संतोष नहीं होता। कैकेयी के सान्त्वनार्थ कही गयी बातें—बेटा, मैंने क्या किया ? सुनते ही मानो उनकी देह में आग सी लग गयी—तुमने क्या

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हीं किया ? हमें कलङ्क का भाजन बनाया, आर्य राम को वल्कल पहना दिये, राजा की
ौत घर में करा दी, सारी अयोध्या को रुलाया, कुमार लक्ष्मण को हिरणों का साथी बनाया,
ाताओं को प्रिय पुत्र के वियोगदुःख में डाल दिया, सीता को राह की ठिकरी चुनवा दिया,
पने लिए धिक्कार लिया। फिर और तुम्हें चाहिए ही क्या ?

वयमयशसा चीरेणार्यो, नृपो गृहमृत्युना,
प्रततरुदितैः कृत्स्नायोध्या मृगैः सह लक्ष्मणः।
दयिततनयाः शोकेनाम्बाः, स्नुषाध्वपरिश्रमै-
र्धिगिति वचसा चोग्रेणात्मा त्वया ननु योजिताः॥

कुण्ठाओं और अभिरुचियों से संयुक्त आतुर भरत अपनी अन्तर्वेदनाओं और व्यथाओं
राम के चरणों में बिछा देना चाहते थे। जनस्थान में आत्मसमर्पण और पश्चात्ताप ही
की शक्ति थी, राम के चरणों में उमड़ती निष्ठा ही उनका धर्म था और आत्मसमर्पण ही
का लक्ष्य था। समर्पण की अभिरुचि ही उनके आकुल प्राणों की प्रेरणा थी। तभी तो
न्त्र को रोकते हुए उन्होंने कहा था—नहीं, नहीं केवल नाम लेने से मेरा प्रायश्चित
ं होगा। क्या ब्रह्महत्यारे के समागम की सूचना भी कोई दूसरा देता है ?

निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः।
भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति॥ ४।९

भरत के समर्पण में, चिन्तन में, साधन में यहाँ तक कि उनके समग्र जीवन में राम ही
ी दुनियाँ थी, राम ही उनके जीवनधन थे, राम की ओर ही उनके साधक प्राण
ख थे और राम में ही वे अपना अन्तिम लय समझते थे। उनकी निरतिशय भावुकता
मूलक थी। उनका समग्र जीवन ही राममय था। लक्ष्मण के शब्दों में—

अयं ते दयितो भ्राता भरतो भ्रातृवत्सलः।
संक्रान्तं यत्र ते रूपमादर्श इव तिष्ठति॥ ४।११

किन्तु उनका आत्मसमर्पण और क्रियाकलाप राम के लिये सदा की तरह रोचिष्णु,
अतः वहाँ भी सुखद ही थे राम की ऐसी तुष्टि के कारण भरत के आचार-विचार,
ान, मनन, [illegible]कौशल और उदात्तीकृत भावों के समन्वित प्रभाव पर लक्ष्मण ने
था—

मुखमनुपमं त्वार्यस्याभं शशाङ्कमनोहरम्,
मम पितृसमं पीनं वक्षः सुरारिशरक्षतम्।
द्युतिपरिवृतस्तेजोराशिर्जगत्प्रियदर्शनो,
नरपतिरयं देवेन्द्रो वा स्वयं मधुसूदनः॥ ४।८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुछ आलोचकों की दृष्टि में प्रतिमा नाटक में भरत का चरित राम से ऊँचा उठाया ग
है। अतः कुछ की दृष्टि में इस नाटक के नायक भरत हैं और मुख्य रस करुण है।
हो, भरत राम के परम भक्त हैं—इसमें सन्देह नहीं है।

लक्ष्मण

भासने अपनी 'प्रतिमा' नाटकीय घटनाव्यवस्था और परिस्थिति की अपेक्षा चारि
गुरुता को अधिक महत्त्व दिया है। लक्ष्मण के अत्यन्त कठोर एवं कोमल चरित्र को स्वाभा
एवं सरल रीति से अभिव्यक्त कर सांस्कृतिक चेतना का विकास किया है। इनकी चरि
चारुता में त्याग, भ्रातृप्रेम, आत्मविश्वास, वीरता एवं उत्साह का एक समन्वित परिप
है। उनका जीवन कहीं विशृंखल एवं अनिर्दिष्ट न होते हुए भी अत्यन्त उग्र है। यदा क
यह उग्रता अपना प्रचण्ड रूप भी ग्रहण कर लेती है। यद्यपि उनके कर्त्तव्याचरण में शि
संकल्प, समुचित दृढ़ता और भक्तिपूर्ण शक्ति का ही उग्र प्रदर्शन है, फिर भी यह प्रदर्श
कभी कभी उद्धत बन जाता है। जब उन्हें यह पता चलता है कि सारे अनर्थों की
महारानी कैकेयी का षड्यंत्र है तो वे सम्पूर्ण संसार से युवतिजन के समूल संहार के
कटिबद्ध हो जाते हैं—

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया
स्वजननिभृतः सर्वोप्येवं मृदुः परिभूयते।
अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृत निश्चयो
युवतिरहितं लोकं कर्त्तुं यतश्छलिता वयम्॥

लक्ष्मण वीर है पर उनकी वीरता अमर्यादित है। उनकी वीरता में सन्तुलन का अ
है। उनकी वीरता यदा कदा मर्यादा का उल्लंघन भी आसानी से करती है। उनमें य
व्यवस्था की कमी है। यह बात अलग है कि उन्हें इस तरह उद्धत बनने के लिए उ
भ्रातृप्रेम ही उन्हें बाध्य करता रहा है। सीता ने लक्ष्मण के उग्र रूप को देखकर ही
से कहा था—"आर्यपुत्र, रोने के समय कुमार लक्ष्मण ने धनुष उठाया है।" यह सुन
लक्ष्मण भड़क उठते हैं।

क्रमप्राप्ते हृते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे।
इदानीमपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता॥ १ १६,

वनगमन के समय अयोध्या के अन्तःपुर की कलुष राजनीति के बीच उच्छृङ्खल
को अनुशासित करने के लिए आकुल-हृदय लक्ष्मण शान्त प्रकृति राम के समझाने प
तो अधिकार छोड़ने के लिए बाध्य होते हैं।

'आः अपण्डितः खलु भवान्'

लक्ष्मण के पास अयोध्या के राजमहल में चल रहे षडयंत्री शिकंजों को मरोड़कर
देने वाली सशक्त फौलादी उंगलियाँ हैं, विमाता की अज्ञानता से उत्पन्न अंधकार को चीर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपने आधिकारिक उत्कर्ष के पावन क्षणों को देख लेने वाली सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि भी है और सुनहले भविष्य की अभ्यर्थना के लिये व्याकुल वीर का सदय पर सबल हृदय भी। उनकी क्रोधाग्नि में सम्पूर्ण अयोध्या को जला डालने की क्षमता है। तभी तो राम स्वयं घबड़ा से जाते हैं—

त्रैलोक्यं दग्धुकामेव ललाटपुटसंस्थिता।
भ्रुकुटिर्लक्ष्मणस्यैषा नियतीव व्यवस्थिता॥ १।२१

लक्ष्मण का त्याग अभावग्रस्त या उदारात्मक नहीं, उसमें क्षणिक अन्तर्वृत्तियों का उन्मेष भी नहीं, अपितु सुविचारित दृढ़ निर्णय का परिणाम है। ये अपनी नवोढ़ा, सर्वगुणसम्पन्ना उर्मिला की भी उपेक्षा कर भ्रातृप्रेम में पागल की तरह, स्वेच्छा से वनचारी बनने को प्रस्तुत हैं। वे अपने आचरण की संभावनाओं से युगपथ का निर्माण करना चाहते हैं।

अक्षोभ्यः क्षोभितः केन लक्ष्मणो धैर्यसागरः।
येन रुष्टेन पश्यामि शताकीर्णमिवाग्रतः॥ १।६

लक्ष्मण का धैर्य भयङ्कर से भयङ्कर विपत्ति में भी बहिर्निष्ठ वस्तुओं की उपेक्षा अन्तः-स्थिति निगूढताओं से अधिक संपृक्त है। तभी तो राम के समझाने पर उन्होंने अपने को स्पष्ट करते हुए कहा—'हाय, आपने तो मेरा मतलब ही नहीं समझा, उल्टे मुझे आप उलाहना दे रहे हैं। मुझे जो दुःख या क्रोध है उसका कारण वह नहीं जो आपने समझा है। बल्कि इसका कारण यह है—

यत्कृते महति क्लेशो राज्ये मे न मनोरथः।
वर्षाणि किल वस्तव्यं चतुर्दश वने त्वया॥ १।२३

संक्षेप में हम कह सकते हैं—समग्र हृदय से, आशा और आश्वासन से, शक्ति और सङ्कल्प से, प्रेम और प्रार्थना से—जीवन और यौवन को कर्त्तव्य की बलिवेदी पर चढ़ाने वाले लक्ष्मण अपने अग्रज राम के परम भक्त हैं।

महाराज दशरथ

महाराज दशरथ एक स्नेही पिता हैं। सन्ततिस्नेह उसके जीवन का संबल है। ऐसा संबल जो साधारण रूप से प्रेम नाम से जाना जाता है। दशरथ का यह सन्ततिप्रेम ऐसे ही मूर्च्छा और विस्मरण की चित्तस्थिति बन गया है। वह रामवनगमन के दुःख से उत्पन्न होकर उसी में अपना पर्यवसान खोजने लगा। पुत्र-वियोग में आकुल हृदय महाराज उठते हैं, गिरते हैं, फिर उठते हैं, हाय हाय को रट लगाये हैं, वाह रे दुःख—

पतत्युत्थाय चोत्थाय हा हेत्युच्चैर्लपन् मुहुः।
दिशं पश्यति तामेव यया यातो रघूद्वहः॥ २।३

पुत्रवियोग में उसके प्राण जलहीन मछली की तरह छटपटाते हैं। पुत्रवियोग साक्षात् मृत्यु बनकर उनके सामने खड़ा है (उनका सांसारिक स्नेह टूटता जाता है। वे अपने दुःख

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और कष्ट से घबराकर कहीं भाग नहीं पाते। दुःख का यह अस्तित्व उनमें विचित्र परिव
ला देता है। वे अपने भीतर सांसारिक स्नेह को टूटते बिखरते देख रहे हैं। उनकी चेत
के रन्ध्र-रन्ध्र में यह वियोग व्याप्त हो उठा है। राम तो राम, लक्ष्मण ने भी उनका सा
छोड़ दिया है—

रामेणापि परित्यक्तो लक्ष्मणेन च गर्हितः।
अयशोभाजनं लोके परित्यक्तस्त्वयाप्यहम्॥ २।५

उन्हें यह आश्चर्य लगता है कि लक्ष्मण ने भ्रातृस्नेह के आगे पितृस्नेह को भी तिल
ञ्जलि दे दी, फिर भी उन्हें, उन सबों को देखने के लिए उनकी आत्मा तड़प उठती है—

हा वत्स राम ! जगतां नयनाभिराम, हा वत्स लक्ष्मण सलक्षण सर्वगात्र।
हा साध्वि मैथिलि पतिस्थितचित्तवृत्ते, हा हा गताः किल वनं वत मे तनूजाः॥ २।

पुत्रवियोग में आकुल मन, अस्तव्यस्त तन और विक्षिप्त मस्तिष्क वाले महाराज दशर
धरती पर छटपटा रहे हैं। उनके सारे के सारे पारिवारिक स्नेह कच्चे घड़ों की तरह टूट फू
गये, उनके सभी आध्यात्मिक भाव पानी के बुलबुलों की तरह खण्डित हो चुके थे, उनव
समस्त मेधा इस अप्रत्याशित विपत्ति के जङ्ग से कुण्ठित हो चुकी थी। उन्हें प्राणाधिक प्रि
पत्नी भी व्याघ्री की अनुभूति उत्पन्न कराने लगी। वे दैव को कोसने लगते हैं—

अनपत्या वयं रामः पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः।
वने व्याघ्री च कैकेयी त्वया किं न कृतं त्रयम्॥ २।८

कौसल्या के यह कहने पर कि 'मैं वही अभागिन हूँ' दशरथ तड़प उठते हैं। नहीं, नहीं
कौसल्ये तुम धन्य हो, तुमने तो राम को गर्भ में धारण किया है। अभागा तो मैं हूँ, ज
अग्नि के समान अत्यसह्य इस दुःख को न सह सकता हूँ और न दूर कर सकता हूँ। मेरी
इन्द्रिय शून्य हो गये हैं—

"कौसल्ये, सारवती खल्वसि, त्वया हि खलु रामो गर्भे धृतः।"

वैभव की नगरी अयोध्या में, लौकिक विभूतियों से भरी राजधानी में, खोये-खोये से,
मुर्झाये से, राम से मिलने की आशा में महाराज संकटापन्न स्थिति में जी रहे थे। उनवे
पुत्रप्यार में व्यथा थी और व्यथा में राममिलन की अनुभूति थी। वे तड़प कर भी जी रहे
थे, क्योंकि उनकी अनुभूतियाँ जीवित थीं। अतीत होकर भी वर्तमान का संबल थी। वे
निरन्तर उन अनुभूतियों में घुलते रहते थे शान्त, स्थिर, जड़वत्, सचिव सुमन्त्र के साथ
राम-जानकी के लौट आने की आशा में। स्नेहसंत्रस्त आँसुओं को पीकर भी वे जीवित थे
राम मिलन की आशा में—

शून्यः प्राप्तो यदि रथो भग्नो मम मनोरथः।
नूनं दशरथं नेतुम् कालेन प्रेषितो रथः॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा जी रहे थे आशा में, जो राममिलन की तीव्रता से ही मूर्त्त बनकर उनके सामने उपस्थित रहती थी। अपने अतीत के पुत्रस्नेह की स्मृति में, वे लीन हो जाना चाहते थे किन्तु, हाय राम की स्मृति मूर्त्त बनकर भी बिखर जाती थी जिसकी व्यथा की टीस उसके तनमन को झनझना रही थी। हाय, राम को राजा बनाने की उनकी इच्छा अन्त तक अपूर्ण ही रह जाती है। निराशा को हृदय से चिपकाते राजा अपनी संसारयात्रा पुत्रवियोग में ही तड़प कर समाप्त कर देते हैं—

राम, वैदेहि, लक्ष्मण, अहमितः पितॄणाम् सकाशं गच्छामि।

कौसल्या

कौसल्या त्याग, तपस्या और अनुराग की साक्षात् प्रतिमा हैं। किन्तु, प्रतिमा की कौसल्या भी रामायण की कौसल्या से भिन्न हैं। रामायण में कैकेयी के व्यवहार से क्षुब्ध कौसल्या भरत को भी खरी-खोटी सुनाने में नहीं चूकती—

"भरतं प्रत्युवाचेदं कौसल्या भृशदुःखिता।
इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टम् ॥
सम्प्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा।
प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रे मे वनवासिनम् ॥
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी।"

—अयोध्याकाण्ड ७५–५·१२।

किन्तु 'प्रतिमा' में कौसल्या का जो चरित है उसमें कहीं भी उसे रुष्ट अथवा क्षुब्ध नहीं देखा जा सकता। प्रत्युत भरत को देखते ही वह अपने आशीष से उसे स्नान करा देती है—**'जात ! निःसंतापो भव।'** इतना ही नहीं भरत जब अपनी माँ कैकेयी की अवहेलना करते हैं तो उस विपत्ति में भी वह उन्हें कर्त्तव्य का उपदेश देती दीखती है, हल्की भर्त्सना करती प्रतीत होती है—

"जात, सर्वसमुदाचारमध्यस्थः किं न वन्दसे मातरम्।"

प्रतिमा की कौसल्या आदर्श की प्रतिमूर्ति है। उनका पुत्रप्रेम अपूर्व है। उनका पारिवारिक स्नेह और पतिप्रेम उच्चकोटि का है। ये एक ओर आदर्श माता हैं तो दूसरी ओर पतिप्रेम की आदर्श प्रतिमा। वे कमल से भी अधिक कोमल हैं और कुलिश से भी कठोर। महाराथ दशरथ को वे अति गंभीर और शान्त भाव से सान्त्वना देती हैं—

'अलमिदानीम् महाराजोऽतिमात्रं सन्तप्य परवशमात्मानं कर्त्तुम्! ननु सा तौ च कुमारौ महाराजस्य समयावसाने प्रेक्षितव्या भविष्यन्ति।'

कैकेयी के कुचक्र के कारण श्रीराम का राज्याभिषेक किस प्रकार होते-होते रुक गया। उसका कठोर और कटु परिणाम भोगना पड़ा इस अभागिन माता कौसल्या को, किन्तु जैसा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऊँचा उनका व्यक्तित्व और आदर्श था, वह अप्रिय एवं कठोर आघात उनकी गोद में गिरा। इस आघात से वह पहले तो वह तिलमिला उठीं, पर शीघ्र ही सँभल कर स्तब्ध सी, विमूढ सी, जड़वत् खड़ी रह जाती हैं। महाराज दशरथ से वह अपने मन की व्यथा कुछ कह सकती थीं, हाय उनकी स्थिति देखकर तो वह स्वतः विचलित हो उठीं। इससे पूर्व कैकेयी के विरुद्ध महाराज से उसने न जाने हृदय में क्या-क्या कहने के लिए ठान रक्खा था। किन्तु विधि की विडम्बना ही विचित्र है। यहाँ भी वह अपने हृदय के कपाटों को अनावृत नहीं कर सकीं। महाराज की स्थिति देखकर वह इतना ही तो कह सकीं--

'महाराज समाश्वसिहि समाश्वसिहि'

रामजननी कौसल्या सेवा, त्याग, ममता, करुणा, क्षमा प्रभृति नारीहृदय की सभी उदात्त वृत्तियों की प्रतीक हैं। इस महिमामयी नारी को स्थान और अवकाश की दृष्टि से इस नाटक में कम-से-कम स्थानों में ही उपस्थित किया गया है, फिर भी अल्पता में भी इसकी विशदता, मौन में भी मुखरता, संचार में भी गांभीर्य स्वतः अभिव्यक्त हो उठा है। इस नारी में पारिवारिक- सामाजिक और सांस्कृतिक पक्षों में सम्पूर्ण जीवन के प्रतिफलित झरनों की अपूर्व क्षमता है। तभी मरणासन्न महाराज इसके शरीरस्पर्श के लिये आकुल हो उठते हैं :-

अङ्गं मे स्पृश कोसल्ये ! न त्वां पश्यामि चक्षुषा।
रामं प्रति गता बुद्धिरद्यापि न निवर्त्तते॥

—प्रतिमा० २।१८।

संक्षेप में महाकवि भास के कौसल्या के चरित्रचित्रण में प्रयुक्त एक एक अक्षर अनुप्राणित हो उठा है। महाराज दशरथ से शब्दों में—

कौसल्ये, सारवती खल्वसि........

अहं हि दुःखमत्यन्तमसह्यं ज्वलनोपमम्।
नैव सोढुं न संहर्त्तुं शक्नोमि मुषितेन्द्रियः॥ २।६

कैकेयी

महाकवि भास ने इस नाटक के पात्रों की उद्भावना नवीन रूप में की है। वाल्मीकि पात्रों के चरित्र-चित्रण का कवि तो केवल आश्रयमात्र हो लिया है। जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है कि प्रतिमा के सभी पात्र मौलिक रूप से उद्भासित हैं। फिर भी विशेष रूप से कैकेयी के चरित्र में विचारों की व्यवस्था करके इन्होंने नवीनता का सञ्चार कर दिया है। रामायण की कैकेयी प्रतिमा में आकर बिल्कुल ही बदल गई है। कुमार भरत के सम्पर्क में उसका हृदय पश्चात्ताप के आँसुओं से धुलकर सर्वथा स्वच्छ और निर्मल हो गया है। पहले तो प्रतिहारी से यह जानकर कि भरत उनसे मिलने आये हैं, घबड़ाती है— पता नहीं भरत किस बात को लेकर उलाहना दे बैठे—

'केन खलूद्घातेन मामुपालप्स्यते भरतः'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

फिर शीघ्र ही सँभलती हैं और भरत के सामने रहस्योद्घाटन करती हैं। दरअसल प्रतिमा की कैकेयी उदात्तचरिता हैं। उसने राम के लिए वनवास का वर इसलिए माँगा था कि उन्हें ऋषि के द्वारा दिये गये शाप से मुक्ति मिले। वह भरत के सामने अपने को स्पष्ट करने का उचित अवसर आया देख कहती हैं—कुमार, तुम्हें पता है महाराज अभिशापित थे–**'जात, त्वं न जानासि महाराजस्य शापम्।'** इससे पूर्व भरतजी ने कैकेयी की पूर्ण भर्त्सना की थी। कैकेयी ने जब भरत से कुछ जानने की इच्छा प्रकट की तो भरत ने उन्हें खरी-खोटी सुनाना प्रारंभ किया। सुनना ही चाहती हो तो जी खोलकर सुन लो— जिसे तुमने जंगल भेजा था, उसकी पत्नी अपहृत हुई, कहो अब तो तुम्हारी छाती जुरा गई न ?

हन्त भोः सत्त्वयुक्तानामिक्ष्वाकूणां मनस्विनाम्।
वधूप्रधर्षणं प्राप्तं प्राप्यात्रभवतीं वधूम्॥ ६।१४।

इस फटकार को सुनकर कैकेयी की मानवीय दुर्बलता कुछ क्षणों के लिए दूध की भाँति उफन पड़ती है। किन्तु फिर भी वह मातृत्व के ममत्व पर, आसीन होकर करुणामयी मूर्त्ति बन जाती हैं। वह वृद्ध सचिव सुमन्त की ओर देखती हैं। सुमन्त जी महारानी कैकेयी का संकेत पाते ही सारा रहस्य खोलकर भरत के सामने रख दिया।

"श्रूयताम्—मृगयां गतेन महाराजेन कस्मिंश्चित् सरसि कलसं पूरयमाणो वनगज............मुनितनयो हिंसितः।" शापकथा सुनते ही कुमार भरत स्तब्ध हो जाते हैं। उनके मुँह से केवल 'शान्तम् पापम्" ही निकलता है। उन्हें चकित देखकर सुमन्त्र ने आगे कहा—

तेनोक्तं रुदितस्यान्ते मुनिना सत्यभाषिणा।
यथाहं भोस्त्वमप्येवं पुत्रशोकात् विपत्स्यते॥

महारानी कैकेयी के चरित में भावनाओं की यह विविधता और गंभीरता, आदर्श का ऐसा दृढ़ प्रकटीकरण रामकाव्य के किसी ग्रंथ में इस कौशल के साथ आजतक कहीं भी व्यक्त नहीं किया गया है। प्रतिमा की कैकेयी स्वतंत्र व्यक्तित्व के पूर्ण जीवन से ओतःप्रोत बनी है। सजीवता और स्वतंत्र व्यक्तित्व के साथ-साथ स्वाभाविकता से भी इनका चरित्र भरा है। इनके चरित्र में असमानता तो प्रतीत होती है, पर कहीं अस्वाभाविकता का बोध नहीं होता है। कैकेयी के चरित्र में भास ने विभिन्न अवसरों पर इनकी विभिन्न गतिविधियों को किसी-न किसी रूप में सामाजिक आदर्श के खूँटे में इस तरह बाँध दिया है कि जब कभी किसी विषम स्थिति में तत्सम्बन्धी कोई समस्या उपस्थित होती है तो दर्शन की भावलहरियाँ उस स्थल तक पहुँचकर, उसी आदर्श से सिमटकर लिपट चिपट जाती हैं। ठीक इसके विपरीत रामायण की कैकेयी संदिग्ध है। उन्हें ही सारे अनर्थों की जड़ बतलाया गया है :—

कुलस्य त्वमभावाय कालरात्रिरिवागता,
अङ्गारमुपगुह्य स्म पिता मे नावबुद्धवान्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मृत्युमापादितो राजा त्वया मे पापदर्शिनी,
सुखं परिहृतं मोहात् कुलेऽस्मिन् कुलपांसुनि ॥
—वा० रा० अयो० का० ७३–४५

प्रतिमा की कैकेयी के चरित्र का प्राण करुणा है और यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है। प्रतिमा की कैकेयी एक ऐसा चरित्र है जहाँ संदेह और निराकरण की होड़ दिखायी पड़ती है। यहाँ कैकेयी का चरित्र अतिशय लाक्षणिक होते हुए भी स्पष्ट, प्रतीकात्मक होकर भी खुला है। जब तक शंका की गांठ खुलती ही रहती है कि समाधान का सौरभ विच्छुरित हो उठता है। कभी शंका लपककर समाधान को पकड़ने की कोशिश करती है तो कभी समाधान शंका की पकड़ से विछल कर दूर छिटक जाया करता है। यही है प्रतिमा की कैकेयी का सौन्दर्य जिसके सामने भरत भी नतमस्तक हैं।

सचिव सुमन्त्र

सचिव सुमत्र के चरित को भास ने स्थान, विस्तार और सहानुभूति की दृष्टि से उचित स्थान नहीं दिया है। अतः सुमन्त्र का चरित्र राम, लक्ष्मण, भरत, कैकेयी, सीता और कौसल्या के बीच स्वतः विकसित होता गया है। प्रतिमा के सभी पात्र घात-प्रतिघात के क्रम में सुमन्त्र के व्यक्तित्व से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सम्बन्धित हैं। राम, लक्ष्मण, भरत, कैकेयी और महाराज दशरथ के चरित्र-विकास की पृष्ठभूमि के रूप में उसके लिए परिस्थिति का बीजारोपण करते हैं और कभी अपनी परिस्थिति का उसके चरित्र-विकास पर भी प्रभाव डालते हैं। महारानी कैकेयी के प्रति संदिग्धशील भरत के हृदय को शान्त करने में हम सुमन्त्र को साक्ष्य के रूप में पृष्ठभूमि बने पाते हैं, जब कि रामायण में सुमन्त्र कैकेयी पर क्रुद्ध होकर उसे मर्मान्तक वाक्यबाणों से बिंधता है।

राम वनगमन की शोचनीय परिस्थिति से जनित विषाद ही इस नाटक की रीढ की हड्डी है, जिस पर सम्पूर्ण घटना की अस्थि अवलम्बित है। प्रथम सर्ग में राज्याभिषेक के अवसर पर मुस्कुराता जिस सुमंत्र के व्यक्तित्व का हमें दर्शन होता है, वही सुमन्त्र जन स्थान से दुबारा लौटने पर होता हुआ दुःखद घटना का वर्णन करने के कारण जहाँ नाटकीय पार्श्वभूमि का निर्माण करता है, वहीं दूसरी ओर इक्ष्वाकुकुल के इन उपद्रवों से व्याकुल होकर अपनी आयु की अधिकता का रोना रोता है—

अन्वास्यमानश्चिरजीवदोषैः कृतघ्नभावेन विडम्ब्यमानः ।
अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने जीवामि शून्यस्य रथस्य सूतः ॥ ३।१५

सचिव सुमन्त्र, जो इस नाटक के सारे दबाव को, घटनाओं के घात-प्रतिघातों को अत्यधिक तीव्रता से अनुभव करता है और मानसिक रूप से दबाव के सारे वेग संवहन करता है; वह नाटकीय घटनाओं के बीच का पात्र है। इसलिए उस पर तलहथियों की चिकनाहट नहीं चढ़ पायी, पर विघूर्णन की सारी प्रक्रियाएँ वहीं अन्तर्हित होती चली गयीं। इसलिये

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

घटनाक्रम के दबाव पड़ने पर यही वह पात्र है, जो बड़ी आकुलता के साथ उँगलियों की दशरों के बीच से भागकर इक्ष्वाकुवंश पर आई विपत्तियों के प्रशमनार्थ छटपटा उठता है—

गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः ।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः ॥ ३।२३

नाटकीय सारी घटनाओं का साक्ष्य, उस साक्ष्य की सम्पूर्ण इकाई का वेलन घूम-घूमकर इसी को रौंदता है और यही प्रसारित होकर छोरों को प्रसार देता है। गृहकलहरूपी सारी आग की आँच इसी सुमन्त्र पर केन्द्रस्थ होती है। यह वही सचिव है जिसके पास अयोध्या के राजकीय सारे संस्कारों की पूँजी है। राजपरिवार की सारी क्रियाशीलता की कुञ्जी है। इस वृद्ध सचिव के पास तर्क-वितर्क से युक्त मेधा है और भावलहरियों से भींगा तरल हृदय।

इनके अतिरिक्त अन्यपात्र गौण हैं। अतः उनके चरित्र में कोई उल्लेख्य विशेषता नहीं।

प्रतिमा की अलंकार योजना

महाकवि भास अलंकार प्रेमी हैं। अभिनय की वर्णनात्मक शैली इसका मूलभूत कारण है। इनके अलङ्कारों का प्रयोग कहीं भी प्रदर्शन मात्र के लिए नहीं है। इनके अलङ्कारप्रयोग ने रसचर्वणा में कहीं व्याघात नहीं पहुँचाया प्रत्युत इनके सारे अलङ्कार रसोपकारक हैं। शब्दालङ्कारों एवं अर्थालङ्कारों के प्रति इनका समान अनुराग है। एक ओर इन्हें उत्प्रेक्षा-वल्लभ कहा जा सकता है, तो दूसरी ओर उपमाप्रणयी।

भास की काव्यकला की त्वचा सी लगती हैं इनकी ये उपमाएँ। इनकी अमूर्त्त भावनाओं को इनकी उपमाएँ मूर्त्तरूप देती हैं और मूर्त्तरूप को जहाँ ये उपमाएँ मार्मिक बनाती हैं वहीं मानवप्रकृति में तीव्र रागात्मक साहचर्य भी स्थापित करती हैं। इनकी उपमाओं के उत्स प्राकृतिक ऐश्वर्य एवं जीवन की विभिन्न अनुभूतियों के भीतर हैं। अतः इनमें जो नवीनता और विविधता का आकर्षण है वह व्यावहारिक क्षेत्र में व्यापक प्रवेश से प्राप्त टटकेपन के कारण ही। इनकी उपमा की स्वाभाविकता और प्रभावमयता लक्ष्मण की इस उक्ति में देखी जा सकती है—

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा, पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं, व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः॥

प्रतिमा १।२५

राहु से ग्रसित रहने पर भी चन्द्रमा को रोहिणी नहीं छोड़ती। पेड़ के गिरने के साथ लता भी गिर पड़ती है। कीचड़ में फंसे हुए हाथी को हथिनी कभी नहीं छोड़ती। अतः इन्हें भी आप अपने साथ चलने दें, क्योंकि पत्नी के लिए पति के सिवा और है ही क्या? ऐसी उपमा द्वारा भास ने प्रतिपाद्य वस्तु का रूपांकन करने में सफलता पाई है। यह एक उपमा का ऐसा प्राणवान् चित्र है जो मर्म की आँखों से बार-बार देखे जाने पर भी अपना नयापन नहीं खोता।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अब जरा प्रतिमा की एक उत्प्रेक्षा पर ध्यान दिया जाय। यह उत्प्रेक्षा कितनी अधिक प्रभावपूर्ण है—

मेरुश्चलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे शोषं व्रजन्निव महोदधिरप्रमेयः।
सूर्यः पतन्निव च मण्डलमात्रलक्ष्यः, शोकाद् भृशं शिथिलदेहमतिर्नरेन्द्रः॥
प्रतिमा० २।१

राजा दशरथ—युगान्त समीप आनेपर डगमगाते सुमेरु की तरह या सूखते हुए सागरके समान, अथवा तेज रहित और गिरते हुए सूर्य की तरह अपार शोकसागर में निमग्न, दुर्बल, कार्यहीन एवं अचेतन होते जा रहे हैं। यहाँ उपमेय गौण तथा उपमान उत्कृष्ट दिखाई पड़ रहा है, क्योंकि भास बलपूर्वक उपमान के साथ उपमेय का साम्य स्थापित करते हैं। उपमेय में वे सारे गुण भरे हैं किन्तु कवि ने उनकी सम्भावना उपमान के रूप में की है। चूंकि उत्प्रेक्षा का प्राण है चमत्कार, अतः इस श्लोक में काव्यनिष्ठ उपमान का वर्णन हुआ है। यहाँ संभावना का प्राधान्य है और उत्प्रेक्षा शब्द इसी का बोधक बन गया है। यहाँ प्रकृत सागर सूर्य और मेरु की जगह अप्रकृत महाराज की ओर कवि की मानसी वृत्ति अधिक स्पष्ट हुई है। भास ने यहाँ महाराज दशरथ के प्रति चमत्कारपूर्ण आकर्षण प्रकट किया है।

कवि का एक अर्थान्तरन्यास का प्रयोग भी द्रष्टव्य है। अर्थान्तरन्यास का अर्थ है अर्थान्तर अर्थात् अन्य अर्थ का न्यास या रखना। इसमें प्रस्तुत अर्थ के समर्थन या पुष्टि के लिए अन्य अर्थ या अर्थान्तर का न्यास किया जाता है। प्रतिमा के तृतीय अंक में भरत की यह उक्ति दर्शनीय है—

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा मात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्त्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव॥ ३।१०

यहाँ सामान्य और विशेष के समर्थन के लिए सामान्य और विशेष रूप दो वाक्यों की योजना की गई है। ये संयोजित वाक्य परस्पर स्वतंत्र होते हुए भी एक दूसरे के साथ सम्बद्ध हैं। इस अलंकार के प्रयोग में कवि को जो सफलता मिली है; वह उसके व्यापक अनुभव-गम्य ज्ञान पर निर्भर है। जैसे प्यासा आदमी सूखीं नदी की ओर भागता है, इस कथन में जो चमत्कार है अथवा भाई एवं पिता से रहित जंगल बनीं अयोध्या में जो सौन्दर्य है, वह कवि की व्यापक अनुभूति का ही प्रमाण है।

प्रतिमा में कवि के एक रूपक का भी ऊदाहरण दर्शनीय है—

तपःसंग्रामकवचं नियमद्विरदाङ्कुशः।
खलीनमिन्द्रियाश्वानां गृह्यतां धर्मसारथिः॥ १।१८

लक्ष्मण को वल्कल देते समय राम ने कहा है। इसे ग्रहण करो यह तपरूपी संग्राम का कवच है, व्रतरूपी हाथी के लिए अंकुश है, इन्द्रियरूपी घोड़े की लगाम है और धर्मरूपी रथ का सारथी है। रूपक सादृश्यगर्भ अभेदप्रधान आरोपमूलक अलंकार है। यहाँ उपमेय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को उपमान रूप दिया गया है तथा आरोपविषय पर आरोप्यमाण का आरोप किया गया है। सुन्दर और व्यवस्थित आरोप से इस श्लोक का प्रतिस्तर आर्द्र है।

एक और सन्देह अलंकार का उदाहरण दर्शनीय है—

आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः।
हसितेन परिज्ञातं क्रीडेयं नियमस्पृहा॥

यहाँ राम के लिए 'वल्कल' पहले तो मनोविनोद का साधन बना और बाद में ही 'तपःसंग्रामकवच' आदि रूप में निखरा। यह एक संदेह सादृश्यगर्भ अभेदप्रधान आरोपमूलक अर्थालंकार है।

भास का प्रकृति-चित्रण

महाकवि भास के प्रेमसौन्दर्य और कष्ट की भावनाओं का मूल आधार प्रकृति ही है। इनकी वाणी प्रकृतिरस से ही प्रतिस्तर आर्द्र है। कहीं कहीं तो इनके वर्णन को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि ये प्रकृति के निरावृत्त अंक में ही पले हैं, इनकी प्रतिमा ने प्रकृति से प्रेरित होकर नवीन उन्मेषों को अभिव्यक्त किया है। इनमें प्रकृति घुल मिल गई है। भास ने प्रतिमा नाटक के चार पहलुओं में प्रकृति का चित्रण किया है।

१—शुद्ध प्रकृतिचित्रण
२—चेतनीकृत प्रकृतिचित्रण
३—अलंकारखचित प्रकृतिचित्रण
४—प्रतीकात्मक प्रकृतिचित्रण

शुद्ध प्रकृति-चित्रण

इनके नाटकों में शुद्ध प्रकृति का वर्णन अति विरल है। स्वभावोक्तिपूर्ण विशुद्ध वर्णन की अपेक्षा इनका झुकाव प्रकृतिफलक पर कल्पना के मनोरम रंग भरने की ओर अधिक है। तथापि प्रकृति को इन्होंने कुछ ही स्थानों में सही, पर उनको उनके अपने रूप में भी देखा है। वृक्षों में जलसेचन की एक स्वाभाविक क्रिया का वर्णन देखें—

भ्रमति सलिलं वृक्षावर्त्ते सफेनमवस्थितं,
तृषितपतिता नैते क्लिष्टं पिबन्ति जलं खगाः।
स्थलमभिपतत्यार्द्राः कीटाविले जलपूरिते,
नववलयिनो वृक्षा मूले जलक्षयरेखया॥

प्रतिमा ५।२

चेतनीकृत प्रकृति-चित्रण

नाटकचक्र के कुछ स्थानों में भास ने प्रकृति में प्राण फूँक दिये हैं। कालिदास की कृतियों में प्रकृति और मानव का जो घनिष्ठ सम्बन्ध दिखाई पड़ता है, उसका पूर्व रूप भास में प्राप्त है। प्रकृति का चेतनीकृत एक चित्र दर्शनीय है। भास ने प्रतिमा नाटक में जानकी के हास में सूर्यकिरण का बोध कराया है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः ।
हसितेन परिज्ञातम् क्रीडेयं नियमस्पृहा ॥

प्रतिमानाटक १-६

अलंकारखचित प्रकृति-चित्रण

प्रत्येक कवि को अलंकारों की उद्भावना में प्रकृति का सहारा अपेक्षित रहता है। अन्य नाटककारों की तरह महाकवि भास भी इस नियम के अपवाद नहीं है।

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा,
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।
त्यजति न करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रम्,
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥

प्रतिमा १।२५

अर्थात् राहु के ग्रसे जाने पर भी रोहिणी चन्द्रमा के पीछे चलती है। पेड़ के गिरने पर उसके साथ ही लता भी गिर पड़ती है। कीचड़ में फँसे हुए हाथी को हथिनी कभी नहीं छोड़ती। इसीलिए उन्हें भी जंगल साथ चलाने दीजिए। यहाँ दृष्टान्त अलंकार को स्पष्ट रूप देने के लिए प्रकृति का सहारा लिया गया है।

प्रतीकात्मक प्रकृति-चित्रण

जीवन के कतिपय पहलुओं की व्याख्या अन्य स्वनामधन्य कवियों की तरह महाकवि भास ने भी प्रकृति के आधार पर ही की है। प्रकृति का यह आधार प्रतीकपद्धति पर निर्भर है। अपनी स्वाभाविकता में बेमिसाल द्रुतगामी रथपर आरूढ भरत के द्वारा देखे गये प्राकृतिक दृश्यों का यह वर्णन कितना स्वभाव मनोहर है।

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया
नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयम्
रजश्चाश्वोद्भूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥ प्रतिमा ३।८

रथ की तेज चाल से वृक्ष छोटे से दिखाई दे रहे हैं और ये दौड़ते से दीख रहे हैं। उछलते हुए जल वाली नदी की तरह पृथ्वी पहिए की धुरी में गिर सी रही है। अरों का पता ही नहीं चलता। रथ का पहिया तो ऐसा मालूम पड़ रहा है जैसे स्थिर हो। घोड़ों के खुरों से उठ-उठ कर धूलि आगे गिर रही है पीछे नहीं। भास के इस वर्णन का स्पष्ट प्रभाव कालिदास पर देखा जा सकता है।

महाकवि भास प्रकृति के भावुक पुजारी हैं। प्रकृतिवर्णन में इनकी रीति, वृत्ति, शैली एवं अलंकारयोजना अपने ढंग की अकेली है। प्रकृति के वर्णन में प्रयुक्त इनके कुछ शब्द अपेक्षाकृत अधिक पुष्ट और कुछ क्लिष्ट भी हैं। स्पष्टतः महाकवि भास प्रतिभाशाली सहृदय और प्रकृतिपर्यालोचक कवि हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महाकवि भास की कुछ त्रुटियाँ

काव्यशास्त्रियों ने काव्यगत दोषों का बड़ा सूक्ष्म एवं विशद वर्णन किया है। इनके अनुसार किसी भी अभिनय को कसौटी पर कसना एक पृथक् प्रबन्ध का विषय बन सकता है। अतः सामान्य दृष्टि से ही प्रतिमा में जो दोष उपलब्ध हैं उधर ही सामान्य पाठकों का मैं ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा।

प्रतिमानाटक संस्कृत रूपकों के बीच एक प्रतिष्ठित नाटक है। किन्तु इसमें भी कतिपय दोष उसी तरह आ गये हैं जिस प्रकार संस्कृत के अन्य नाटकों में। भास का सर्वप्रथम दोष इस नाटक में यह है कि करुणरस प्रधान इस नाटक में उन्होंने वीररस को अङ्गी रस के रूप में प्रयुक्त किया है। इस अभिनय में वीररस की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है कि रावण के दम्भ को श्लोकों में पढ़ते हुए पाठक भूल सा जाता है कि यह दृश्यकाव्य है या श्रव्यकाव्य–

विलपसि किमिदं विशालनेत्रे विगणय मां च यथा तवार्यपुत्रम्।
विपुलबलयुतो ममैव योद्धुं ससुरगणोऽप्यसमर्थ एव रामः ॥ ५।१६
योऽहमुत्पतितो वेगान्न दग्धः सूर्यरश्मिभिः।
अस्यापरिमितैर्दग्धः शप्तोऽस्मीत्येभिरक्षरैः ॥ ५।२०
रामं वा शरणमुपेहि लक्ष्मणं वा स्वर्गस्थं दशरथमेव वा नरेन्द्रम्।
किं वा स्यात् कुपुरुषसंश्रितैर्वचोभिः, न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति।

प्रतिमा ५।१८

कञ्चुकी को रोकने पर भी—जब उसने इन्हें इस बात की पूरी सूचना यह कहते हुए दी कि यह देखिए—महाराज यह जानकर कि आप अपनी पत्नी और भाई लक्ष्मण के साथ जंगल जा रहे हैं—आप लोगों को ही देखने के लिए गिरते पड़ते इधर ही आ रहे हैं—यह सुनकर भी राम लक्ष्मण से यह कहकर चले जाते हैं कि हम तो वल्कलधारी वनवासी हैं, हमारे चले जाने पर महाराज हमारे शिरःसदृश अपने आत्मीय जनों को ही देखें—

चीरमात्रोत्तरीयाणां किं दृश्यं वनवासिनाम्।
गतेष्वस्मासु राजा नः शिरःस्थानानि पश्यतु ॥ १।२१

राम का यह कथन न केवल अनवसर प्रलाप है प्रत्युत अपेक्षाकृत अत्यन्त अनुचित भी है। इससे इस चर्वणा में पूर्ण बाधा प्रतीत होता है।

व्याकरण के नियमों का तो प्रायः पदे पदे अवहेलना की गई है, जो भास का स्वाभाविक दोष है। इनके ये अपाणिनीय प्रयोग इनकी प्राचीनता सिद्ध करते हुए भी इन्हें दोषमुक्त नहीं कर पाते हैं।

इसी तरह 'रामः—तेन हि अलङ्क्रियताम्। अहमादर्शं धारयिष्ये' प्र० अङ्क—राम का सीता के लिए दर्पण उठाकर खड़े रहना कितना अनुचित प्रतीत होता है। राम को पिताकी मृत्यु का समाचार कैसे मालूम पड़ा इसका कहीं उल्लेख नहीं है। केवल भरत और सुमन्त्र के दर्शन से यह समझ लेना कितना भोंडा-सा लगता है? इससे स्पष्ट पता चलता है कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस नाटक के कथाप्रवाह संश्लिष्ट नहीं है, क्योंकि इसमें घटनाओं के वर्णन में संतुलन नहीं है। इसमें कहीं कहीं तो लम्बे वर्णन मिलते हैं और कहीं कहीं अनेक प्रमुख घटनाओं का उल्लेख भी नहीं हो पाता। कथानिर्वाह सम्बन्धी कवि को उक्त प्रवृत्ति के कारण कहीं कहीं विवरण में अधूरापन आ गया है।

संवादों की दृष्टि से भी प्रतिमा को पढ़कर कुछ अधिक संतोष नहीं हो पाता। संवादों की सुलभ योजनाओं से जहाँ एक ओर पात्रों का चरित्र उभरता है, वहीं दूसरी ओर नाटक की रोचकता बढ़ जाती है। प्रतिमा नाटक में ऐसे सुन्दर संवाद-स्थलों की न्यूनता है और जो कुछ मिलते हैं उन्हें उत्तम कोटि का नहीं कहा जा सकता है।

भासने इस नाटक में नारीपात्रों की भी यत्र-तत्र अवहेलना ही की है। उसके सामान्य वर्णनों के अतिरिक्त किसी भी स्थल पर कोई ऐसी उक्ति नहीं मिलती, जिससे उनके चरित्र-गत वैशिष्टय पर प्रभाव पड़ सके। प्रतिमा की नायिका सीता के आदर्श चरित्र की भी उचित रूप से रक्षा नहीं की जा सकी है। अपहरण के समय अपने बचाव में कुछ न कह कर केवल 'बचाओ बचाओ' चिल्लाना उनके उचित चरित के प्रति अरुचि उत्पन्न करता है। इसी तरह कैकेयी साथ भी कवि ने न्याय नहीं किया है। शाप की चर्चा और उसकी असफलता तो बिल्कुल ही अनौचित्य है। एतदतिरिक्त कवि ने कैकेयी का दोष तथा उनका परिमार्जन भी उचित ढंग से नहीं किया है। महाराज दशरथ को अगर शाप था तो कैकेयी ही उसका निमित्त क्यों बनो ? चौथे अङ्क में 'उचित अवसर और स्थान पर बतलाऊँगी' कहने से लगता है कि महारानी कैकेयी ने ये सब जान बूझकर ही किया है। महारानी सीता ने अपहरण के बाद ही इसका उचित अवसर आया, यह भी अच्छा नहीं लगता। १४ दिन की जगह १४ वर्ष वाली घटना भी उपयुक्त प्रतीत नहीं होती। राज्यलोभ से भी यह नहीं किया गया—इस कथन की भी युक्तियुक्तता स्पष्ट नहीं है।

नाटक के नायक राम का भी चरित्र उठाया नहीं जा सका है। काञ्चनपार्श्व के विषय में अपरिचित रावण के बहकावे में आकर उस पर सरलता से विश्वास कर लेना—उनकी विवेकहीनता ही सूचित करता है न कि उदात्त चरित्रता। यह प्रसंग धीरोदात्त नायक के अनुकुल न होकर प्रतिकूल ही प्रतीत होता है।

रामायणी कथा से अनभिज्ञ पाठक को प्रतिमानाटक पढ़ने में या समझने में कठिनाई हो सकती है। सीताहरण के बाद राम की दशा का पता सुमन्त्र के 'समदुःख रामने सुग्रीव को दुःख मुक्त किया' इस कथन से ही चलता है। प्रायः पात्रों की सन्दर्भगत विशेषता का विश्लेषण किये बिना ही कवि उसका संकेत देकर ही आगे बढ़ जाता है।

इस प्रकार दोषैकदशा बनकर हमने प्रतिमानाटक की कुछ न्यूनताओं एवं उनके कर्त्ता के कुछ स्खलनों पर प्रकाश डाला है। किन्तु विचारपूर्वक देखा जाय तो गुणों के सम्पर्क में पूर्वोक्त दोष उसी प्रकार विलीन हो जाते हैं, जिस प्रकार किरणजालक के बीच में क्षपाकर का कलंक। इस प्रकार कालिदास की यह उक्ति सर्वथा चरितार्थ होती है—'एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणोष्विवाङ्कः।'

जगदीशचन्द्र मिश्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

॥ श्रीः ॥

महाकवि-भासप्रणीतं

प्रतिमानाटकम्

'विमला'-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

अथ प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

व्याख्यानारम्भः ।

❀ विमला ❀

निर्यद्-रसप्लवनपिच्छलवर्त्मवाचश्चिन्वन्ति येऽपि कृतिनो निभृतं प्रयातुम् ।
तेषां शिरस्यखिलविघ्नमहातपस्य बाधां विधूनयतु काचन मेघमाला ॥

अथ सुप्रथितयशास्तत्रभवान् कविताकामिनीहासो महाकविर्भासः प्रतिमाभिधानं नाटकं प्रणेतुमिच्छन् वाद्यवादनादिना सम्मुखीकृते सति रंगस्थे सामाजिके, सूत्रधारस्य प्रवेशपूर्वकम्—**"आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्"** इतिवचनम् स्मरन्, नाटकस्य निर्विघ्नसमाप्त्यर्थं सम्प्रदायाविच्छेदलक्षणफलप्राप्त्यर्थं च आशीर्वचनपूर्वकम् नाट्यवस्तुमुपक्षिपति—'नाद्यन्ते'। नान्द्याः आनकस्य अवसाने तत्प्र-

---

(सूत्रधार ही सर्वप्रथम रंगमंच पर उपस्थित होकर नाटक की प्रस्तावना करता है।)

विमर्श—नान्दी = नन्दन्ति देवाः अस्याम्, अथवा—या नान्दयति देवद्विजनृपादीन् इति नान्दी अर्थात् जिससे देवता प्रसन्न होते हैं या जो देव, द्विज, राजा प्रभृति को प्रसन्न करती है, वह नान्दी है। नान्द्याः अन्ते, नान्द्यन्ते—उस नान्दी के बाद—यहाँ भाव में सप्तमी हुई है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार ततः शब्द का प्रयोग अनुपयुक्त प्रतीत होता है। किन्तु दूसरी दृष्टि से विचार करने पर ततः शब्द की उपयोगिता सिद्ध होती है। 'ततः' का यहाँ प्रयोग यह सूचित करता है कि नान्दी अर्थात् मङ्गलगान के अव्यवहितोत्तरकाल में ही सूत्रधार प्रवेश करता है। सूत्रधार और नान्दी के बीच कोई व्यवधान नहीं है। नान्दी के दो अर्थ हैं। प्रथम साहित्यिक पारिभाषिक अर्थ और द्वितीय कोशगत अर्थ। प्रथम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धानत्वात् लक्षणया वाद्यान्तराणामपि 'अन्ते' अवसाने । 'ततः' नान्दी समाप्त्यनन्तरमेव क्रियान्तरवारणार्थम्—'ततः' इति पदम् । 'प्रविशति' रङ्गमञ्चे आगच्छति 'सूत्रधारः' व्यवस्थापकः । सूत्रधारः प्रधाननटः, सूत्रं धारयतीति सूत्रधारः।

नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रम् स्यात्सबीजकम् ।
रंगदैवतपूजाकृत्सूत्रधार उदीरितः ॥ इति तल्लक्षणात् ।

यद्यपि—आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनाम् तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥

इति नान्दी लक्षणात् देवतादिस्तावक-मंगलश्लोकपाठो हि नान्दी भवति तथापि सश्लोकनान्दी सत्काव्यरूपत्वात् रंगप्रयोगयोग्या रंगे एव प्रयोजनीया रंगे हि प्रविष्ट एव कश्चित्सूत्रधारस्तत्सहायको वा तां नान्दीं प्रयोक्तुम् शक्नोति न तु अप्रविष्ट एव । न तादृशः कोऽपि रंगेऽद्यावधि प्रविष्टः । अतः स्तुतिपाठरूप नान्दीव्यतिरिक्ता वाद्यवादनरूपैव नान्दी अत्र ग्राह्या—'दुन्दुभिस्त्वानको भेरी भम्भा नासूश्च नान्द्यपि'—इति वैजयन्ती । सा चोपलक्षणं वाद्यन्तराणामपि नान्द्यन्ते पदस्थया भावे सप्तम्यैव सूत्रधारप्रवेशक्रियाभावलक्षणात् 'ततः' इति पदम् न समीचीनम् । नान्द्यवसानसूत्रधारप्रवेशक्रिययोः मध्ये क्रियान्तरव्यवधान बोधनार्थम् 'ततः' इति पदस्य प्रयुक्तिरिति केचित् ।

दृष्टि से इसका अर्थ है—नाटकारंभ में मांगलिक या आशीर्वादात्मक पद्य या श्लोक कालिदासादि के नाटकों में देखा जाता है । नान्दी के द्वारा नाटक की निर्विघ्न समाप्ति के लिए देवता, देवरूप राजा या ब्राह्मण के आशीर्वाद की प्रार्थना की जाती है । साहित्य दर्पण में नान्दी का लक्षण इस प्रकार है—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥'

—साहित्यदर्पण

अन्यच्च—यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपेशान्तये ।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ॥

प्रत्याहारादिकान्यङ्गान्यस्य भूयांसि यद्यपि ।
तथाप्यवश्यं कर्त्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये ॥

इसके द्वारा देव द्विज नृप आदि की आशीर्वाद से युक्त स्तुति की जाती है । अतः मंगलात्मकश्लोक का नाम 'नान्दी' पड़ा ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूत्रधारः—सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च ।
यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या विभीषणात्मा भरतोऽनुसर्गम् ॥ १ ॥

अथ रङ्गमञ्चप्रविष्टः सूत्रधारो नाटकीयकथावस्तुम् सूचयन् मंगलमाचरति—सीताभव इत्यादिना । सीताभवः=सीताया भवः क्षेमः तद्धेतुरित्यर्थः । अत्र कार्यकारणयोरभेदोपचारकृत ईदृक् प्रयोगः । सुमन्त्रतुष्टः—सुमत्रेण शोभनेन मन्त्रेण विचारेण तुष्टःमुदितः, यद्वा—सुमन्त्राख्येन दशरथसारथिभूतेन सचिवेन वा तुष्टः प्रीतः सुमन्त्रतुष्टः । सहलक्ष्मणश्च=लक्ष्मणसहितश्च, यद्वा—सहः भ्रातुरर्थे वनवास-

---

कोश के अनुसार—

'दुन्दुभिस्त्वानको भेरी भम्भा नासूश्च नान्द्यपि ।'

—वैजयन्तीकोशः

इस कोश के प्राण स नान्दी का अर्थ हुआ—भेरी या आनक । आनक एक प्रकार का बड़ा ढोल है जिसका उपयोग पुराने समय से सैन्यदल करता था । यह एक प्रकार से आधुनिक 'नगाड़ा' है। नाटक में इसका प्रयोग संगीत सौन्दर्य या आकर्षणवृद्धि के लिए किया जाता है । सामान्य रूप से इसका अर्थ होता है—"रूपक के रूप में प्रयुक्त वाद्यात्मक संगीत" अथवा नन्दि का अर्थ होता है 'आनन्द' तस्याः नन्देः इयं नान्दी अर्थात् गीत-वाद्यवादनक्रिया—आनन्द के लिए संगीत में प्रयुक्त गान और वादन । नान्द्यन्ते का अर्थ हुआ—संगीतात्मक आनन्द के पश्चात् नाटक के प्रारम्भ की ओर दर्शकों का ध्यानाकृष्ट करना तथा सूत्रधारकी उपस्थिति की सूचना देना । सूत्रधार = सूत्रं धारयतीति—सूत्र+धृञ्+अण् (कर्मणि अण् प्रत्यय) सूत्रधार का अर्थ है रंगमंच का प्रबन्धक, वह प्रधान अभिनेता जो पात्रों की संगति उचित रूप से नियत करता है । यह पात्रों को अभिनय के विषय में उचित निर्देश करता है । प्रस्तावना में प्रधान रूप से भाग लेता है । अतः आधुनिक शब्दावली में इसे स्टेज डाइरेक्टर कहा जाता है । इसकी परिभाषा है:—

नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात्सबीजकम् ।
रङ्गदैवतपूजाकृत्सूत्रधार उदीरितः ॥

और भी—

वर्त्तनीयतया सूत्रं प्रथमं येन सूच्यते ।
रङ्गभूमि समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते ॥

सूत्रधार :—सीता के जीवन, सद्विचार से संतुष्ट, नयनाभिरामनायक, लक्ष्मण के सहचर, सीताहरण के कारण रावण के शत्रु, विभीषण के अनन्य हृदय अथवा शत्रुभयङ्कर, निरुपम वीर भगवान् श्री राम जन्म-जन्म में हम सबों की रक्षा करें ॥ १ ॥

देव्याः = दीव्यते पातिव्रत्यप्रभावेण इति देवी तया देव्या अर्थात् अपने पातिव्रत्य के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिचरणादिक्लेशानां सोढा लक्ष्मणः तदाख्यो भ्राता यस्य सः। यद्वा—लक्ष्मणश्चेति विशेषणद्वयमपीदम् रामस्य। यातो हि—जनकवचनानुपा बसनितया वनवासपरिक्लेशसोढा लक्ष्मीवांश्चेत्यर्थः। सुग्रीवश्चासौ=शोभ श्चासौ रामश्च सुग्रीवरामः कर्त्तेति। कर्त्तृपदमिदमनुसर्गम्—सर्गे सर्गे जन्मनि प्रतिप्रादुर्भावमित्यर्थः—वीप्सायामत्राव्ययीभावः सर्वदैवेत्यर्थः। रक्षतु, विघ्नानपनयत्वित्यर्थः, नः अस्मान् सामाजिकांश्चेति शेषः। तत्रास इतिपक्षे प्रयोगसाफल्यप्रदानमत्र पालनेनाभिमतम्। द्वितीयपक्षे तु—यथा भ दद्यादिति।

उत्तरार्द्धेन पुनरपि रामं विशिनष्टि—यः रामः, रावणार्यप्रतिमः रा रावयति रोदयति मुनिजनान् यातनाप्रदानेनेति तदाख्य-राक्षसपुंगवस्य अरिः सीताहरणहेतोरेव रावणः शत्रुः रामस्याभवदिति शेषः। अप्रतिमः=न प्रतिमा सादृश्यं यस्यासावप्रतिमश्चानुपमश्चेति। रामः निरुपमः वीर इ देव्या-दीव्यति दीप्यते स्वतेजसा इति देवी तया सीतया हेतुभूतया। यद्वा—इति सहार्थे सहार्थवाचकायोगेऽपि तृतीया 'वृद्धो यूने'ति निर्देशात्। देव्या

प्रभाव से जो नारी प्रदीप्त है उसे देवी कहा जाता है। रावणार्यप्रतिमः = रावयति साधुजनान् इति तदाख्यराक्षसपुंगवस्य अर्थात् कष्ट देकर ऋषि मुनियों को रुलाने रावण कहा जाता है। रावणस्य अरिः रावणारिः = अर्थात् सीता को अपहृत करने ही रावण श्रीराम का शत्रु बना। अप्रतिमः = नास्ति प्रतिमा उपमानं यस्य अर्थात् वीर। अथवा देव्या—इसमें सहार्थवाचक योग में भी 'वृद्धो यूना' इत्यादि सूत्र के तृतीया विभक्ति लगने पर देवी के साथ यह अर्थ फलित हुआ। इस अर्थ में विभ में अकार का प्रश्लेष कर विग्रह किया गया अविभीषणः, अभयंकरः मनोहरः आत्म यस्य अर्थात् सर्वानन्दप्रद। सीताभवः=सीता का क्षेमकारण या भव का एक अर्थ होता है, अतः यहाँ क्षेम से भी उपयुक्त सीता का जीवन अर्थ ही है। सुमन्त्रतु दो अर्थ हैं। सुमन्त्रेण तदाख्यपितृसारथिभूतेन मन्त्रिणा अथवा—शोभनेन मन्त्रेण विचारेण=अर्थात् पिता के सारथी सुमन्त्र या सुन्दर विचार से तुष्ट। सुग्रीवरामः = ग्रीवा यस्य यथाभूतो रामः। अच्छी गर्दनवाले या अच्छे नायक सुग्रीव। कोशगत भी अर्थ है। अनुसर्गम्=सर्गे सर्गे अनुपसर्गम्। वीप्सा में यहाँ अव्ययीभाव समास इसके भी दो अर्थ हैं। सर्वदा और जन्म-जन्म में अर्थात् प्रतिप्रादुर्भाव में।

प्रस्तुत श्लोक में कवि ने वचनरचना की या शब्दप्रयोग की कुशलता से सीत सुमन्त्र, सुग्रीव, लक्ष्मण, रावण, विभीषण और भरत आदि शब्दों के सन्निवेश से प्रधान पात्रों का निर्देश किया है। और अप्रतिमशब्द के प्रतिपादन से नाटक का भी निर्देश किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य)

आर्ये ! इतस्तावत्।

इति शेषः। अस्मिन्नर्थेऽविभीषणात्मा इत्यकारः प्रश्लेश्यः—अर्थात् अवि-गः अभयंकरः, मनोहरः आत्मा स्वरूपं यस्य, सर्वानन्दप्रद इति यावत्, देव्या सह वर्त्तमानः स रमणीय एव भविष्यतीति न तु भीषण इति। अस्मिन्नर्थे ऽपि रामस्यैव विशेषणम् भरः=भरणम्, जगद्रक्षणम्, तं तनोति इति भरतः म इति भावः। अथवा—विभीषणात्माभरतः=विभीषणः रावणानुजः न् आत्माभे स्वसदृशे स्वसमे सुखदुःखे इति तात्पर्यम्। रतः अनुरक्तः च ति पदमध्याहार्यम्। अथ चात्र—सीता-सुमन्त्र-सुग्रीव-राम-लक्ष्मण-रावण-षण-भरताख्यानि नाटकीयानि पात्राणि मुद्रालङ्कारभङ्ग्या सूचितानि। यथोक्तं क्षणम्—सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः। प्रतिमशब्देन च प्रकृतभूत-मा' शब्दस्मारकेण नाटकस्य नामधेयम् प्रतिमानाटकव्यपदेशनिमित्तभूतं च थप्रतिमावृत्तं तृतीयाङ्कनिविष्टं सूचितम्। इयं च द्वादशपदा नान्दी मङ्गल-रण्यत्र बोध्या। तदुक्तमभियुक्तैः—'पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत' इति। द्रवज्रावृत्तम्। तल्लक्षणम् यथा—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः। इति।

(नेपथ्यम्=नटानां वेषरचनादिस्थलम्—नेपथ्यं तु प्रसाधने, रङ्गभूमौ वेष इति। 'कुशीलवकुटुम्बस्य स्थलं नेपथ्यमुच्यते'। तदभिमुखम्=सन्मुखम्, अव-य=दृष्ट्वा; अर्थात् नान्दीपाठानन्तरम् नेपथ्याभिमुखं दृष्ट्वा नटीम् आह्व-तिभावः।)

आर्ये=इति पत्नीम् प्रति सम्बोधनम्—'पत्नी चार्येति संभाष्या' इति तः। इतस्तावदिति=अत्रागम्यतामिति चेष्टाव्यङ्ग्यम्।

इस श्लोक में इसी सूचना के कारण मुद्रालङ्कार है। नाटकीय प्रमुखपात्रों को सूचित वाले शब्दों के द्वारा एक विशिष्ट अर्थ की सूचना कराई गयी है। इसका लक्षण है—

साभिप्रायस्य वाक्ये यद्वचसो विनिवेशनम्।
मुद्रां तां मुत्प्रदायित्वात् काव्यमुद्राविदो विदुः॥ सरस्वतीकंठाभरण ९।२४

और भी—

सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः॥ कुवलयानन्द—१३९

(नेपथ्य की ओर देखकर)

आर्ये, इधर तो आना।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(प्रविश्य)

नटी—आर्य ! इयमस्मि । [अय्य ! इअम्हि ।]

सूत्रधारः—आर्ये ! इममेवेदानीं शरत्कालमधिकृत्य गीयतां तावत् ।

नटी—आर्य ! तथा । [अय्य ! तह ।] (गायति)

सूत्रधारः—अस्मिन् हि काले,

चरति पुलिनेषु हंसी काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा ।

(प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा)

नटी—आर्य=नटम्प्रति नट्याः सम्बोधनम् । इयमस्मि=अत्रैवागता भवामीति।

सूत्रधारः—आर्ये इमम्=अचिरप्रवृत्तम्, एवेति निश्चयेन, इदानीम्=अधुना, शरत्कालमधिकृत्य=सामाजिकमनोनुरञ्जनाय शरत्कालविषये तावत् = प्रथमम्, गीयताम्=गानमारभ्यताम् ।

नटी—आर्य=स्वामिन्, तथा=यथा भवतादिष्टं तथैव करोमीति ।

सूत्रधारः—अस्मिन् काले=शरत्समये, हि=इति निश्चयेन । (सूत्रधारः स्वयमेव शरत्कालम् वर्णयति ।)

अन्वयः—काशांशुकवासिनी, सुसंहृष्टा, हंसी, पुलिनेषु चरति ।

चरतीति । काशांशुकवासिनी—काशांशुः=काशपुष्पप्रभा, कवासिनी=जलवासिनी च । अथवा—काशानि=काशाख्यश्वेतकुसुमानि, अंशुकमिव=वस्त्रमिव यस्य तत्काशांशुकं नदीतीरं तत्र वसतीति काशांशुकवासिनी । सुसंहृष्टा=अतिप्रसन्ना सती हंसी=वराटा, पुलिनेषु=नदीसैकतस्थलेषु, चरति=विहरतीति भावः ।

(प्रवेश कर)

नटी—आर्य, आ ही तो गई ।

सूत्रधार—आर्ये, इसी शरद् ऋतु के सम्बन्ध में इस समय कुछ गाओ न ?

नटी—आर्य, आपकी जैसी इच्छा । **(गाती है)**

सूत्रधार—इस शरत्समय में—काश के फूलों से धवलप्रकाश वाली नदी के तटपर निवास करनेवाली हंसी अतिप्रसन्न मन से किनारे पर विचरण कर रही है ।

विमर्श—आर्यः—अर्यते सेव्यत्वेन गम्यते इति (ऋ+ण्यत्) अथवा-आरात् यातः. दूरं गतः ग्राम्यत्वादिदोषेभ्यः इति आर्यः । अथवा—आर्यः कुलशीलादिसम्पन्नः, कुल शील आदि से युक्त । भरत ने कहा है—कुलं शीलं दया दानं धर्मः सत्यम् कृतज्ञता । अद्रोह इति येष्वेतत्तानार्यान् हि प्रचक्षते ॥ जिनमें कुल, शील, दया, दान, धर्म, सत्य, कृतज्ञता, अद्रोह हो, उनको आर्य कहा जाता है । आर्य शब्द की वशिष्ठ ने दूसरी व्याख्या की हैं :—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(नेपथ्ये)

आर्य ! आर्य ! [अय्य ! अय्य !]

(आकर्ण्य)

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

मुदिता नरेन्द्रभवने त्वरिता प्रतिहाररक्षीव ॥ २ ॥

(नेपथ्ये=प्रसाधनगृहे)

सूत्रधारस्य वर्णनेऽसम्पूर्णे मध्य एव शब्दो भवति तदा नेपथ्ये—अत्र श्रुतमात्रे पूर्वार्द्धे सूत्रधारदत्तपूर्वसङ्केतानुसारेण कथावस्त्वङ्गभूतदशरथप्रतिहारीभूमिकामादाय रङ्गं प्रेक्ष्यतो नटस्य नेपथ्यगतस्य स्वव्यापरोपक्रमं वक्तुमाह—नेपथ्ये—आर्य्य, आर्य्य इति । ससंभ्रमकृतं द्विर्वचनम् ।

(आकर्ण्य=श्रुत्वा)

सूत्रधारः—भवतु=इदं वचनम् प्रवर्त्ततामिति । विज्ञातम्=कस्य पात्रस्य कथनमिदमिति मया ज्ञायत इति । तस्यैव विदितोक्तेः पात्रविशेषस्य प्रवेशमनुजानन् इव सूत्रधारः प्रतीहारीपदगर्भमार्योत्तरार्द्धं पूर्वार्द्धोपात्तहंस्युपादानमुखेनाह—मुदितेति ।

कस्मिन् केव संचरति हंसी, नरेन्द्रभवने=नराणामिन्द्रः नरेन्द्रस्तस्य नरेन्द्रस्य=नृपतेः दशरथस्य भवने यथा चरति तथेति पूर्वेण सम्बन्धः । प्रतीहाररक्षीव=

"कर्त्तव्यमाचरन् काममकर्त्तव्यमनाचरन् । तिष्ठति प्रकृताचारे स तु आर्य इति स्मृतः ।"

जो कर्त्तव्य-कर्म का दृढ़ता के साथ पालन करता है तथा अकर्त्तव्य की उपेक्षा करता हुआ अपने प्रकृत साधु आचरण में अडिग रहता है उसी को आर्य कहा जाता है ।

रचनाविधि (Technique) की दृष्टि से परवर्त्ती नाटककारों से भास भिन्न प्रतीत होते हैं । नान्दी का अर्थ जहाँ अन्य परवर्ती नाटकों में मांगलिक श्लोक से संबद्ध है वहाँ भासने इसका प्रयोग अपने नाटकों में—संगीतविलास या आनन्द के अर्थ में किया है । रचनाविधि की भिन्नता, प्रकार और विशिष्ट ढंग की प्रस्तावना का भेद संस्कृत के अन्य नाटककारों में भास की प्राचीनता सिद्ध करता है । भास के प्रायः सभी नाटकों में उनकी एकरूपता ही उनकी विशिष्टता है ।

(नेपथ्य में)

आर्य, आर्य,

(सुनकर)

सूत्रधार—अच्छा तो, अब बात समझ में आई—ठीक उसी तरह जैसे राजमहल में शुभ्रवसना द्वारपालिका प्रसन्नता के साथ शीघ्रतापूर्वक घूमा करती है ॥ २ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(निष्क्रान्तौ)

स्थापना ।

प्रतीहारी द्वाराधिकृतेव । सा हंसी कथम्भूता—मुदिता=सन्तुष्टा, लोकानन्ददायकरामराज्याभिषेकजनितो हर्ष इति । त्वरिता=सञ्जातत्वरा कार्यवशादिति । एवं सति उपमानेऽपि काशांशुकवासिनीति पदं योजनीयम् । तदा हि सूक्ष्मत्वधवलत्वादिना-काशकुसुमतुल्यम्, अंशुकम् वस्त्रं वसितुम् परिधातुम् शीलमस्या इत्यर्थः ॥ २ ॥

अत्र पूर्णोपमालङ्कारस्तथा च हंसी-उपमेयम्, प्रतिहाररक्षी उपमानम्, नरेन्द्र-चरणपुलिनचरणयोः काशांशुकवसनयोश्च बिम्बप्रतिबिम्बभावरूपम् साधर्म्यम्, इवेति वाचकपदम् । श्लोकेऽस्मिन् अनुष्टुप्छन्दस्तल्लक्षणम् यथा—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयम् सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमम् दीर्घमन्ययोः ॥

तथा च सूत्रधारनट्योर्निष्क्रमणमाह—निष्क्रान्तौ इति=रङ्गस्थलात् गतौ । तथा चोक्तम् दशरूपके :—

एषामन्यतमेनार्थं पात्रं वाऽऽक्षिप्य सूत्रभृत् ।
प्रस्तावनान्ते निर्गच्छेत्ततो वस्तु प्रपञ्चयेत् ॥

स्थापना=स्थाप्यते उपस्थाप्यते कथावस्तु अनयेति स्थापना=प्रस्तावना । अत्र गणपतिशास्त्रिणः—

(दोनों का प्रस्थान)

इति स्थापना

विमर्श—स्थापना=प्रस्तावना । महाकवि भासने प्रायः अपने सभी नाटकों में प्रस्तावना की जगह 'स्थापना' शब्द का ही प्रयोग किया है। ठीक इसके विपरीत परवर्ती नाटककारों ने स्थापना की जगह प्रस्तावना अथवा आमुख शब्द का व्यवहार किया है। इस नाटक में 'स्थापना' शब्द का प्रयोग ही भास की प्राचीनता सिद्ध करता है। प्रस्तावना का काव्य-शास्त्रीय लक्षण है :—

सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्षं वाथ विदूषकम् ।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ॥

यहाँ इसका प्रयोग—'प्रयोगातिशय' प्रस्तावना के रूप में हुआ है। 'प्रयोगातिशय' प्रस्तावना का लक्षण है :—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"प्रसाद्य रङ्गं विधिवत् कवेर्नाम च कीर्त्तयेत् ।
प्रस्तावनां ततः कुर्यात् काव्यप्रख्यापनाश्रयाम् ।।" (नाट्य शा० ६)
"वाञ्छाकलापस्तु कवेरभीष्टार्थप्रकाशनम् ।
स्वाभिधेयगतत्त्वेन सा द्विधा परिपठ्यते ॥
स्वगतं तु स्वगोत्रादि स्वीयकीर्त्तिप्रशंसनम् ।
अभिधेयगतं यत् तत् काव्यनाम्ना प्रकाशनम् ।। (भाव प्र०)

इत्यादि लक्षणशास्त्रविहिता कविकाव्यकीर्त्तना कालिदासादिनिखिलकवि-ाचरितात्र स्थापना प्रकरणे कर्त्तव्या सती कस्मान्न कृता ? उच्यते—प्रस्ताव-ां कविकाव्यकीर्त्तनसमुदाचारस्तावदस्य पुराणमहाकवेः कालेनावर्त्तत । पश्चा-लेन कवीनामुपजातं कविकाव्यकीर्त्तनसमुदाचारप्रणयं लक्ष्येषु भूयिष्ठमुपलभ्य ुसारि लक्षणं लक्षणकारैः प्रणीतमित्यदोषः । अस्य तु नाटकस्य मातृका-ान्तदृष्टपाठानुसारात् प्रतिमानाटकमिति संज्ञा । श्रीरामे वनाय प्रस्थिते रथस्य या दशा सा प्रतिमागृहे तत्प्रतिमां दृष्टवता भरतेनावगतेति प्रतिमा-ानत्वादस्य तथा व्यपदेशः । एतत्कवेश्च भास इति नामधेयमनुमितम् । यथा ादनुमितिसिद्धिस्तथान्यत्रापि निरूपितं दृष्ट्वा बोद्धव्यमिति ।

अत्र कथावस्तु श्रीरामाश्रयं श्रीमद्रामायणायोध्यारण्यकाण्डगतं संघटितम् ।

इस वचन के अनुसार सूत्रधार के मुख से जहाँ पात्रों का प्रवेश कराया जाता है वहाँ ातिशय प्रस्तावना होती है ।

नाटकीय नियमों के अनुसार प्रस्तावना में कवि और नाटक का नामोल्लेख आवश्यक ा गया है :—

'प्रस्तावनां ततः कुर्यात् काव्यप्रख्यापनाश्रयाम् ।'

फिर भी महाकवि भास ने इस नियम की उपेक्षा की है । इसके कई कारण हैं । सर्वप्रथम ावना यह है कि भास के समय प्रायः नाटकों की यह शैली प्रचलित नहीं थी; क्योंकि निर्णय के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लक्षणग्रन्थों का निर्माण भास के बाद ुआ होगा । इस दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट सिद्ध होता है कि महाकवि भास ने ो समय के प्रचलित किसी सम्प्रदाय की शैली का अतिक्रमण नहीं किया है ।

'प्रतिमा-नाटक' का नाम कुछ लोग इसलिए भी अन्वर्थक मानते हैं कि इसमें प्रतिमागृह ा मूर्तिगृह की घटना का महत्त्व ही नाटक की इतिवृत्तरचना की विशेषता है । प्रो० े अनुसार इस नाटक का पूरा नाम 'प्रतिमा-दशरथ' रहा होगा, आगे चलकर जिसे ्त रूप में 'प्रतिमा' कर दिया गया । इस नाटक के धीरोदात्त नायक भगवान् श्रीराम ्स नाटक की कथावस्तु मिश्रित है । इसके कुछ अंश कल्पित हैं । कुछ ऐतिहासिक हैं । ्त वाल्मीकिरामायण के अयोध्याकाण्ड और अरण्यकाण्ड पर आधारित है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(प्रविश्य)

(प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा)

इसके प्रथम अंक में चेटी द्वारा स्वेच्छा से लाये गये वल्कल की सुन्दरता के प्रति सीताजी आकृष्ट होकर उसे स्वयं पहन लेती हैं। कुछ क्षण के बाद श्रीराम भी वहाँ आते हैं और उनका ध्यान सीता के वल्कल-परिधान पर जाता है और वे स्वयं भी उसे ग्रहण करना चाहते हैं। इसी बीच क्रोध में लक्ष्मण सीता के हर्म्यकक्ष में पहुँचकर कैकेयी से प्रतिशोध चुकाने के लिए स्त्री जाति के संहार की प्रतिज्ञा करते हैं। राम उन्हें समझा कर शान्त करते हैं। द्वितीय अंक में पुत्रवियोग के दुःख से दशरथ की अवस्था दयनीय हुई है। तीसरे अंक में—अपने पूर्वजों को प्रतिमा के साथ पिता दशरथ की प्रतिमा देखकर भरत मूर्च्छित हो जाते हैं, वहीं माताओं के दर्शन के बाद सुमन्त्र के साथ वन जाने की तैयारी करते हैं। चतुर्थ अंक में राज्यारोहण के लिए श्रीराम की चरणपादुका के साथ भरत जंगल से लौट जाते हैं। पंचम अंक में—कपट परिव्राजक रावण के आदेश पर राम सुवर्णमृग को श्राद्ध में उप-योगी होने के कारण लाने जाते हैं। लक्ष्मण एक महर्षि के स्वागतार्थ जाते हैं। रावण सीता का अपहरण करता है। सीता के करुण क्रन्दन से प्रभावित जटायु रावण का मार्गावरोध करता है। षष्ठ अङ्क में—जटायु का वध एवं सुमन्त्र के द्वारा निवेदित सीताहरण से उद्विग्न भरत, राम की सहायता के लिए लंकापर आक्रमण करने का निश्चय करते हैं सातवें अङ्क में—रावण विजय के बाद लंका से लौटकर राम पुनः जनस्थान में पहुँचते हैं। उनके साथ सीता और लक्ष्मण भी हैं। अपनी पूरी सेना, कैकेयी और सुमन्त्र के साथ भरत भी वहीं पहुँच जाते हैं। सबकी उपस्थिति में भरत ने राम के चरणों में राज्यभार समर्पित कर दिया। कैकेयी के आदेश से राम ने वहीं अपना राज्याभिषेक स्वीकार कर लिया है।

प्रतिमा नाटक का इतिवृत्त रामायण के मूलवृत्त का नवीन कविकल्पनाप्रसूत रूपान्तर है। नाट्यविद्या की प्राचीन परम्परा के अनुसार रसभाव की दृष्टि से ऐतिहासिक मूलवृत्त में यथेच्छ परिवर्त्तन कर नाटककार ने 'प्रतिमा' का निर्माण किया है। प्रथम अंक में वल्कल की घटना, दूसरे अंक में मृत्युशय्या पर दशरथ के सामने उनके पूर्वजों का आगमन, तृतीय अंक में वर्णित प्रतिमागृह की सम्पूर्ण घटना, पञ्चम अंक में राम का स्वर्ण-मृग-अन्वेषण, षष्ठ अंक में सुमंत्रका सीतापहरण की घटना से परिचित होना, सप्तम अंक में जनस्थान में राम का राज्याभिषेक आदि रामायण से भिन्न कविकल्पित घटनाएँ हैं। इन घटनाओं का रामायण में बिल्कुल निर्देश नहीं है। बाद में तो यह शैली इतनी लोकप्रिय हुई कि महाकवि कालिदास और भवभूति जैसे प्राणवन्त कवियों ने भी इस मिश्रित कथावस्तु का प्रयोग क्रमशः अभिज्ञान-शाकुन्तलम् एवं 'उत्तर-रामचरित' में किया है।

(रंगमंच पर उपस्थित होकर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतीहारी—आर्यं क इह काञ्चुकीयानां सन्निहितः। [अय्य ! को इह ञ्चुईआणं सण्णिहिदो ।]

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—भवति ! अयमस्मि । किं क्रियताम् ?

प्रतीहारी—आर्यं=अथ सूचितप्रवेशा प्रतिहारी प्रविश्याह—अय्येति । काञ्चुकीयानाम्=अन्तःपुरचराणाम् वृद्धानाम् मध्ये कः इह=कोऽत्र, सन्निहितः=ससीपस्थः, यः अत्र अस्ति स एवागच्छत्वित्यर्थः ।

(प्रविश्य=मञ्चे समागत्य)

काञ्चुकीयः—भवति=श्रीमति, अयमस्मि=अत्रैव उपस्थिताऽस्मि, किं क्रियताम्=अवसरप्राप्तम् कार्यमादिश्यताम् इति तात्पर्यार्थः ।

(कंचुकी का प्रवेश)

कञ्चुकीय—श्रीमति, मैं तो यहीं हूँ । क्या आज्ञा है ? कहिए क्या किया जाय ?

प्रतीहारी—आर्य, कञ्चुकियों में से यहाँ कौन है ?

काञ्चुकीयानाम् = काञ्चुकीय एव काञ्चुकीयः । कञ्चुक+इन्+ततः स्वार्थिकश्छण् । काञ्चुकीयस्य लक्षणम्—

अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः ।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥

सन्निहितः = सम्+नि+धा+क्त । समीपस्थितः ।

अप्रतिहतमहारथः = अप्रतिहतः न केनाप्यवरुद्धः ।

महारथलक्षणम्—

एको दशसहस्राणि बोधयेद्यस्तु धन्विनाम् ।
शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च स महारथ उच्यते ॥

विमर्श—भारतीय नाट्यशास्त्र में अभिनय की रोचकता के विचार से पात्रप्रवेश के ढंगों का उल्लेख भी शास्त्रों में मिलता है । संस्कृत नाटकों में सूत्रधार, नटी, स्थापक कञ्चुकी, प्रतीहारी आदि अभिनेता नाटक के प्रारम्भ में रंगमंच पर आते हैं । इन, पात्रों का वार्तालाप नाटकीय-विधान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना जाता था । किन्तु इस विधान का उपयोग या महत्त्व उस समय था जब रंगशाला में वैज्ञानिक साधन उपलब्ध नहीं थे । आधुनिक विकसित रंगमंच पर तो उन सारी वस्तुओं का प्रदर्शन भी सुलभ हो गया है जो प्राचीन नाटकों के लिए वर्जित थे अथवा जिनके दिखाने मात्र से दर्शकों में उद्वेग फैलता था । यहाँ प्रतीहारी और कञ्चुकी के कथोपकथन के माध्यम से नाटकीय मार्मिकता और अन्तर्वृत्ति का रहस्योद्घाटन किया गया है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतीहारी—आर्य ! महाराजो देवासुरसङ्ग्रामेष्वप्रतिहतमहारथो दशरथ आज्ञापयति—शीघ्रं भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यप्रभावसंयोगकारका अभिषेक-सम्भारा आनीयन्तामिति। [अय्य ! महाराओ देवासुरसंगामेसु अप्पडिहदमहारहो दसरहो आणवेदि—सिग्घं भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जपहावसञ्जोअकारआ अहिसेअसम्भारा आणीअन्तु त्ति ।]

काञ्चुकीयः—भवति ! यदाज्ञप्तं महाराजेन तत् सर्वं सङ्कल्पितम् । पश्य—

छत्रं सव्यजनं सनन्दिपटहं भद्रासनं कल्पितं
न्यस्ता हेममयाः सदर्भकुसुमास्तीर्थाम्बुपूर्णा घटाः ।
युक्तः पुष्यरथश्च मन्त्रिसहिताः पौराः समभ्यागताः
सर्वस्यास्य हि मङ्गलं स भगवान् वेद्यां वसिष्ठः स्थितः ॥ ३ ॥

प्रतीहारी—आर्य, महाराजः=नृपदशरथः, देवासुरसंग्रामेषु=देवदानव-युद्धेषु, अप्रतिहतमनोरथः=अबाधप्रसरः, महारथः=रथमुख्यो यस्य स तथाभूतः दशरथः आज्ञापयति=आदिशति, शीघ्रम्=अविलम्बम्, भर्तृदारकस्य=राजसुतस्य, रामस्य=युवराजस्य राज्यप्रभावसंयोगकारकाः= राज्यप्रभुत्वसंबन्धनिर्वर्तकाः, अभिषेकसम्भाराः=राज्याभिषेकोपकरणानि, आनीयन्तामिति=सज्जीक्रियन्तामिति।

काञ्चुकीयः—भवति=श्रीमति, यदाज्ञप्तम्=यदादिष्टम्, महाराजेन=नृप-दशरथेन, तत् सर्वम्=सकलम्, संकल्पितम्=उपस्थापितमिति। सकलान्युपकरणानि सुसज्जितानि विहितानीत्यर्थः ।

पूर्वम् संकल्पितम् वस्तु स्पष्टयति पश्य=अवलोकय ।

अन्वयः—छत्रम्, सव्यजनम्, सनन्दिपटहम्, भद्रासनम्, कल्पितम् । सदर्भ-कुसुमाः, तीर्थाम्बुपूर्णा, हेममया घटाः, न्यस्ताः । पुष्यरथश्च युक्तः । मन्त्रि-सहिताः, पौराः, समभ्यागताः, । अस्य, सर्वस्य, हि, मङ्गलम्, स, भगवान् वसिष्ठः, वेद्याम्, स्थितः (अस्ति) ॥ ३ ॥

छत्रमिति—छत्रम्=राजधारणीयम् धवलमातपत्रम्, सव्यजनम्=वीजन-

प्रतीहारी—आर्य, देवासुर संग्राम में समरजयी महाराज दशरथ की आज्ञा है कि यथाशीघ्र युवराज राम के राजोचित प्रभुत्व के परिचायक राज्याभिषेक की सारी सामग्रियाँ प्रस्तुत की जांय ।

कञ्चुकी—आर्य, महाराज के आदेशानुसार सारी वस्तुएँ तैयार हैं। देखो—

ये छत्र और चँवर, मांगलिक बाजे और सिंहासन, कुश और कुसुम के साथ तीर्थ जल से भरे हुए सोने के घड़े, घोड़ों से जुता हुआ सुन्दर क्रीडारथ कितने सुन्दर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

साधनसहितं सचामरम्, सनन्दिपटहम्=नन्दिरानन्दस्तस्य तत्कालोपयुक्तः पटहो नन्दिपटहस्तत्सहितम् । भद्रासनम्=सिंहासनम्, कल्पितम्=उपस्थापितम्, सदर्भकुसुमाः—दर्भैः=कुशैः, कुसुमैः=पुष्पैश्च सहिताः, तीर्थाम्बुपूर्णाः गंगादितीर्थविशेषोदकपूर्णाः हेममयाः=सौवर्णाः कलशाः, न्यस्ताः=अभिषेकभूमौ निवेशिताः । पुष्यरथश्च=क्रीडाविहारप्रयोजनो रथविशेषश्च, युक्तः=योजितः । मन्त्रिसहिताः=सचिवैः संयुक्ताः, पौराः=नगरवासिनो जनाः, समभ्यागताः=अभिषेकदर्शनेन निजाक्षीणि सफलयितुमुपस्थिताः । अस्य=पुरोदीरितस्य, सर्वस्य=मंगलोपकरणस्य, हि=यतः, मङ्गलम्=कुशलकारणम्, सः=असौ, भगवान् वसिष्ठः=गुरुवसिष्ठः, वेद्याम्=अनुष्ठानस्थाने, स्थितः=अनुष्ठापकत्वेन वर्तमान इति ॥ ३ ॥

ढंग से सजे हैं और मान्य राजमंत्रियों के साथ सभी नगर निवासी भी आ गये हैं, और इस सम्पूर्ण मंगलमयी सृष्टि के सम्पादक मंगलमूर्त्ति गुरुवसिष्ठ भी स्वयं वेदी पर बैठे हैं ॥ ३ ॥

समासः—व्यजनेन सहितम् सव्यजनम् । नन्दः आनन्दोऽस्यास्तीति नन्दिस्तस्य-तत्कालोपयुक्तः पटहः तेन सहितम सनन्दिपटहम् । भद्रं च तदासनम् चेति भद्रासनम् दर्भैः = कुशैः, कुसुमैश्च=पुष्पैश्च सहिताः=सदर्भकुसुमाः । तीर्थस्य गंगादितीर्थविशेषस्याम्बु जलं तेन पूर्णाः तीर्थाम्बुपूर्णाः । मन्त्रिभिः सहिताः=मन्त्रिसहिताः, सम्भूय उपस्थिता=समभ्यागताः । पुष्यरथः=रथविशेषः । यद्वा–पुष्यः=नक्षत्रविशेषः स हि सर्वकार्येषु शुभदो भवेत् ।

कोशः—पुष्यरथः=याने चक्रिणि युद्धार्थे शताङ्गः स्यन्दनो रथः ।

असौ पुष्यरथश्चक्र-याने न समराय यत् । इत्यमरः ॥

व्युत्पत्तिः—पुरे भवाः पौरास्तत्रभव इत्यण् । हेम्नो विकारार्थे मयट्–हेममयाः ।

अलङ्कारः—प्रस्तुत श्लोक में अभिषेक वस्तु के यथावत् वर्णन रहने के कारण स्वभावोक्ति अलङ्कार हुआ है । इसका लक्षण है—

नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद्विवृण्वती ।
स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालंकृतिर्यथा ॥ काव्यादर्श ८।८ ॥

कारण और कार्य का अभेद वर्णन हेतु अलंकार है । हेतु से अर्थ लिया जाता है । कारण का प्रस्तुत श्लोक में 'मंगल' शब्द में हेतु और हेतुमत् में अभेद सम्बन्ध होने के कारण हेतु अलंकार है—

"हेतोर्हेतुमता सार्धमभेदो यत्र वर्ण्यते ।"

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है । इसका लक्षण है—

"सूर्याश्वैर्मसजास्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ॥"

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतिहारी—यद्येवं, शोभनं कृतम्। [जइ एव्वं, सोहणं किदं।]

काञ्चुकीयः—हन्त भोः !

इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्याः कृताः प्रजाः।
रामाभिधानं मेदिन्यां शशाङ्कमभिषिञ्चता ॥ ४ ॥

प्रतिहारी—यद्येवम्=यदि एतादृगस्ति तर्हि शोभनं कृतम्=सुष्ठुतया कार्यं विहितम्।

काञ्चुकीयः—हन्त भोः=हर्षम् । अत्रानेन शब्देन कञ्चुकी हर्षं प्रकाशयतीति भावः।

अन्वयः—इदानीम्, भूमिपालेन, मेदिन्याम्, रामाभिधानम्, शशाङ्कम्, अभिषिञ्चता, प्रजाः, कृतकृत्याः कृताः ॥ ४ ॥

इदानीमिति। इदानीम्=अधुना, भूमिपालेन=राज्ञा, मेदिन्याम्=पृथिव्याम्, रामाभिधानम्=रामनामकम्, शशाङ्कम्=चन्द्रमसम्, प्रियदर्शनत्वात्। अभिषिञ्चता=राज्ये अभिषेच्यता, प्रजाः=जनाः, कृतकृत्याः=फलितमनोरथाः, कृताः=विहिताः ॥ ४ ॥

प्रतिहारी—यदि बात ऐसी है तो अच्छा किया।

कञ्चुकी—बड़े हर्ष की बात है।

इस धरती के चन्द्र श्रीराम का राज्याभिषेक करने का निश्चय लेकर, महाराज दशरथ ने प्रजा का बड़ा ही कल्याण किया है ॥ ४ ॥

समासः—रामः अभिधानं यस्यासौ रामाभिधानः। शशः अङ्कं चिह्नं यस्य तं शशाङ्कम्। 'प्रजा स्यात् सन्ततौ जने' इत्यमरः। उपचारं अनतिक्रम्येति यथोपचारं तेन अनतिवृत्तावव्ययीभावः। तृतीया सप्तम्योर्बहुलम् इति बाहुलकादम्भावः। नाटकीयानाम् वृद्धाच्छ इति छस्तस्येयादेशः। अत्र सम्बन्धसामान्ये षष्ठी। निवेदयामीत्यत्र भविष्यति यावत्पुरानिपातयोर्लट्।

विमर्श—चतुर्थ श्लोक से 'मुखसन्धि' है। राम के गुणों से आकृष्ट प्रजा बहुत दिनों से उनके अभिषेक की कामना करती थी। आज उसकी कामना फलीभूत होने वाली है। अतः उनमें काफी उत्सुकता देखी जा रही है। इसका लक्षण है—'**औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे।**' श्रीराम में शशाङ्क का आरोप किया है। इससे प्रतीत होता है कि राम अपनी प्रजा के लिए उसी तरह आह्लाद-विधायक एवं आनन्द विधायक हैं जैसे धरती के लिए चन्द्रमा। 'इदानीम्' और 'भूमिपाल' दोनों ही शब्दों का प्रयोग भी अन्वर्थ है। भूमिपाल शब्द से तात्पर्य है धरती के पालक महाराज दशरथ ने जब वृद्धावस्था के कारण हो इस समय राम का 'राज्याभिषेक' कर सम्पूर्ण धरती का भार उनके मज

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतीहारी—त्वरतां त्वरतामिदानीमार्यः । [तुरवदु तुरवदु दाणिं अय्यो]

काञ्चुकीयः—भवति ! इदं त्वर्यते । (निष्क्रान्तः)

प्रतीहारी— (परिक्रम्यावलोक्य) आर्य ! सम्भवक ! सम्भवक ! गच्छ त्वमपि महाराजवचनेनार्यपुरोहितं यथोपचारेण त्वरय (अन्यतो गत्वा) सारसिके ! सारसिके ! सङ्गीतशालां गत्वा नाटकीयेभ्यो विज्ञापय—कालसंवादिना नाटकेन सज्जा भवतेति । यावदहमपि सर्वं कृतमिति महाराजाय निवेदयामि । [अय्य ! संभवअ ! संभवअ ! गच्छ, तुवं पि महाराअवअणेण अय्यपुरोहिदं जहोपआरेण तुवरेहि । सारसिए ! सारसिए ! सङ्गीदसालं गच्छिअ नाडईआणं विण्णवेहि—

प्रतीहारी—त्वरताम्=शीघ्रं क्रियताम्, त्वरताम्=शीघ्रं क्रियताम् । अत्र क्षिप्रताऽर्थे द्विर्वचनम् । इदानीम्=अस्मिन्काले, आर्यः=श्रेष्ठः ।

काञ्चुकीयः—भवति=श्रीमति, इदम्=एतत्, त्वर्यते=शीघ्रं क्रियते । (निष्क्रान्तः=बहिर्गतः)

प्रतीहारी—(परिक्रम्य=परिभ्रमणं कृत्वा, अवलोक्य=दृष्ट्वा च) आर्य= इति सम्बोधनपदम्, संभवक ! संभवक ! इति अन्यकञ्चुकिनो नाम । गच्छ=गम्यताम्, त्वमपि=भवानपि, महाराजवचनेन=नृपाज्ञया, आर्यपुरोहितम्=श्रेष्ठपुरोहितम् वामदेवादिकम् । यथोपचारेण=यथोचितसत्कारेण, त्वरय=शीघ्रताकरणाय प्रेरय । (अन्यतो गत्वा=स्थानान्तरं प्राप्य) सारसिके=इति कस्यापि नटचाः नाम । संगीतशालाम्=नाटचशालाम्, गत्वा=व्रजित्वा, नांटकीयानाम्=नटानाम्, विज्ञापय=सूचय । कालसंवादिना=अभिषेकसमयोचितेन, नाटकेन=अभिनयेन, सज्जाः=प्रयोगसन्नद्धाः भवतेति । यावदिति अवधारणे, अहमपि, सर्वम्=

कन्धों पर सौंपने का उचित निर्णय लिया है । प्रस्तुत श्लोक में 'रूपक' अलंकार है । इसका लक्षण है—'**रूपकं रूपितारोपे विषये निरपह्नवे ।**' प्रजाकी कृतार्थता के कारण में उत्तर-वाक्य हेतु है, अतः 'काव्यलिंग' अलंकार भी हुआ । साभिप्राय भूमिपाल विशेषण के कारण परिकराङ्कुरालंकार भी है । इसं श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ।

प्रतीहारी—आर्य, जल्दी करो, जल्दी ।

कञ्चुकी—आर्ये, लें अतिशीघ्र हो । **(प्रस्थान)**

प्रतिहारी—(घूमकर और देखकर) आर्य संभवक, तुम देख क्या रहे हो, जाओ और शीघ्र ही महामान्य राजपुरोहित को महाराज की ओर से यथाशीघ्र ससम्मान बुला लाओ **(दूसरी ओर जाकर)** अरी सारसिके, ओ सारसिके, तू भी जल्दी कर, संगीतशाला चली जा और वहाँ जाकर अभिनेताओं को सूचित करो कि वे आज एक सामयिक अभिनय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कालसवादिणा णाडएण सज्जा होइ त्ति । जाव अहं पि सव्वं किदं त्ति महारा
णिवेदेमि ।] (निष्क्रान्ता ।) -90

(ततः प्रविशत्यवदातिका वल्कलं गृहीत्वा)

अवदातिका—अहो अत्याहितम् । परिहासेनापीसं वल्कलमुपनयन्त्या ममैत
भयमासीत्, किं पुनर्लोभेन परधनं हरतः । हसितुमिवेच्छामि । न खल्वेकाकि
हसितव्यम् । [अहो ! अच्चाहिदं परिहासेण वि इमं वक्कलं उवणअन्तीए
एत्तिअं भअं आसीं, किं पुण लोभेण परधणं हरन्तस्स । हसिदुं विअ इच्छामि
खु एआइणीए हसिदव्वं ।]

सकलम्, कृतम्=विहितम्, इति=इत्थम्, महाराजाय=दशरथाय, निवेदयामि
कथयामि । (निष्क्रान्ता=बहिर्गता)

(ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति=प्रवेशं करोति, अवदातिका=सीताचे
वल्कलम्=चीरम्, गृहीत्वा=नीत्वा)

अवदातिका—अहो=कष्टम्, अत्याहितम्=महत्भयमुपस्थितम्, परिहासे
विनोदेन, अपि, इमम्=पुरो दृश्यमानम्, वल्कलम्=वृक्षत्वचम्, उपनयन्त्याः
गृह्णन्त्याः, मम=चेटयाः, एतावत्=स्वानुभवैकगोचरप्रमाणम्, भयम्=सा
सम्, आसीत्=अभवद्, किम्=कथम्, पुनः=भृशम्, लोभेन=लोभाभिभू
परधनम्=परकीयाम् सम्पदम्, हरतः=चोरयतः । अवदातिका सीतायाः स
आसीत्, सा चातिगुणवती । तस्येदं कथनमस्ति यत् अन्यदीयम् स्वल्पमू
मपि वल्कलं परिहासार्थम् गृह्णन्त्यापि मम एतावद् भयं जातं चेत्, मूल्यवद
दीयाम् सम्पदम् चोरयतः कीदृग् भयं जायते इति न परिच्छेत्तुम् शक्यम् । एतेन
कैकेयीकृतरामराज्यापहरणमिह सूचितम् । हसितुम्=परिहासं कर्त्तुम्, इव=य
इच्छामि=वाञ्छामि । न=नहि, खलु=निश्चयेन, एकाकिन्या=अद्वितीय
हसितव्यम्=हसनं कर्त्तव्यम् ।

दिखाने को तैयार रहें। तब तक मैं भी मान्य महाराज को सारी तैयारी की सूचना
आती हूँ। (प्रस्थान)

(वल्कल लिये अवदातिका प्रवेश)

अवदातिका—ओह ! बड़ा बुरा हुआ। परिहास के क्रम में एक तुच्छवस्तु व
उठा लाने से जब मैं इतना डर गई हूँ तो निश्चित रूप से बुरी नीयत से दूसरों की मूल्य
वस्तु को चुराने वालों की दशा क्या होती होगी ? अपने इस कर्म पर हँसने की इच्छा
होती है पर अकेले हँसना भी तो भला न लगेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(ततः प्रविशति सीता सपरिवारा)

सीता—हञ्जे अवदातिका परिशङ्कितवर्णेव दृश्यते। किन्नु खल्विवैतत् ?
[हञ्जे ! ओदादिआ परिसङ्किदवण्णा विअ दिस्सइ । किं णु हु विअ एदं ।]

चेटी—भट्टिनि ! सुलभापराधः परिजनो नाम । अपराद्धा भविष्यति ।
[भट्टिणि ! सुलहावराहो परिअणो णाम । अवरज्झा भविस्सदि ।]

सीता—नहि नहि, हसितुमिवेच्छति । [णहि णहि, हसिदुं विअ इच्छदि ।]

अवदातिका— (उपसृत्य) जयतु भट्टिनी ! भट्टिनि ! न खल्वहमपराद्धा ।
[जेदु भट्टिणी । भट्टिणि ! ण खु अहं अवरज्झा ।]

(ततः =तत्पश्चात्, प्रविशति=प्रवेशं करोति, सीता=जानकी, सपरिवारा= परिवारसहिता) ।

सीता—हञ्जे =हण्डे । चेटीं प्रति सम्बोधनमेतत् । अवदातिका=चेट्याः अभिधानम्, परिशकितायाः=भीतायाः, इव=यथा, वर्णम्=आकारो यस्या सा तथाभूता, दृश्यते किन्नु=इति प्रश्ने, खलु=इति वाक्यालङ्कारे। अत्र च भयकारणमजानन्ती सीता चेट्याः आकारपरिवर्तने कारणं पृच्छति ।

चेटी—भट्टिनी=देवी, 'देवी कृताभिषेकायामितरासु तु भट्टिनी' इत्यमरः । सुलभाः=सहजाः, अपराद्धाः=बहुल संभवापराधः, परिजनः=भृत्यवर्गः, नामेति प्रसिद्धौ । अपराद्धा =कृतापराधा, भविष्यतीति ।

सीता—नहि नहि=नैव नैव, हसितुम्=परिहासकर्त्तुम्, इव=यथा, इच्छतीति ।

अवदातिका—(उपसृत्य=समीपं गत्वा) जयतु=विजयस्व, भट्टिनी=

(इसी बीच परिवार के साथ सीता प्रवेश करती हैं)

सीता—अरी सखी, देख तो अवदातिका के मुँह का रंग उड़ा हुआ सा दीख पड़ता है, पता नहीं क्या बात है ?

समासः—परिशङ्कितवर्णेव=परिशङ्किताया इव वर्णं यस्याः सा तथाभूतेति ।

चेटी—महारानी, परिजनों से कुछ न कुछ अपराध तो हो ही जाता है । इससे भी कुछ गलती हुई होगी ।

समासः—भट्टिनी-भट्टो राजा सोऽस्यास्ति पतित्वेनेति राजपत्नी । सुलभापराधः -सुलभः अपराधो यस्य तथाभूतः ।

सीता—नहीं नहीं—यह तो हँसना चाह रही है ।

अवदातिका—(पास आकर) महारानी की जय हो स्वामिनी, मैंने कोई कसूर नहीं किया है ।

टिप्पणी—भासने अपने नाटक में अपनी सहज गहरी आनन्दवादी मनोभंगिमा का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—का त्वां पृच्छति । अवदातिके! अवदातिके! किमेतद् वामहस्तपरिगृहीतम् । [का तुमं पुच्छदि । ओदादिए ! ओदादिए ! किं एदं वामहत्थपरिगहिदं ।]

अवदातिका—भट्टिनि ! इदं वल्कलम् । [भट्टिणि ! वक्कलं ।]

सीता—वल्कलं कस्मादानीतम् । [वक्कलं किस्स आणीदं ।]

अवदातिका—शृणोतु भट्टिनी । नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा निर्वृत्तरङ्गप्रयोजनमशोकवृक्षस्यैकं किसलयमस्माभिर्याचितासीत् । न च तया दत्तम् । ततोऽहंत्यपराध

स्वामिनी, न=नहि, खलु=निश्चयेन, अहम्=अवदातिका, अपराद्धा=कृतापराधा ।

सीता—का त्वाम् पृच्छति=त्वमपराधिनी अस्ति न वेति का=नारी विशेषा पृच्छति=जिज्ञासां करोतीति । त्वदपराधविषये नाशंकितम् मया नवा जिज्ञासितम् तथापि अपृष्टाया इदमात्मनोऽपराद्धत्व-निषेधस्तच्छङ्कामेव जनयतीति भावः । अवदातिके=हला किमेतत्=किमस्ति, वामहस्तपरिगृहीतम्=दक्षिणेतरकरे धृतम् ?

अवदातिका—भट्टिनि=स्वामिनि, इदम्=एतत्, वल्कलम्=चीरम् ।

सीता—वल्कलम्=तरुत्वचम्, कस्मात्=कुत्रतः, आनीतम्=गृहीतम् ।

अवदातिका—शृणोतु=जानातु, भट्टिनी=स्वामिनी, नेपथ्यपालिनी=रङ्गालङ्काररक्षिणी, आर्यरेवा=आर्या रेवाख्या, निवृत्तरङ्गप्रयोजनम्=समाप्तरङ्गोपयोगम्, अशोकवृक्षस्य=अशोकनामकतरुविशेषस्य, एकम्=अद्वितीयम्, किसलयम्=पल्लवः, पल्लवोऽस्त्री 'किसलयमि'त्यमरः । अत्र याचेर्द्विकर्मकतया द्वितीया, द्वितीयं कर्म 'आर्य रेवा' इति । आर्या चासौ रेवा आर्यरेवा । अस्माभिः,

---

आसव प्रवाहित करते हुए भी, जिस जीवनदृष्टि का अनावरण किया है, वह व्यापक एवं ऊर्ध्वगामिनी है । भाव की अनुभूति भास की विशिष्टता है । यह अनुभूति वस्तु-जगत् का परिपाक है । व्यावहारिकता का निदर्शन है । जीवन जगत् के आवेष्टन से आविल है। अवदातिका का यह कथन कि सामान्य परिहास में उठाई गई वस्तु भी जब भयोत्पादक है तो फिर किसी की मूल्यवान् वस्तुका अपहरण कितना घातक हो सकता है । यह सीधे कैकेयीकृत्य का संकेत देकर कविने काव्य के उपादान के रूप में जीवन से और उससे जगत् के संश्लेष-विश्लेष का ही रूप स्पष्ट किया है ।

सीता—तुमसे पूछती कौन है ? अरी अवदातिके, तेरे बायें हाथ में क्या है ?

अवदातिका—महारानी, यह तो वल्कल है ।

सीता—तू वल्कल कहाँ से ले आई रे ?

अवदातिका—सुनिये महारानी, वह जो नेपथ्य की रक्षिका आर्या रेवा हैं न, उनसे हम लोगों ने एक दिन, वह अशोक का पत्ता जो नाटक के काम में आ चुका था—मांगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इतीदं गृहीतम् । [सुणादु भट्टिणी । णेवच्छपालिणी अय्यरेवा णिब्बुत्तरङ्गप्पओअणं असोअरुक्खस्स एक्कं किसलअं अम्हेहिं जाइदा आसि । ण अ ताए दिण्णं । तदो अरिहदि अवराहो त्ति इदं गहिदं ।]

सीता—पापकं कृतम् । गच्छ, निर्यातय । [पावअं किदं । गच्छ, णिय्यादेहि ।]

अवदातिका—भट्टिनि ! परिहासनिमित्तं खलु मयैतदानीतम् । [भट्टिणि ? परिहासणिमित्तं खु मए एदं आणीदं ।]

सीता—उन्मत्तिके ! एवं दोषो वर्धते । गच्छ, निर्यातय निर्यातय । [उन्मत्तिए ! एव्वं दोसो वड्ढइ । गच्छ, णिय्यादेहि, णिय्यादेहि ।]

अवदातिका—यद् भट्टिन्याज्ञापयति । (प्रस्थातुमिच्छति) [जं भट्टिणी आणवेदि ।]

चेटीभिः, न तु मया एकाकिन्या, याचिता=प्रार्थिता, आसीत् । न=नहि, च=पुनः तया=आर्यया, दत्तम्=प्रदत्तम्, ततः=तत्पश्चात्, अपराधः=तत्कृतः, अर्हति=औचित्यमावहति तां दण्डयितुमिदं कार्यम् कृतमिति । अर्थात् इदम्=पुरो दृश्यमानं वल्कलम् गृहीतम्=हृतम् ।

सीता—पापकम्=महत्पापम्, अत्र प्रत्ययेन पापस्यातिशयं द्योतते, कृतम्=विहितम् । अतः गच्छ=याहि, निर्यातय=ताम्प्रत्यर्पयेति ।

अवदातिका—भट्टिनि=स्वामिनि, परिहासनिमित्तम्=केवलपरिहासार्थमेव, खलु=निश्चयेन, मया=अवदातिकया, एतत्=वल्कलम् आनीतम्=अपहृतम् ।

सीता—उन्मत्तिके=विभ्रान्तचित्ते, एवं=अनेन प्रकारेण परिहासार्थमन्यदीयद्रव्यहरणेन, दोषः=परधनहरणजन्यदोषः, वर्धते=उपचीयते । अतः गच्छ=शीघ्रमेव गम्यताम्, निर्यातय=परावर्त्तयताम् । यतो हि—अन्यदीयवस्तु तदननुज्ञया गृह्यमाणं ग्रहीतारं दोषभाजं करोतीति ।

अवदातिका—यत्=यथा, भट्टिनी=स्वामिनी, आज्ञापयति=आदिशति, तथैव करोमीत्यर्थः (**प्रस्थातुमिच्छति=गन्तुं समुद्यता**)

किन्तु, उन्होंने दिया नहीं । इसलिए हमने यह वल्कल उठा लिया है ।

सीता—तुमने बुरा किया । जाओ, लौटा दो ।

अवदातिका—महारानी, मैं तो इसे परिहास के क्रम में उठा लाई हूँ । इसमें बुराई क्या है ?

सीता—पगली, इसी प्रकार तो बुराई बढ़ती है । जा-जा लौटा दे इसे ।

अवदातिका—जैसी आपकी इच्छा, महारानी । **(जाना चाहती है)**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—हला एहि तावत्।[हला एहि दाव ।]

अवदातिका—भट्टिणि ! इयमस्मि । [भट्टिणि ! इअम्हि ।]

सीता—हला ! किन्नु खलु ममापि तावत् शोभते । [हला ! किंणु हु मम वि दाव सोंहदि ।]

अवदातिका—भट्टिनि ! सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम । अलङ्करोतु भट्टिनी। [भट्टिणि ! सव्वसोहणीअं सुरूवं णाम । अलङ्करोदु भट्टिणी ।]

सीता—आनय तावत् । (गृहीत्वालङ्कृत्य) हला ! पश्य, किमिदानीं शोभते ? [आणेहि दाव ! हला ! पेक्ख, किं दाणिं सोहदि ?]

सीता—हला=अवदातिके, एहि=आगच्छ, तावदित्यवधारणार्थे । प्रस्थितमात्रायाम् अवदातिकायाम् आत्मनोऽकस्माज्जातम् तस्करगतवल्कलधारणकौतुकम् सफलयितुकामा ताम् आह्वयति हलेति। हला शब्दः सखीं प्रति आह्वाने सूचितमिति।

अवदातिका—भट्टिनि=स्वामिनि, इयमस्मि=अहं तु तवैव सन्निकृष्टाऽस्मि, आज्ञापयेति ।

सीता—हला=हण्डे, किन्नु = कथन्नु, खलु=इत्यवधारणे, ममापि=सीतायाः अपि, शोभते=दीप्यते, इदं वल्कलं धारितमिति वाक्यशेषः । अर्थात् मया धार्यमाणमिदं वल्कलं श्रियमादधाति नवेति तत्प्रश्नाशयः । सीतायाः हृदये भावो यत् वल्कलानि धारयन्ती कीदृश्यहं विलोक्यते। एतेन भावी रामवनवासः वल्कलधारणं च सूचयति ।

अवदातिका—भट्टिनि=स्वामिनि, सर्वशोभनीयम्=सर्वेण वस्तुना सुन्दरेणासुन्दरेण वा सर्वप्रकारेण वस्तुना शोभनीयम्, शोभयितुमशक्यम्, सुरूपम्=सुन्दररूपम् । शोभनम् रूपं यस्य तत्सुरूपम् । सामान्ये नपुंसकम् । नामेति प्रसिद्धौ। एतदनुरूपाभावो यथाभिज्ञानशाकुन्तले–'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्' (अ० शा० १) । भट्टिनी=भर्तृदारिका, अलङ्करोतु=मण्डनत्वेन धारयत्वित्यर्थः।

सीता—आनय=देहि, तावदित्यवधारणे (**गृहीत्वा**=नीत्वा, **अलंकृत्य**=

सीता—अरी जरा इधर तो आ।

अवदातिका—ये आई महारानी ।

सीता—हला, यह वल्कल मुझे अच्छा लगेगा ।

अवदातिका—महारानी, सुन्दर रूप को सभी चीजें अच्छी लगती हैं। पहनकर तो देखिए ।

सीता—अच्छा तो ले आ (**लेकर तथा पहनकर**) अरी देख तो अच्छा लगता है न!

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अवदातिका—तव खलु शोभते नाम । सौर्वणिकमिव वल्कलं संवृत्तम् । [तव खु सोहादि णाम । सौवण्णिअं विअ वक्कलं संवुत्तम् ।]

सीता—हञ्जे ! त्वं किञ्चन्न भणसि । [हञ्जे ! तुवं किञ्चि ण भणासि ।]

चेटी—नास्ति वाचा प्रयोजनम् । इमानि प्रहर्षितानि तनूरुहाणि मन्त्रयन्ते । (पुलकं दर्शयति) [णत्थि वाआए पओअणं । इमे पहरिसिदा तणुरुहा मन्तेन्ति ।]

सीता—हञ्जे ! आदर्शं तावदानय । [हञ्जे ! आदंसअं दाव आणेहि ।]

धारयित्वा) पश्य=अवलोकय, किम्=कथं, इदानीम्=अधुना, शोभते=राजते । अर्थाद् वल्कलधारणानन्तरं मद्वपुः किं शोभते । अथवा—मद्देहधारणेन वल्कलं विहतात्मशोभमुत अविहतात्मशोभमिति प्रश्नाशयः ।

अवदातिका—तव=सीतायाः, खलु = इत्यवधारणे, शोभते=राजते, नाम= निश्चये, सौर्वणिकमिव=सुवर्णमयमिव, वल्कलम्=तरुत्वचम्, संवृत्तम्=जातम्, अर्थात् तव शरीरसम्पर्कात् देहप्रभया दीप्यमानं वल्कलं लब्धोत्कर्षं जातम् ।

सीता—हञ्जे=हले, त्वम्=चेटीम्प्रतिकथनम्, किञ्चित=किमपि, न= नहि, भणसि=कथयसि । अत्र वल्कलधारणप्रसङ्गे तवाभिप्रायो नाभिव्यज्यते ।

चेटी—नास्ति=न किमप्यस्ति, वाचा=वचनस्य, प्रयोजनम्=आवश्यकता, इमानि=एतानि, प्रहर्षितानि=उदञ्चितानि, तनूरुहाणि=लोमानि, मन्त्रयन्ते= सूचयन्ति । वाचेत्यत्र 'निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्' इत्यनुशासनात् निमित्तार्थकप्रयोजनशब्दप्रयोगे तृतीया विभक्तिः । रोमोद्गमो हि आनन्दप्रभवः, आनन्दश्च वल्कलशोभातिशयोपलब्धिजन्य इति चेट्याशयः । पुलकितानां रोम्णामेव मदन्तर्गतानन्दाभिव्यञ्जकत्वशालित्वे तदभिप्राया वागावश्यकतारहितेति भावः । (पुलकं=रोमाञ्चम्, दर्शयति=प्रकाशयति) ।

सीता—हञ्जे=हले, आदर्शम्=दर्पणम्, तावदवधारणे, आनय=उपस्थापय ।

अवदातिका—आप की तो बात ही क्या पूछना ? आपकी देह के संपर्क से यह वल्कल भी स्वर्णनिर्मित-सा लगता है ।

सीता—सखि, तुम कुछ बोलती क्यों नहीं ।

चेटी—कुछ कहने की जरूरत नहीं है । इस निराली छटा को देखकर प्रसन्नता के मारे रोमांच हो आये हैं, वही तो सब कह रहा है ।

(पुलक दिखाती है)

सीता—सखि, जरा शीशा तो ले आ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चेटी—यद् भट्टिन्याज्ञापयति । (निष्क्रम्य प्रविश्य) भट्टिनि ! अयमादर्शः। [जं भट्टिणी आणवेदि । भट्टिणि ! अजं आदंसओ ।]

सीता—(चेटीमुखं विलोक्य) **तिष्ठतु तावदादर्शः । त्वं किमपि वक्तुकामेव।** [चिट्ठदु दाव आदंसओ । तुवं किं वि वत्तुकामो विअ ।]

चेटी—भट्टिनि ! एवं मया श्रुतम् । आर्यबालाकिः कञ्चुकी भणति अभिषेकोऽभिषेक इति। [भट्टिणी ! एवं मए सुदं । अय्यबालाई कञ्चुई भणादि अहिसेओ अहिसेओ त्ति ।]

सीता—कोऽपि भर्ता राज्ये भविष्यति । [को वि भट्टा रज्जे भविस्सदि ।]

चेटी—यत्=यत्किंचित्, भट्टिनी=स्वामिनी, आज्ञापयति=आदिशति (**निष्क्रम्य=बहिर्गत्वा, प्रविश्य=पुनः प्रवेशं कृत्वा**) भट्टिनि=स्वामिनि, अयम्=एषः, आदर्शः=दर्पणमिति ।

सीता—(चेटीमुखम्=आदर्शग्रहणात् प्राक् चेटीमुखे स्फुरिताधरत्वादिकं विवक्षुचिह्नं विलोक्य=दृष्ट्वा) तिष्ठतु=स्थापयतु, तावत्=किञ्चित्कालपर्यन्तम्, आदर्शः=दर्पणम् । त्वम्=चेटी, किमपि=कियदपि, वक्तुकामेव=वक्तुम् कामोऽभिलाषो यस्याः सा तथाभूता । किमपि त्वं विवक्षसि प्रथमम् तदाकर्ण्यैव परतः तदाधारेण निर्धारणीयमिति सीतायाः आशयः ।

चेटी—भट्टिनि=स्वामिनि, एवम्=इत्थम्, मया=चेट्या, श्रुतम्=ज्ञातम्, आर्यबालाकिः=आर्यः चासौ बालाकिश्चेति, बालाकिरिति कञ्चुकिनो नामधेयम् । भणति=कथयति, अभिषेकोऽभिषेक इति—अत्र अभिषेकस्य द्विरुक्तिरानन्दसमुद्भवसंभ्रमादिति ।

सीता—दशरथे जीवति रामस्य राज्याभिषेकवार्ताया अनाशङ्कनीयत्वात्सीता औदासीन्येनालपति । यत्र क्वापि राज्ये कोऽपि=यः कोऽपि, भर्त्ता=कुमारः, राज्ये=राजसिंहासने, भविष्यति=भर्तृपदेऽभिषिक्तो भविष्यतीति तदस्माकमत्र नास्त्येति सीताया औदासीन्याभिव्यञ्जिकवाचो भङ्गिः ।

चेटी—आपकी जैसी आज्ञा **(जाकर तथा लौटकर)** स्वामिनि, लीजिये यह दर्पण।

सीता—(चेटी की ओर देखकर) रहने दे ऐनक, पहले यह बतला तू कहना क्या चाह रही है ?

चेटी—महामान्ये, आर्य बालाकि कन्चुकी को कहते हमने सुना है—अभिषेक है अभिषेक ।

सीता—हाँ, किसी का राजतिलक होगा तो ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(प्रविश्य अपरा)

चेटी—भट्टिनि ! प्रियाख्यानिकं प्रियाख्यानिकम् । [भट्टिणि ! पिअक्खाणिअं पिअक्खाणिअं ।]

सीता—किं किं प्रतीष्य मन्त्रयसे । [किं किं पडिच्छिअ मन्तेसि ।]

चेटी—भर्तृदारकः किलाभिषिच्यते । [भट्टिदारओ किल अहिसिच्चीअदि ।]

सीता—अपि तातः कुशली ? [अवि तादो कुसली ।]

चेटी—महाराजेनैवाभिषिच्यते । [महाराएण एव्व अहिसिच्चीअदि ।]

सीता—यद्येवं, द्वितीयं मे प्रियं श्रुतम् । विशालतरमुत्सङ्गं कुरु । [चइ एव्वं, दुदीअं मे पिअं सुदं । विसालदरं उच्छङ्गं करेहि ।]

चेटी—भट्टिनि ! तथा । (तथा करोति) [भट्टिणि ! तह]

(प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा, अपरा=अन्या)

चेटी—भट्टिनि=स्वामिनि, प्रियाख्यानिकम्, प्रियाख्यानमस्मिन्नस्तीति प्रियाख्यानिकं कर्म वर्तत इति शेषः ।

सीता—किं किमित्याधारीकृत्य मनसि, प्रतीष्य=उपलभ्य, मंत्रयसे=विचारयसि

चेटी—भर्तृदारकः=युवराजो रामः, किल, अभिषिच्यते ।

सीता—पितरिर्जीवति रामाभिषेचनमसंभावयन्ती सीता पृच्छति—अपि तातः कुशली—महाराजदशरथस्य कुशलमिव ।

चेटी—महाराजेनैव=स्वयं दशरथेनैव, अभिषिच्यते=राज्याभिषेकः क्रियते ।

सीता—यद्येवम् यदि महाराज एव अभिषेचनकर्त्ता चेत्, तर्हि द्वितीयं प्रियम्=रामाभिषेचनमेकं प्रियम्, तातकुशललक्षणम् तु द्वितीयम्, मे=मया, श्रुतम्=ज्ञातम् । मयाऽत्र तृतीयार्थेऽव्ययम् । विशालतरम्=अतिविस्तृतम्, उत्सङ्गम्=अञ्चलपटम्, कुरु=क्रियतामिति ।

चेटी—भट्टिनि=स्वामिनि, तथा=यथाऽऽदिशति । (तथा करोति=पटं प्रसारयति)

(दूसरी चेटी का प्रवेश)

चेटी—महारानी, खुश खबरी है, शुभ संवाद ।

सीता—क्या मन में रखकर बोल रही है ?

चेटी—सुना है कुमार राम का ही अभिषेक होनेवाला है ।

सीता—क्यों पिता जी सकुशल तो हैं ?

चेटी—महाराज स्वयं अभिषेक करा रहे हैं ?

सीता—यदि बात सच है तो तुमने दूसरी खुशखबरी सुनाई । ले अपना आंचल फैला ।

चेटी— जैसी आज्ञा (वैसा ही करती है)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—(आभरणान्यवमुच्य ददाति)

चेटी—भट्टिनि ! पटहशब्द इव । [भट्टिणि ! पटहसद्दो विअ !]

सीता—स एव । [सो एव्व ।]

चेटी—एकपदे अवघट्टिततूष्णीकः पटहशब्दः संवृत्तः । [एक्कपदे ओघट्टिओ तुह्णीओ पटहसद्दो संवुत्तो ।]

सीता—को नु खलूद्घातोऽभिषेकस्य । अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम । [को णु खु उग्घादो अहिसेअस्स । अहव बहुवुत्तन्ताणि राअउलाणि णाम ।]

चेटी—भट्टिनि ! एवं मया श्रुतं । भर्तृदारकमभिषिच्य महाराजो वनं गमिष्यतीति । [भट्टिणि ! एवं मए सुदं—भट्टिदारअं अहिसिञ्चिअ महाराओ वणं गमिस्सदि त्ति ।]

सीता—(आभरणानि=आभूषणानि, अवमुच्य=अङ्गादवतार्य, ददाति=प्रयच्छति)

चेटी—भट्टिनि=स्वामिनि, पटहशब्द इव=अभिषेकमंगलाभिसूचक शब्द इव श्रूयते इत्याशयः ।

सीता—स एव=पटहशब्द एव, अर्थात् अभिषेकमंगलाङ्गभूतः ।

चेटी—एकपदे=सद्यः एव, अवघट्टितः=ताडनोत्पन्नः, तूष्णीकः=विरतश्च । पटहशब्दः=मंगलध्वनिः, संवृत्तः=जातः ।

सीता—को नु खलु=इति जिज्ञासार्थे, उद्घातः=विघातः, अभिषेकस्य=राज्याभिषेस्य । बहुवृत्तान्तानि=बहुप्रकाराः वृत्तान्ताः येषु तानि तथाभूतानि, अर्थात् नानाविधकथनानि, राजकुलानि=राजगृहाणि नाम ।

चेटी—भट्टिनि=स्वामिनि, एवम्=एवञ्च रामाभिषेकावसरप्रवृत्तस्य पटहप्रणादस्य झटिति विरतौ दशरथवनगमननिश्चयाकर्णनम् कारणं संभाव्यत

सीता—(देह से आभूषण उतार कर देती है)

चेटी—महारानी, पटह की मंगलध्वनि तो सुनाई पड़ रही है ।

सीता—हाँ, पटह की ही तो आवाज है ।

चेटी—मगर, जल्द ही बजकर चुप हो गया ।

सीता—अभिषेक में पता नहीं क्या विघ्न हुआ ? राजकुलों में अगनित घटनाएँ घटती ही रहती हैं ।

चेटी—महारानी मैंने सुना है—कुमार को राजगद्दी बैठाने के बाद महाराज वानप्रस्थ ग्रहण करेंगे ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—यद्येवं, न तदभिषेकोदकं, मुखोदकं नाम ! [जइ एव्वं; ण सो अहिसेओदआ, मुहोदअं णाम ।]

(ततः प्रविशति रामः)

रामः—हन्त भोः !

आरब्धे पटहे स्थिते गुरुजने भद्रासने लङ्घिते
स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये घटे ।
राज्ञाहूय विसर्जिते मयि जनो धैर्येण मे विस्मितः
स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो ! विस्मयः ? ॥ ५ ॥

इति । मया=चेटया, श्रुतम्=ज्ञातम्, भर्तृदारकम्=कुमाररामम्, अभिषिच्य=अभिषेकं कृत्वा, महाराजः=दशरथः, वनम्=अरण्यम्, गमिष्यति=यास्यतीति ।

सीता—यद्येवम्=यदि एतादृशी वार्त्ता भविष्यति तदा अभिषेकोदकम् अभिषेकार्थमुदकम्, मुखोदकम्=मुखार्थमुदकम् । अर्थात् मुखोद्भवदुःखवाष्पप्रक्षालनार्थं जलमिति भावः ।

(ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति=प्रवेशम् करोति, रामः=दशरथकुमारः)

रामः–हन्त भोः=इति हर्षे । स च वक्ष्यमाणपितृनिदेशानुष्ठानावसरलाभप्रभावः

अन्वयः—पटहे आरब्धे, गुरुजने स्थिते, भद्रासने लङ्घिते, घटे स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये, राज्ञा आहूय विसर्जिते मयि, जनः मे धैर्येण विस्मितः । भोः ! यदि स्वः पुत्रः पितुः वचः कुरुते तत्र कः विस्मयः ॥५॥

आरब्ध इति । पटहे=वाद्यभेदे; आरब्धे=अवघट्टिते सति, गुरुजने स्थिते=

सीता—यदि ऐसा हुआ तो निश्चय ही अभिषेकजल आंसू धोने का जल बन जायेगा।

(राम का प्रवेश)

राम—ओह,

बाजे बजने लगे थे। गुरुजन वहाँ पर उपस्थित थे। मैं सिंहासन पर समासीन था तीर्थजलों से भरे मंगल कलशों को उठा उठाकर मेरा अभिषेक किया जा रहा था। इसी समय महाराज ने अभिषेक कार्य रोककर, मुझे सिंहासन से बुलाकर कहा—'जाओ।' मैं सीधे चल तड़ा। उपस्थित जन-समुदाय मेरे धैर्यपर आश्चर्यचकित हो गये। मगर मैं पूछता हूँ—पुत्र ने पिता की आज्ञा का पालन किया तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात हुई ? ॥५॥

प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। जहाँ वाक्यार्थ या पदार्थ किसी कथन का कारण हो वहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है। यहाँ विस्मयभाव में हेतु उपन्यस्त है अतः काव्यलिङ्ग अलङ्कार हुआ। इसका लक्षण है :—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'विश्रम्यतामिदानीं पुत्रे'ति स्वयं राज्ञा विसर्जितस्यापनीतभारोच्छ्वसितमिव मे मनः। दिष्ट्या स एवास्मि रामः, महाराज एव महाराजः। यावदिदानीं मैथिलीं पश्यामि।

अभिषेकदर्शनोत्सुकतया गुरुजने उपस्थिते, भद्रासने=सिंहासने, लङ्घिते=मयारूढे सति, घटे=कलशे, स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये=स्कन्धोच्चारणेन शिरसि आवर्जनसौकर्याय स्कन्धादूर्ध्वं नीत्वेत्याशयः, नम्यमानात् वदनात् प्रच्योतितुम् शीलमस्येति तथाभूतम्, तोयम् जलं यस्य तस्मिन् तथाभूते सति मयि राज्ञा=महाराजेन, आहूय=आकारयित्वा, विसर्जिते=भद्रासनादवतार्य गच्छेत्यादिष्टे, मयि=रामे, जनः=लोकः, मे=मम, धैर्येण=गाम्भीर्येण, विस्मितः= आश्चर्याख्यं भावमावहत। न चैतदुचितम् तत्र विस्मयकारणीभूतालौकिककार्याभावात् तदेवाह—भोः यदि=स्यात्, स्वः, औरसः पुत्रः=सुतः, पितुः= जनकस्य, वचः=वचनम्, कुरुते=प्रतिपालयति, तत्र पुत्रकर्तृकपित्राज्ञापालने को विस्मयः? न कोपीत्यर्थः। तस्य न्यायप्राप्तत्वेन सततमाशास्यमानत्वादिति भावः ॥ ५ ॥

विश्रम्यताम्=अभिषेकेण विरम्यताम्। इदानीम्=अधुना, पुत्र=सुत, इति। स्वयं=आत्मनैव, राज्ञा=महाराजेन, विसर्जितस्य=स्वच्छन्दीकृतस्य, अपनीतभारोच्छ्वसितमिव=अपनीतः दूरीकृतः यः भारः राज्यरक्षणादिकृतस्तेन उच्छ्वसितम् साश्वासमिव जातमिति। मे=मम रामस्य, मनः=चित्तम्। दिष्ट्या= भाग्येन, स एवास्मि रामः=अहं पूर्ववदेव केवलं राम एवाऽस्मि, न तु अपूर्वेण महाराजशब्देन शब्दितोऽस्मि। महाराज एव=तात एव, महाराजः=महाराज-

---

श्रुतमेकं यदन्यत्र स्मृतेरनुभवस्य वा।
हेतुताम् प्रतिपद्येत काव्यलिङ्गम् तदुच्यते ॥ काव्यालङ्कारसारसंग्रह ६।७

को विस्मयः=अर्थात् कुछ नहीं 'काकुवक्रोक्ति' अलङ्कार है। इसका लक्षण है :—

अन्यस्यान्यथकं वाक्यमन्यथा योजयेद्यदि।
अन्यः श्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्तिर्द्विधा स्मृतः ॥

प्रस्तुत श्लोक में 'शार्दूलविक्रीडित' वृत्त है ॥ ५ ॥

'बेटा राम, रहने दो राज्याभिषेक' यह कहकर महाराज ने मुझे स्वयं बिदा दी। राज्य भार टल जाने से तो मेरा मन छुटकारे की सांस ले रहा है। भाग्य ने साथ दिया—मैं वही राम का राम बना रह गया और महाराज रह गये महाराज। अच्छा तो अब चलकर सीता से तो भेंट कर लूँ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अवदातिका—भट्टिनि ! भर्तृदारकः खल्वागच्छति । नापनीतं वल्कलम् ? [भट्टिणि ! भट्टिदारओ खु आगच्छइ । णावणीदं वक्कलं ?]

राम:—मैथिलि ! किमास्यते ?

सीता—हम् आर्यपुत्रः । जयत्वार्यपुत्र । [हं अय्यउत्तो । जेदु अय्यउत्तो ।]

राम:—मैथिलि ! आस्यताम् । (उपविशति)

सीता—यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति । (उपविशति) [जं अय्यउत्तो आणवेदि ।]

अवदातिका—भट्टिनि ! स एव भर्तृदारकस्य वेषः । अलीकमिवैतद् भवेत् । [भट्टिणि ! सो एव्व भट्टिदारअस्स वेसो । अलिअं विअ एदं भवे ।]

शब्दितः । यावत् = इत्यवधारणे, इदानीम्=अधुना मैथिलीम्=जानकीम्, पश्यामि =द्रक्ष्यामि ।

अवदातिका—भट्टिनि=स्वामिनि, भर्तृदारिकाः=कुमाररामः, खलु= निश्चयेन, आगच्छति=उपसर्पति इत एव । नापनीतम्=वल्कलं भवत्या न अपनीतम्, इत्थं विलोक्य रामः कदाचित् मानमन्यं वा कञ्चन भावमुत्प्रेक्षेत, ततोऽनुचितं स्यादिति तदाशयः ।

रामः—मैथिलि=सीते, किम्=कथम्, आस्यते=स्थिताऽसि ?

सीता—हम्=इत्याश्चर्ये, आर्यपुत्रः=स्वामी, जयतु=सर्वोत्कर्षेण वर्त्तताम् ।

रामः—मैथिलि=सीते, आस्यताम्=उपविश्यताम् । (**उपविशति**)

सीता—यत्=यथा, आर्यपुत्रः=स्वामी, आज्ञापयति=आदिशति । (**उप-विशति= तथैव करोति**) ।

अवदातिका—भट्टिनि=स्वामिनि, स एव=तथैव, भर्तृदारकस्य=कुमारस्य, वेषः=वस्त्राभूषणम् । अलीकमिव=असत्यमिव, एतद् भवेत्=सम्भावनायां लिङ् । अनेनानिश्चयं प्रकटयति ।

अवदातिका—महारानी, कुमार इधर ही आ रहे हैं, आपने तो अभी तक वल्कल उतारा ही नहीं ।

राम—सीते, कैसे बैठी हो ?

सीता—ऐं, आर्यपुत्र हैं । जय हो आर्यपुत्र की ।

राम—मैथिली, बैठो । (**बैठते हैं**)

सीता—जैसी आज्ञा । (**बैठती है**)

अवदातिका—महारानी, राजकुमार का वेश तो अभी वही है । खबर झूठी लगती है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—तादृशो जनोऽलीकं न मन्त्रयते । अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम । [तादिसो जणो अलिअं अ मन्तेदि । अहव बहुवुत्तन्ताणि राअउलाणि णाम ।]

रामः—मैथिलि ! किमिदं कथ्यते ।

सीता—न खलु किञ्चित् । इयं दारिका भणति—अभिषेकोऽभिषेक इति । [ण खु किञ्चि । इअं दारिआ भणादि—अहिसेओ अहिसेओ त्ति ।]

रामः—अवगच्छामि ते कौतूहलम् । अस्त्यभिषेकः । श्रूयताम् । अद्यास्मि महाराजेनोपाध्यायामात्यप्रकृतिजनसमक्षमेकप्रकारसङ्क्षिप्तं कोसलराज्यं कृत्वा बाल्याभ्यस्तमङ्कमारोप्य मातृगोत्रं स्निग्धमाभाष्य 'पुत्र! राम! प्रतिगृह्यतां राज्यम्' इत्युक्तः ।

सीता—तादृशः=समाद्रियमाणः, जनः=लोकः, अलीकम्=अनृतम्, न= नहि, मन्त्रयते=विचारते । अथवा=किंवा, बहुवृत्तान्तानि=अनेकचरितानि, राजकुलानि=अन्तःपुराणि, नाम ।

रामः—मैथिलि=सीते, किमिदम्=किमेतत् कथ्यते युवाभ्यामिति ।

सीता—न खलु किञ्चित्=न किमपि अस्ति । इयं दारिका=चेटी, भणति= वदति, अभिषेकः अभिषेक इति=राज्याभिषेकस्य वार्ता इति ।

रामः—अवगच्छामि=बुद्धम्, ते=तव, कौतूहलम्=आश्चर्यम्, अस्त्यभिषेकः । श्रूयताम्=अवगम्यताम्, अद्य=अस्मिन्दिने, महाराजेन=दशरथेन, उपाध्यायाः= वशिष्ठादयः, अमात्याः=सुमन्त्रादयः मन्त्रिणः, प्रकृतयः=प्रजामुख्याः पौराश्च, तेषां समक्षं तेषुशृण्वत्सु एकप्रकारसंक्षिप्तम्=एकेन प्रकारेण संक्षिप्तम् मेलितम्, कोसलराज्यम्=उत्तरकोसलराज्यम्, कृत्वा=विधाय, बाल्याभ्यस्तम्=शैशवादेव परिचितम्, अङ्कम्=क्रोडम् आरोप्य=निधाय, मातृगोत्रम्=मातृनाम, स्निग्धम्=

सीता—उस तरह के मान्य व्यक्ति झूठे अफवाह नहीं फैलाते । अथवा राजकुल में अनेक घटनाएँ घटती रहती हैं ।

राम—मैथिली, यह क्या कह रहीं हैं ।

सीता—कुछ नहीं स्वामी, यह लड़की अभिषेक-अभिषेक रट रही हैं ।

राम—अच्छा तो यह रही तुम्हारी उत्सुकता ? हाँ आज सचमुच अभिषेक था । सुनो, पिताजी ने आज एक छोटा सा दरबार लगाया । उस दरबार में सभी सचिव, मान्य गुरुजन, मंत्री, पुरोहित एवं पुरवासी गण सम्मिलित थे । उन्होंने बड़े स्नेह से 'कौशल्यानन्दन' कहकर मुझे बुलाया । अपनी गोद में बैठा लिया—वह गोद जो बचपन से ही मुझे परिचित थी । फिर उन्होंने कहा—बेटा राम, कोसल देश का एकछत्र राज्य ग्रहण करो ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—तदानीमार्यपुत्रेण किं भणितम् ? [तदाणि अय्यउत्तेण किं भणिदं?]

रामः—मैथिलि ! त्वं तावत् किं तर्कयसि ?

सीता—तर्कयाम्यार्यपुत्रेणाभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं निःश्वस्य महाराजस्य पादमूलयोः पतितमिति [तक्केमि अय्यउत्तेण अभणिअ किञ्चि दिग्घं णिस्ससिअ महाराअस्स पादमूलेसु पडिअं त्ति ।]

रामः—सुष्ठु तर्कितम् । अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते । तत्र हि पादयोरस्मि पतितः ।

प्रेम्णा, आभाष्य=उच्चार्य, पुत्र=सुत, राम=कौशल्यानन्दन, प्रतिगृह्यताम्= स्वीक्रियतामिति, राज्यम्=नृपतिपदम्, इत्युक्तः=इति कथितः ।

सीता—तदानीम्=तत्पश्चात् तस्मिन्काले, आर्यपुत्रेण=रामेण, किम्, भणितम्=कथितम् ?

रामः—मैथिलि=सीते, त्वम्=भवती, तावदिति अवधारणे, किं तर्कयसि= किं विचारयसि ?

सीता—तर्कयामि=संभावयामि, आर्यपुत्रेण=स्वामिना, अभणित्वा= किंचित् अकथित्वैव दीर्घं निःश्वस्य, महाराजस्य=दशरथस्य, पादमूलयोः पतितमिति अर्थात् पितृचरणशुश्रूषणनिर्वृत्तेर्विच्छेदहेतौ प्रजारक्षणक्लेशे मा मां नियुक्ष्व इति स्वपितरम्प्रति रामस्य प्रार्थना तद्वचनश्रवणविमनायमानमनसः सूचिता द्रष्टव्येति ।

रामः—सुष्ठु=सम्यक्, तर्कितम्=ऊहितम्, त्वत्तर्काविसंवाद्येव मया इदानी-माचरितमित्यर्थः । सीतायास्तर्कश्चेदृशः स्वसमानशीलत्वकृत इति निश्चयात् । तेनानुमिताम् सीतायाः स्वसमानशीलतां स्तोतुमाह—अल्पम्=अतिन्यूनम्, तुल्यम्= समानम्, शीलम्=स्वभावम् येषां तानि तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि=स्त्रीपुरुषयुगलानि, सृजन्ते=परिमितत्वेन संयोज्यन्ते विधात्रा, न तु बाहुल्येन तद् भाग्येनावयोर्दाम्पत्यं तुल्यशीलं घटितमिति भावः । तत्र=तस्मिन् अवसरे, हीति निश्चयेन पादयोरस्मि पतितः=राज्यप्रतिग्रहात् मोचयितुमित्याशयः । ततः किं घटितमिति—

सीता—इसपर आपने क्या उत्तर क्या दिया ?

राम—सीते, तुम्हीं बतलाओ तो, इस पर मेरा क्या उत्तर होगा ?

सीता—मैं जहाँतक समझती हूँ—आर्यपुत्र बिना कुछ कहे, एक लम्बी साँस लेकर महाराज के चरणों में झुक गये होंगे ।

राम—तुम्हारा अनुमान ठीक है विधाता समान शील वाले जोड़े कम ही बनाते हैं । सचमुच वहाँ मैं तो महाराज के चरणों पर ही जा गिरा ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समं बाष्पेण पतता तस्योपरि ममाप्यधः ।
पितुर्मे क्लेदितौ पादौ ममापि क्लेदितं शिरः ॥ ६ ॥

सीता—ततस्ततः [तदो तदो ।]

रामः—ततोऽप्रतिगृह्यमाणेष्वनुनयेषु आपन्नजरादोषैः स्वैः प्राणैरस्मि शापितः।

अन्वयः—समम् तस्य बाष्पेण ममोपरि पतता, मम अधः पतता, मम शिरः क्लेदितम्, मे पितुः पादौ क्लेदितौ च ॥ ६ ॥

सममिति । समम्=युगपत्, तस्य=पितुः, बाष्पेण=अश्रुजलेन, ममोपरि=रामस्य शिरसि, पतता=प्रवहता अर्थात् महाराजदशरथस्य वात्सल्यजाश्रुणा, मम=रामस्य, अधः=अधोभागे, पतता=प्रवहमानेनाश्रुणा, मम=रामस्य शिरः=मस्तकं, क्लेदितम्=आर्द्रताम् गमितम्, एवञ्च मे=मम, पितुः=जनकस्य पादौ=चरणौ, क्लेदितौ=आर्द्रितौ। अर्थात् पितुर्बाष्पेण मम शिरः क्लेदितम्, मम बाष्पेण पितुः पादौ क्लेदिताविति ॥ ६ ॥

सीता—ततस्ततः = तत्पश्चात्, अव शेषवृत्तान्तश्रवणोत्कण्ठाद्योतनार्था द्विरुक्तिः ।

रामः—ततः=बाष्पाकुलितनयनयोरावयोः, अनुनयेषु=अनुरोधेषु, अप्रतिगृह्यमाणेषु=अनङ्गीक्रियमाणेषु, आसन्नजरादोषैः—आसन्नः=समीपः, जरादोषः=जराख्यो वृद्धत्वरूपो दोषो येषां तैः करणभूतैः, अर्थात् आसादितवार्द्धक्ये, स्वैः=स्वकीयैः, प्राणैरहम् शापितः=उपालब्धः, अस्मि=भवामि ।

उस समय मेरी और पिताजी की आँखें एक साथ भर आईं, उनके आंसू से मेरा शिर और मेरे आंसू से उनके पैर एक साथ भींग गये ॥ ६ ॥

सीता—तब फिर ?

राम—इसके बाद जब मैंने उनके अनुनयों को भी नहीं स्वीकार किया तब उन्होंने अपने जराजीर्ण प्राणों की शपथ दी ।

अलङ्कार—पिता पुत्र के स्वाभाविक स्नेह का वर्णन होने के कारण प्रस्तुत श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार है । स्वभावोक्ति अलंकार में सामान्य चित्र की अपेक्षा किसी के विशिष्ट चित्र के अंकन में चमत्काराधिक्य होता है । इस श्लोक के वर्णन में पांठक को सजीवता का स्पष्ट दर्शन होता है । श्लोक को पढ़ते ही पाठक की मनोवृत्ति वास्तविक आनन्द प्राप्त कर मानसिक तृप्ति का अनुभव कराती है । इसका लक्षण है—

स्वभावोक्तिलंकार इति केचित् प्रचक्षते ।
अर्थस्य तदवस्थत्वं स्वभावोऽभिहितो यथा ॥ काव्यालङ्कार -२।९३

प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है । लक्षण लिखा जा चुका है ॥ ६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

BVB Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya 565

सीता—ततस्ततः । [तदो तदो ।]

रामः—ततस्तदानीं,

शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके
छत्रे स्वयं नृपतिना रुदता गृहीते ।
सम्भ्रान्तया किमपि मन्थरया च कर्णे
राज्ञः शनैरभिहितं च न चास्मि राजा ॥ ७ ॥

सीता—प्रियं मे महाराज एवं महाराजः, आर्यपुत्र एवार्यपुत्र । [पिअं मे महाराओ एव्व महाराओ, अय्यउत्तो एव्व अय्यउत्तो ।]

सीता—ततस्ततः=इति शेषश्रवणत्वरया द्विरुक्तिः ।

रामः—ततः=अनुनयाङ्गीकारानन्तरम्, तदानीम्=अप्रतिपत्तिमूढतादशायामेव आवयोरित्याशयः ।

अन्वयः—शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटे, अभिषेके रुदता नृपतिना स्वयं छत्रे गृहीते, सम्भ्रान्तया मन्थरया राज्ञः कर्णे शनैः किमप्यभिहितञ्च, न च राजा, अस्मि ॥ ७ ॥

शत्रुघ्नेति । शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटे--शत्रुघ्नलक्ष्मणाभ्याम् गृहीतः=करधृतः घटः=तीर्थकलशो यस्य तस्मिन् तथाभूते सति, अभिषेके=राज्याभिषेककार्ये प्रवर्त्तमाने, रुदता=आनन्दाश्रुविमुञ्चता, नृपतिना=नरपतिना, स्वयं=आत्मना, छत्रे=श्वेतातपत्रे, गृहीते=धृते सति, सम्भ्रान्ततया=त्वरया समुपसर्पन्त्या, मन्थरया=तदाख्यया भरतमातुः परिचारिकया, राज्ञः=दशरथस्य, कर्णे=श्रवणे, शनैः=यथाऽन्ये न शृणुयुः तथा, किमपि=किञ्चिदपि, अभिहितम्=कथितम्, न=नहि, च=पुनः, राजा=नृपः, अस्मि=भवामीति ॥ ७ ॥

सीताः—प्रियम्=रुचिकरम्, मे=मम, महाराजः=नृपदशरथः, एव=स एव

सीता—इसके बाद

राम—तब उस समय :—

लक्ष्मण और शत्रुघ्न ने तीर्थघट संभाला, आनन्दाश्रु बहाते हुए महाराज ने अपने हाथों छत्र संभाला। अभिषेककार्य ज्यों ही प्रारम्भ हुआ कि दौड़ती हांफती मंथरा ने आकर महाराज के कानों में कुछ कहा और मैं राजा बनते रुक गया ॥ ७ ॥

वृत्त—प्रस्तुत श्लोक में 'वसन्ततिलक' नामक वृत्त है । इसका लक्षण है—

"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।"

सीता—अच्छा हुआ–महाराज ही महाराज रहे और आर्यपुत्र आर्यपुत्र ही रहे ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—मैथिलि ! किमर्थं विमुक्तालङ्कारासि ?

सीता—न खलु तावदाबध्नामि। [ण खुदाव आवज्झामि ।]

रामः—न खलु । प्रत्यग्रावतारितैर्भूषणैर्भवितव्यम् । तथा हि—

कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ संस्रंसिताभरणगौरतलौ च हस्तौ ।
एतानि चाभरणभारनतानि गात्रे स्थानानि नैव समतामुपयान्ति तावत् ॥८॥

महाराजः=भूपतिः, आर्यपुत्रः,आर्यपुत्र एव ।

रामः—मैथिलि=सीते, किमर्थम्=कस्मै निमित्ताय, विमुक्तालङ्कारा=अवतारिताभरणा असि=भवसि ।

सीता—न=नहि, खलु=निश्चयेन, तावत्=इति अवधारणे, आवध्नामि=न विमुञ्चामि सार्वदिको नायमलङ्कारत्यागो मम, किन्तु कियत्कालव्यापीति तदाशयः ।

रामः—न खलु प्रत्यग्रावतारितैः=अचिरपरित्यक्तैः, भूषणैः=अलङ्कारैः, भवितव्यम्, अर्थात् द्वित्रिक्षणात्पूर्वमेव भूषणानां परित्यागस्त्वया विहितोऽतः किमपि कारणमत्र स्यादिति रामस्याशयः । तथाहि—

अन्वयः— कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ, हस्तौ च संस्रंसिताभरणगौरतलौ, गात्रे आभरणभारनतानि एतानि स्थानानि तावत् समतां नैव उपयान्ति च ॥८॥

कर्णौ त्वरेत्यादिना ! कर्णौ=श्रवणौ, त्वरया=शीघ्रतया, अपहृतानि=अपनीतानि, भूषणानि=आभरणानि, ययोस्तादृशौ । अत एव भुग्नः=वक्रतामापन्नः पाशो ग्रन्थितुल्यो भूषणधारणस्थानं ययोस्तौ तथाभूतौ, च, भवत्याः इति शेषः, भूषणरभसापहरणसंभवं तु कतिपयनिमेषकालावस्थानस्वभावं भूषणस्थानभुग्नत्वमद्याप्यनपेतम् भूषणावतारस्य नवनिर्वृत्तत्वं गमयतीति भावः । च=पुनः हस्तौ=करौ, संस्रंसिताभरणौ=दूरीकृतालङ्करणौ अत एव गौरतलौ=कटकादिभूषण-

---

राम—सीते, आभूषण क्यों उतार डाले ?

सीता—नहीं, पहनती ही नहीं ।

राम—झूठ, अभी ये आभूषण उतरे से लगते हैं । क्योंकि—

शीघ्रता में आभूषण उतारने के कारण कानों के छेद अभी भी कुछ नीचे की ओर झुके हैं । हस्ताभरण उतारने के कारण दवाव पड़ने से हथेलियों का रंग अभी भी पहले की तरह नहीं हुआ है । आभूषण के भार से अवनत शरीरावयव अभी भी स्वाभाविक नहीं हो पाये हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—पारयत्यार्यपुत्रोऽलीकमपि सत्यमिव मन्त्रयितुम् । [पारेदि अय्यउत्तो अलिअं पि सच्चं विअ मन्तेदुं ।]

रामः—तेन हि अलङ्क्रियताम् । अहमादर्शं धारयिष्ये । (तथा कृत्वा निर्वर्ण्य) तिष्ठ ।

आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः ।
हसितेन परिज्ञातं क्रीडेयं नियमस्पृहा ? ॥ ९ ॥

स्रंसनसम्भवं बाहुभागगौरत्वमधुनापि विद्यमानं भूषणापगमस्यानतिचिरनिर्वृत्ततां प्रत्याययति । गात्रे=शरीरे, आभरणभारनतानि भूषणभरणनिम्नीभूतानि स्थानानि, तावत् इत्यवधारणे, समताम् आगन्तुकनतत्वपरिहारेण स्वभावावस्थितिं भूषणावतरणोत्तरकालशीघ्रलभ्यां, नैव उपयान्ति=नैव प्राप्नुवन्ति । अर्थात् भूषणान्यवतारितवत्यास्ते नतभूषणस्थानसमताप्राप्तिपर्याप्तोऽपि कालो नातीत इत्यभिप्रायः । अस्मिन् श्लोके स्वभावोक्त्यलङ्कारः ॥ ८ ॥

सीता—पारयति=शक्नोति, आर्यपुत्रः=श्रीरामः, अलीकमपि=अतात्त्विकमप्यर्थम्, सत्यमिव=तथ्यमिव, मन्त्रयितुम्=वदितुम् । सत्यभूतस्य वस्तुनो यथावत् वर्णनं तु तवातीव सुखेन साध्यमिति सीतायाः आशयः ।

रामः—तेन हि=तर्हि, अलङ्क्रियताम्=भूषणैरात्मेति भावः, अहम्=रामः, आदर्शम्=दर्पणम्, धारयिष्ये=हस्ताभ्यां धृत्वा तवालङ्करणायावतिष्ठे । (तथा कृत्वा दर्पणं धारयित्वा निर्वर्ण्य=सीतायाः प्रतिबिम्ब विलोक्य) तिष्ठ=आदर्शाभिमुखनिश्चलावस्थाना भवेति भावः ।

अन्वयः—आदर्शे, वल्कलानि इव एते सूर्यरश्मयः किम् ? हसितेन परिज्ञातम् इयम् क्रीडा (उत) नियमस्पृहा ॥ ९ ॥

आदर्शे इति । आदर्शे=दर्पणे, वल्कलानि=त्वया धृतानीव प्रतिभासन्त इत्यर्थः । शोभासाम्यात् सन्दोग्धि— एते सूर्यरश्मयः किम्=पुरोवर्त्तिभास्करकिरणानि किम् ? विशेषदर्शनेन निर्णयमधिगम्याह—तव हसितेन=हास्येन, परिज्ञातम्=अवगतम्, सूर्यरश्मितया संदिह्यमानं वस्तु वल्कलत्वेन निश्चितमित्यर्थः ।

सीता—आप असत्य को भी सत्य साबित कर सकते हैं ।

राम—जाने दो पहले गहने तो पहनो, मैं दर्पण दिखाता हूँ (दर्पण हाथ में लेकर) ठहरो ।

दर्पण में यह कुछ वल्कल-सा मालूम पड़ता है ? कहीं से सूर्य की किरणें तो नहीं हैं । अच्छा, तुम्हारी हँसी ने सारा रहस्य बता दिया । ठीक-ठीक कहो, तपस्विजनोचित यह वल्कल क्या तुमने खेल में पहने हैं, अथवा व्रत करने का ही विचार है ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अवदातिके ! किमेतत् ?

अवदातिका—भर्तः ! 'किन्नु खलु शोभते न शोभते' इति कौतूहलेनाबद्धानि। [भट्टा ? किण्णु हु सोहदि ण सोहदि त्ति कोदूहलेण आवज्झा ।]

रामः—मैथिलि ! किमिदम् ? इक्ष्वाकूणां वृद्धालङ्कारस्त्वया धार्यते । अस्त्यस्माकं प्रीतिः । आनय ।

सीता—मा खलु मा खल्वार्यपुत्रोऽमङ्गलं भणतु । [मा खु मा खु अय्यउत्तो अमङ्गलं भणादु ।]

वल्कलनिर्णयेनैव पृच्छति । क्रीडेयं नियमस्पृहेति—इयं प्रत्यक्षदृश्या, तव नियमस्पृहेति—इहोभयत्रेति प्रश्नकाकुः । तेनायमर्थः—इदं नियमिजनोचितवल्कलधारणं किं तव काचित् क्रीडा, उत नियमपरिग्रहेच्छाकृतमेवेत्यर्थः ।। ९ ।।

अनुत्तरयन्त्यां सीतायामवदातिका पृच्छति—अवदातिके, एतत् सीताकृतवल्कलधारणम् किं हेतुकम् इति प्रश्नाशयः ।

अवदातिका—भर्त्तः=स्वामी, किन्नु खलु=किन्निमित्तम् । अत्र अवदातिकावल्कलधारणकारणं निर्दिशति, कौतूहलेन=कौतुकेन, आबद्धानि=धारितानि, यतो हि सीतायाः इयं न नियमस्पृहा, किन्तु, शोभते न वा शोभते इति परीक्षणमात्रप्रयोजनम् वल्कलधारणे इति तदाशयः ।

रामः—मैथिलि=सीते, किमिदम्=त्वया क्रियमाणमयुक्तम्, इक्ष्वाकुणाम्=इक्ष्वाकुर्नाम राजकुलकूटस्थो राजविशेषः तत्संबन्धात् तद्वंश्या अपीक्ष्वाकवः, तेषां वृद्धालङ्कारः वार्द्धकधार्यः वल्कलाख्यः त्वया सीतया, धार्यते=धारणं क्रियते । अस्माकम्=रामस्य, प्रीतिः=तद्धारणे कौतूहलमस्ति, आनय देहि मे वल्कलम् ।

सीता—मा=मैवम्, खलु=निश्चयेन, अर्थात् वल्कलानयनानुरोधो नितरामयुक्तः । अमङ्गलापहतत्वादिति सीतायाः कथनाशयः । तेन हि आर्यपुत्रः=स्वामी अमङ्गलम्=मङ्गलरहितम्, मा=नहिं, भणतु=कथयतु ।

अवदातिके, क्या बात है ?

अवदातिका—स्वामी, यह वल्कल तो मात्र विनोद में—"अच्छा लगता है या नहीं ?" यह देखने भर के लिए पहना गया है ।

राम—मैथिली ! क्या बात है ? इक्ष्वाकुवंशियों की बुढ़ौती का यह अलङ्कार तुम अभी से पहनने लगी हो, लाओ तो जरा मैं भी पहनूँ ।

सीता—नहीं, नहीं,—आर्यपुत्र को ऐसी अमंगलकारी बात मुँह से नहीं निकालनी चाहिए ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—मैथिलि ! किमर्थं वारयसि ?

सीता—उज्झिताभिषेकस्यायंपुत्रस्यामङ्गलमिव मे प्रतिभाति ! [उज्झिदाहिसेअस्स अय्यउत्तस्स अमङ्गलं विअ मे पडिहादि ।]

रामः—मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य परिहासे विशेषतः ।
शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया ॥ १० ॥

रामः—मैथिलि=सीते, किमर्थम्=किं निमित्तकम्, वारयसि=निवारयसि।

सीता—उज्झितराज्याभिषेकस्य=परित्यक्तराज्याभिषेकस्य, आर्यपुत्रस्य=स्वामिनः, अमङ्गलमिव=मङ्गलरहितमिव, प्रतिभाति=दृश्यते। अयमर्थः आरब्धाभिषेकपरित्याग एव तावदेकममङ्गलम् पूर्वमुपनतम्। वनवास्युचितम् वल्कलयाचनमिदम् क्रियमाणं 'वनवासपरिक्लेशोऽपि ते भावी' इति सूचयदिव मे भासमानं द्वितीयममङ्गलम् भवतीति शेषः।

अन्वयः—परिहासे स्वयं मन्युं मा उत्पाद्य, विशेषतः हि यदा मे शरीरार्द्धेन त्वया पूर्वम् आबद्धाः ॥ १० ॥

मा स्वयमिति। परिहासे=उपहासे, अर्थात् त्वद्धृतवल्कलयाचनरूपे मम परिहासवचने, विशेषतः विशेषेण स्वयम्=आत्मना, मन्युम्=क्रोधम्, दुःखम् क्लेशम्, मा=इति निषेधे, उत्पाद्य=विधाय, हि=यतः, यदा मे=मम, शरीरार्द्धेन=मद्देहार्द्धभूतया त्वया=सीतया, पूर्वमाबद्धाः=पूर्वमेव धारिताः अर्थात् वल्कलाः। अर्द्धो वा एष आत्मनो यत् पत्नीति श्रुत्या मद्देहार्द्धभूता त्वम् स्वदेहे वल्कलाबन्धनेन पूर्वमेव मां शरीरार्द्धवल्कलधारणं कारयित्वा किमिति ममानेन वल्कलयाचनवाक्येनेदानीं शोचयसीति अभिप्रायः। 'इह मा उत्पाद्य' इति प्रतिषेधार्थक मा शब्दयोगे क्त्वा प्रत्ययोऽपाणिनीयः इति गणपतिशास्त्रिणः। वल्कलशब्दः पुंस्यपि द्रष्टव्यः। अस्मिन् श्लोके मन्युशब्दस्य दैन्यपरकप्रयोगः।

राम—मैथिली, रोक क्यों रही हो ?

सीता—स्वामी, अभी-अभी तो आपका अभिषेक होते होते रुका है इस पर भी आपका वल्कल धारण करना मुझे अमंगल सा ही तो लग रहा है।

राम—सीते, स्वयं अमङ्गल की आशंका मत करो। खासकर हास परिहास में। मेरी अर्धाङ्गिनी होकर जब तुमने वल्कल पहन लिया तो मुझे भी वल्कल पहने ही समझो ॥१०॥

अलङ्कार—प्रस्तुत श्लोक के पूर्ववाक्यार्थ में उत्तरार्द्ध का हेतुत्वेन कथन होने के कारण काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। लक्षण यथा—**हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगं निगद्यते।** इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(नेपथ्ये)

हा हा महाराजः ।

सीता—आर्यपुत्र किमेतत् ? [अय्यउत्त ! किं एदं ?]

राम:—(आकर्ण्य)

नारीणां पुरुषाणां च निर्मर्यादो यदा ध्वनिः ।
सुव्यक्तं प्रभवामीति मूले दैवेन ताडितम् ॥ ११ ॥

यतो हि—'मन्युर्दैन्येऽध्वरे क्रुधि' इति वैजयन्ती, 'मन्युशोकौ तु शुक् स्त्रियाम् ।' इत्यमरः ॥ १० ॥

(नेपथ्ये=अत्र सीतापरिशङ्कितस्यामङ्गलस्य प्राप्तिं सकार्यंकारणां वक्तुमुपक्रमः । तत्र तावत् दशरथावस्थान्तरप्राप्तिदुःखितेन स्त्रीपुरुषसमूहेन क्रियमाणस्य शोकध्वनेर्नेपथ्ये श्रवणमाह—नेपथ्य इति । श्रूयते इति शेषः ।)

हा हा—इति द्विरुक्ताभ्याम् शब्दाभ्याम् पीडातिशयो द्योतते । हा हेति खेदे । हा महाराज=खेदविषयो दशरथः, शोच्यां दशाम् अनुप्रपन्न इति ।

सीता—आर्यपुत्र=स्वामी, किमेतत्=इदं किमस्ति, असामयिकं महाराजशोकसूचकम् समापतितम् ।

रामः—(आकर्ण्य=श्रुत्वा) ।

अन्वयः—नारीणाम् पुरुषाणाम् च यदा निर्मर्यादः ध्वनिः प्रभवामि इति दैवेन मूले ताडितम् इति सुव्यक्तम् ।

नारीणामिति—नारीणाम्=वनितानाम्, पुरुषाणाम्=नराणाम्, च=पुनः, यदा=यतः, निर्मर्यादः—उच्चत्वसीमातीतः, ध्वनिः=करुणशब्दः तदा प्रभवामि सर्वत्र मेऽप्रतिहतम् सामर्थ्यम् कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुं वा सर्वथा मे शक्तिः क्रमते इति मनसि कृत्वा, इति=इत्थम् दैवेन=विधात्रा, मूले=प्रधानस्थाने महाराजरूपे, ताडितम्=प्रहृतम्, न तु शाखायां स्कन्धे वा कृतः प्रहार इति सुव्यक्तम्=सुस्पष्टम् । सर्वत्राहं शक्तोस्मीति अहङ्कारवतेत्यर्थः । एवञ्च दैवाहोपुरुषिकातिरेकेण नात्र किञ्चित् कारणं तर्कयितुम् शक्यमित्यभिप्रायः ॥ ११ ॥

(नेपथ्य में)

हाय ! हाय ! महाराज !

सीता—आर्यपुत्र, यह कैसा हाय हाय ?

राम—(सुनकर) नर-नारियों का सम्मिलित आर्तस्वर सुनाई पड़ रहा है । इससे प्रतीत होता है कि विधाता ने यह सिद्ध करने के लिए कि—मैं सर्वशक्तिमान् हूँ—मूल पर ही आघात किया है ॥ ११ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तूर्णं ज्ञायतां शब्दः ।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—परित्रायतां परित्रायतां कुमारः ।

रामः—आर्य ! कः परित्रातव्यः ?

काञ्चुकीयः—महाराजः ।

रामः—महाराज इति । आर्य ! ननु वक्तव्यम् एकशरीरसंक्षिप्ता पृथिवी रक्षितव्येति । अथ कुत उत्पन्नोऽयं दोषः ।

काञ्चुकीयः—स्वजनात् ।

काञ्चुकीयः—परित्रायताम्=रक्षताम्, परित्रायताम्=रक्षताम्, अत्र ससंभ्रमकृतद्विवचनम् । कुमारः = श्रीरामचन्द्रः । कञ्चुकी महाराजदशरथस्य चिन्त्यदशां विलोक्य रामाय तन्निवेदितुमुपसर्पति ।

रामः—आर्य=पूज्य, कः=पुरुषविशेषः, परित्रातव्यः=रक्षणीयः ।

काञ्चुकीयः—महाराजः=महाराजो दशरथः ।

रामः—महाराज इति=महाराजः परित्रातव्यः, इति ब्रूते चेत् तर्हीति शेषः । आर्य=पूज्य, ननु=नन्विति शब्देन महाराजस्य विपद्ग्रस्तततानुमीयते, तथा हि सकलाया धरण्या रक्षणाय क्षममाणस्य महाराजस्य विपद्ग्रस्तता । तत्प्रतिपालितायाः पृथिव्याः अपि विपदुपनिपातकृताव्यवस्थायाः सत्त्वे तत्पालनायापि प्रयत्नः करणीय इति समस्याशयः । वक्तव्यम्=कथितव्यम्, एकशरीरसंक्षिप्ता=एकस्मिन् शरीरे महाराजरूपे संक्षिप्ता तत्पाल्यतया तदन्तर्भूतत्वेन स्थिता, पृथिवी=भूमिः, रक्षितव्या=रक्षणीया । अर्थात् महाराजो रक्षणीय इति वदता भवता विशेषस्थितिं ज्ञातुम् पुनः पृच्छ्यते—अथ कुतः=कस्माद्धेतोः, उत्पन्नः=संजातः, अयं दोषः=आपत्तिरूपः ।

काञ्चुकीयः—स्वजनात्=आत्मीयजनात् ।

इस कोलाहल का शीघ्र पता करो ।

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—कुमार रक्षा करें, रक्षा करें ।

राम—किसको रक्षा ?

कञ्चुकी—महाराज की ।

राम—महाराज की ? तब यही न कहिए कि एक शरीर में संक्षेप में वर्त्तमान समूची पृथ्वी का पालन करना है । अच्छा, यह विपत्ति कहाँ से फट पड़ी ?

कञ्चुकी—आत्मीयजन से ही ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—स्वजनादिति । हन्त ! नास्ति प्रतिकारः ।

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा ।
कस्य स्वजनशब्दो मे लज्जामुत्पादयिष्यति ? ॥ १२ ॥

काञ्चुकीयः—तत्रभवत्याः कैकेय्याः ।

रामः—किमम्बायाः ? तेन हि उदर्केण गुणेनात्र भवितव्यम् ।

रामः—स्वजनात्=परिजनात्-आत्मीयजनाचरिते दोषे कोऽपि प्रतिकारो नास्ति, अतो हन्त, इति खेदे । यतो हि–परजनो यदि किञ्चिदनिष्टं कुर्यात्तर्हि तस्य निग्रहः कर्त्तुं शक्यते वारणेन मारणेनाऽपि, स्वजनस्य तु वधः सर्वथाऽसंभवः, वारणं च दुष्करम् । अप्रतिविधेयाऽऽपत् समुपस्थिता इति महान् खेदावसरः ।

अन्वयः—अरिः शरीरे प्रहरति तथा स्वजनः हृदये । कस्य स्वजनशब्दः मे लज्जाम् उत्पादयिष्यति ॥ १२ ॥

शरीरे इति । अरिः=शत्रुः, शरीरे=देहे, प्रहरति=ताडयति, तथा=तेन प्रकारेण, स्वजनः=परिजनः, हृदये=मनसि, प्रहरति । शरीरप्रहाराच्च हृदयप्रहारो दुस्सहतर इति तमसहमानस्य महाराजदशरथस्य विपत्प्राप्तिरतीव सम्भाविनीति भावः । स्वजनं नामतो ज्ञातुं पृच्छति—कस्य स्वजनशब्दः, स्वजन-शब्दवाच्येषु बहुषु जनेषु मध्ये कतमं मत्पितृशोकोत्पादकं विषयीकुर्वन् 'स्वजन' इत्ययं शब्दः, मे=मम, लज्जाम्=संकोचम्, उत्पादयिष्यति=उत्पन्नं करिष्यतीति भावः ॥ १२ ॥

काञ्चुकीयः—कञ्चुकी रामं सूचयति, तत्रभवत्याः कैकेय्याः=स एष स्वजनः पूज्या कैकेयी एव नाम्ना इत्यर्थः ।

रामः—किम्=कथम्, अम्बायाः=जननीं विषयीकुर्वन् स्वजन शब्द इत्यर्थः । तेन हि=तर्हि, उदर्केण=उत्तरफलेन, गुणेन=गुणयुक्तेन, अत्र=अस्मिन् विषये भवितव्यम् ।

राम—क्या आत्मीयजन से ? तब तो इसका प्रतीकार भी नहीं किया जा सकता ।

शत्रु केवल शरीर पर ही आघात करता है, किन्तु अपने लोग तो मर्मस्थान पर ही चोट करते हैं । पता नहीं इस विपत्ति में कौन स्वजन निमित्त बने हैं ? जिनकी याद मेरे लिए लज्जास्पद होगी ॥ १२ ॥

प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षालंकार एवं अनुष्टुप् छन्द है ।

काञ्चुकी—पूजनीय कैकेयी से यह विपत्ति आई है ।

राम—क्या कहा ? माता कैकेयी से, तब तो निश्चय ही इसका परिणाम सुखद होगा ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

काञ्चुकीयः—**कथमिव ?**

रामः—**श्रूयताम्,**

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति॥ १३॥

काञ्चुकीयः—**कुमार ! अलमुपहतासु स्त्रीबुद्धिषु स्वमार्जवमुपनिक्षेप्तुम्। तस्या एव खलु वचनाद् भवदभिषेको निवृत्तः।**

काञ्चुकीयः—कथमिव=अम्बोत्पादितस्य दोषस्यायतौ गुणे पर्यवसानं कथमिति पृच्छति—कथमिवेति।

रामः—श्रूयताम्=आकर्ण्यताम्।

अन्वयः—यस्याः शक्रसमः भर्त्ता। या च मया पुत्रवती। तस्याः कस्मिन् फले स्पृहा ? येन अकार्यम् करिष्यति॥ १३॥

यस्या इति। यस्याः=कैकेय्याः, शक्रसमः=इन्द्रवत्, भर्त्ता=भरणकर्त्ता पतिः, अर्थात् शक्रतुल्यपरमैश्वर्ययोगात् मानुषासाध्यमप्यर्थम् साधयितुम् शक्यमिति। न केवलमेतावदेव किन्तु सा सुपुत्राऽपि, तदाह—या=कैकेयी, च=पुनः मया पुत्रवती=यस्याहं पुत्रोऽस्मि। अत्र–'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इति वार्त्तिकेनाभेदे तृतीया, धान्येन धनवानित्यत्र यथा। तस्याः इन्द्रसमस्वामिना सनाथायाः मया च पुत्रवत्याः—अर्थात् सा यत्किञ्चिदपि कामयेत, तत्सर्वमहं तदाज्ञया साधयितुम् सदा सन्नद्ध एवास्मि, तर्हि तथाभूतायास्तस्याः=अम्बायाः कस्मिन् फले=कस्मिन्साध्ये, स्पृहा=इच्छा, येन=लब्धुमिष्यमाणेन फलेन हेतुभूतेन, अकार्यम्=भर्तृव्यसनरूपम्, करिष्यति=विधास्यतीति। अत्रायं भावः—स्वभर्तृपुत्राभ्यामसाध्यं स्वयमकार्यारम्भेण साध्यं नाम न किमपि प्रयोजनम् तस्याः संभावयितुम् शक्यं यस्मात् तस्मात्, यद्वा तद्वा तया क्रियमाणं सत्कर्मैव किमपि शुभोदकं भवितुमर्हति, नत्वकार्यमिति। पितृव्यसनं विलोक्यापि कैकेय्यामविचलां श्रद्धां प्रकटयन् रामो धीरोदात्तताम् स्वस्य व्यनक्ति।

काञ्चुकीयः—कुमार=राम, अलम्=प्रतिषेधार्थकमव्ययपदम्, उपहतासु=

कञ्चुकी—सो कैसे ?

राम—सुनिए—

जिसका पति इन्द्र के समान पराक्रमी हो, मेरे जैसा बेटा हो, भला उसे किस वस्तु की अभिलाषा हो सकती है ? जिसके लिए वह कोई अपकर्म करेगी॥ १३॥

कञ्चुकी—कुमार, स्वभाव से बुराई की ओर जानेवाली नारीबुद्धि पर अपने सीधेपन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—आर्य ! गुणाः खल्वत्र ।

काञ्चुकीयः—कथमिव ?

रामः—श्रूयताम्,

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव ताव-
न्मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव ।
नवनृपतिविमर्शो नास्ति शङ्का प्रजाना-
मथ च न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे ॥ १४ ॥

नष्टासु स्वभावकुटिलासु, स्त्रीबुद्धिषु=नारीजनमतिषु, स्वबुद्धिगतम् आर्जवम्=ऋजुत्वम्, उपनिक्षेप्तुम्=आरोपयितुम् । अर्थात् तवमतिरतिसरला तथा नारीमतिरपि मा मंस्था इत्याशयः । कैकेयीबुद्धेः=कुटिलत्वं निर्धारयितुमाह—तस्या एवेति । तवाभिषेकप्रतिरोधे सैव कारणम्, तद्वचनेनैवाभिषेकः प्रतिरुद्धः ।

रामः—आर्य=मान्य ! गुणाः=लाभाः, कथमिव गुणाः इति कञ्चुकी सर्वथाऽजानानः तत्र गुणान् पृच्छति, स हि न वेत्ति यत् कथं शुभकर्मणि राज्याभिषेके विघ्नोत्पादने गुणः खलु स्यात् ।

काञ्चुकीयः—कथमिव=केन प्रकारेण पृष्टस्तमाह—

रामः—श्रूयताम्=आकर्ण्यताम्—

अन्वयः—तावत् पार्थिवस्यैव वनगमननिवृत्तिः । मम पितृपरवत्ता स एव बालभावः । नवनृपतिविमर्शो प्रजानां शङ्का नास्ति । अथ च मे भ्रातरः परिभोगैः वञ्चिताः न ।। १४ ।।

वनगमनेति । तावत्=आदौ, पार्थिवस्यैव=महाराजस्यैव, वनगमननिवृत्तिः=अरण्यगमनाद्विरामः, मम=रामस्य, पितृपरवत्ता=जनकपराधीनता, पितृपारतन्त्र्यलक्षणमस्वास्थ्यम् सर्वथाभिलषितमिति स एव=चिरानुवृत्तः, बालभावः शिशुभाव इति चेति द्वितीयतृतीयौ द्वौ गुणौ । नवनृपतिविमर्शे=नवीनस्य राज्ञः विचारे,

---

का आरोप न करें । उन्हीं के रोकने पर आपका अभिषेक होते होते रुका है ।

राम—मान्यवर, निश्चय ही इसमें बहुत सारी भलाइयाँ निहित हैं ।

कञ्चुकी—सो कैसे ?

राम—सुनिये—

प्रथम लाभ तो यह हुआ कि महाराज का वन जाना रुक गया, मैं पिताजी की छत्रछाया में सुरक्षित रह गया । नया राजा कैसा होगा ? इस आशंका से प्रजा का पिण्ड छूटा और मेरे भाई भी राज्य सुखोपभोग से वंचित नहीं हुए ॥ १४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

काञ्चुकीयः—अथ च तयाऽनाहूतोपसृतया भरतोऽभिषिच्यतां राज्य इत्युक्तम् । अत्राप्यलोभः ?

रामः—आर्य ! भवान् खल्वस्मत्पक्षपातादेव नार्थमवेक्षते । कुतः,

प्रजानाम् = जनानाम्, शङ्का = विचिकित्सा, नास्ति इति चतुर्थो गुणः, अथ च = किञ्च, मे = मम, भ्रातरः भरतादयः, परिभोगैः = राजसुखादिभोगैः न वञ्चिता इति पञ्चमो गुणः ।

अयमाशयः—राज्याभिषेके प्रतिवध्यमाने आपाततोऽध्यवसितविघातलक्षणो दोषोऽवसीयते । परं यद्यहं राजा न क्रियेय, महाराज एव यथापूर्वं राज्यधुराम् दधीत, अस्यां अवस्थायाम् पञ्च गुणाः–राजा वनगमनक्लेशान्निवारितो भवतीत्येकः, मम पितृपादकल्पतरुच्छायावाससुखसौलभ्यमिति द्वितीयः, राज्यभारानधिगत्वा यथा सुखस्थितिस्वास्थ्यावाप्तिश्च ममेति तृतीयः, प्रजानां नवनिर्वाचितोऽयं राजाऽसाधु साधु वा स्वं कर्त्तव्यं पालयेदिति कातरभावेन चिन्तनान्मुक्तिरिति चतुर्थः, पितृपादेषु शासनाधिकृतेषु तत्पुत्रतया समेपि राजकुमाराः असाधारणसुखभाजः । भ्रातरि मयि तथाभूतं तु स्वभागमात्राधिकारशालिनः ते स्युरिति पञ्चमो गुणः । तदेवं मध्यमाम्बाऽध्यवसायो गुणगुम्फित इति । गणपतिशास्त्रिणस्तु चरमचरणस्य 'भ्रातरो भरतादय' वरिभागैर्महाराजभावमात्रलभ्यैर्भोग्यानुभवैः वंचिता अकृतसंविभागा न भवन्तीति । मे=मया तृतीयार्थेऽव्ययमिदमित्यर्थमाहुरिति' मिश्रोपाह्व आचार्य रामचन्द्रः । भ्रातृराज्यापहारिणामिति लोभे हेतुरिति काव्यलिङ्गम्—'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम्' इति लक्षणम् । अनुष्टुप् छन्दः ।

काञ्चुकीयः—अथ = अनन्तरम्, च = पुनः, न सा त्वदभिषेकनिवर्त्तनमात्रेण विश्रान्ता, किन्तु अन्यमपि राज्यलुब्धोक्तवतीत्याह—किञ्च, अनाहूतोपसृतया = अनाकारितयैव राज्ञोऽन्तिकमागतया, उक्तम् । किमिति, भरतो राज्ये अभिषिच्यताम् इति, अत्राऽपि = अस्मिन् विषयेऽपि अलोभः = लोभराहित्यमिति, प्रश्नकाकुः ? यथा त्वदभिषेकनिवर्त्तने तस्या दोषाभावस्त्वया समर्थितः, तथा स्वपुत्रराज्याभिषेकवरणेऽपि तस्या लोभदोषाभावः किं समर्थयितुमिष्यत इति गणपतिशास्त्रिणः ।

रामः—आर्य = मान्य, भवान् = त्वम्, खलु = निश्चयेन, अस्मत् पक्षपातात् =

कन्चुकी—और तब बिना बुलाये ही महाराज के पास जाकर 'भरत को राजतिलक हो' ऐसा कहा, क्या इसमें भी उनका लोभ नहीं है ?

राम—आर्य, मेरी ओर अधिक स्नेह होने के कारण ही आप वास्तविकता की ओर नहीं देख पाते हैं । क्योंकि—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थे यदि याच्यते ।
तस्या लोभोऽत्र नास्माकं भ्रातृराज्यापहारिणाम् ॥ १५ ॥

काञ्चुकीयः—अथ ।

रामः—अतः परं न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि । महाराजस्य वृत्तान्तस्तावदभिधीयताम्,

काञ्चुकीयः—ततस्तदानीम्,

अस्मासु स्नेहात्, अर्थम्=वस्तुतत्त्वम्, नावेक्षते=न गणयसि। अत्र हेतुमाकाङ्क्षते कुतः—

अन्वयः—शुल्के पुत्रार्थे विपणितम् राज्यं यदि याच्यते अत्र तस्याः लोभः ? भ्रातृराज्यापहारिणाम्, अस्माकं न ? ॥ १५ ॥

शुल्के इति। शुल्के,=विवाहकाले कन्यादेयत्वेन, पुत्रार्थे=कन्याजनिष्यमाण-पुत्रनिमित्ते, विपणितम्=विशेषेणसंभावितम्, राज्यम्=साम्राज्यम् यदि=चेत्, याच्यते=प्रार्थ्यते, तर्हि तस्याः=मध्यमाम्बायाः अत्र=अस्मिन् विषये कः लोभः, न किमपीति भावः। भ्रातृराज्यापहारिणाम् भ्रातुः=भरतस्य, राज्यम्, पित्रा पणीकृत्य दातुम् प्रतिज्ञातम्, ततश्चैव स्वभूतम् हर्त्तुं स्वायत्तीकर्त्तुम् शीलं येषां तेषां परराज्यगृध्नूनाम्, नः=अस्माकम्, लोभो न समर्थ्यते प्रतिपाद्यत इति, आर्यस्य पक्षपातमेवास्मासु विजृम्भमाणमुत्प्रेक्षामहे कारणमित्याशयः ॥ १५ ॥

काञ्चुकीयः—अथ=अर्थात् कैकेय्याः एव दोषान्तरं वक्तुमाचष्टे ।

रामः—दोषान्तराभिधानाय कञ्चुकिनो निवारयन् ब्रवीति–अतः परम्=इतो यावन्मया यथाकथञ्चित् मातुर्दोषाः भवदुक्ताः श्रुताः इतः परं न श्रोतुमिच्छामि । परिवादम्=निन्दाम्। महाराजस्य वृत्तान्तः=दशाम् । एव तावदित्यवधारणे, अभिधीयताम्=कथ्यताम् ।

काञ्चुकीयः—ततः=तदनन्तरम्, तदानीम्=तस्मिन् काले ।

विवाह शुल्क में पुत्र के लिए प्रतिज्ञात राज्य अगर वह मांग ही रही है तो इसमें उनका लोभ क्या है ? और भाई के राज्य को हरण करने वाले मेरे जैसे लोग क्या लोभ रहित हैं ? ॥ १५ ॥

कञ्चुकी—और तब······

राम—इसके आगे मैं अपनी मां की निन्दा सुनना नहीं चाहता । महाराज की बात ही कहें ।

कञ्चुकी—तब उसी समय—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शोकादवचनाद् राज्ञा हस्तेनैव विसर्जितः ।
किमप्यभिमतं मन्ये मोहं च नृपतिर्गतः ॥ १६ ॥

रामः—कथं मोहमुपगतः ?

(नेपथ्ये)

कथं कथं मोहमुपगत इति ?
यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया,

रामः—(आकर्ण्य पुरतो विलोक्य)

अन्वयः—राज्ञा शोकात् अवचनात् हस्तेन एव विसर्जितः । नृपतिः किमपि अभिमतम् मोहम् च गतः मन्ये ।। १६ ।।

शोकादिति । राज्ञा=दशरथेन, शोकात्=दुःखात्, अवचनात्=किमपि, अनुक्त्वैव (ल्यब्लोपे पंचमी) हस्तेन=करेणैव, विसर्जितः=गन्तुमाज्ञप्तः । नृपतिः =राजा दशरथस्तु, किमपि=किञ्चिदपि, अभिमतम्=अमोहदशाया अपेक्षया किञ्चिदिष्टत्वेन मन्यमानः, मोहम्=सर्वेन्द्रियसंज्ञालोपम्, च=पुनः, गतः=प्राप्तः, इति मन्ये=अनुमीयते ।

रामः—कथम्=केन कारणेन, मोहम्=विसंज्ञं उपगतः=प्राप्तः ।

(नेपथ्ये=सज्जागृहे)

कथमित्यादिवाक्यसूचितमहाराजशोकप्राप्त्यनुशोचनमसहमानस्य लक्ष्मणस्य प्रवेक्ष्यतो नेपथ्योक्तिः कथमिति । अत्र केवलं पृच्छसि यन्मोहमुपगतो राजा केन कारणेन, न तु तत्प्रतीकारे प्रवर्तसे । यदि=चेत्, न=नहि, सहसे=शक्ष्यसि, राज्ञः=नृपस्य, मोहम्=विसंज्ञम्, तर्हि धनुः स्पृश=धनुर्गृहीत्वा सन्नद्धो भव, मा दया=मोहहेतुभूते जने दया न विधेया ।

रामः—(आकर्ण्य=श्रुत्वा, पुरतः=अग्रे विलोक्य=दृष्ट्वा)

शोक के कारण महाराज मौन हो गये और हाथ के इशारे से ही मुझे कैकेयी के विचार से आपको अवगत कराने के लिए भेजा और स्वयं मूछित हो गये । इस दुःख से मुक्ति पाने के लिए संभवतः उन्होंने मूर्च्छित होना ही ठीक समझा ॥ १६ ॥

राम—क्या मूछित हो गये ?

(नेपथ्य में)

यह क्यों—क्यों मूर्च्छित हो गये ?
यदि राजा की मूर्छा असह्य है तो धनुष उठाइए—यह दया का समय नहीं है ।

राम—(सुनकर और सामने देखकर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अक्षोभ्यः क्षोभितः केन लक्ष्मणो धैर्यसागरः ।
येन रुष्टेन पश्यामि शताकीर्णमिवाग्रतः ॥ १७ ॥

(ततः प्रविशति धनुर्बाणपाणिर्लक्ष्मणः)

लक्ष्मणः—(सक्रोधम्) कथं कथं मोहमुपगत इति ।

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया
स्वजननिभृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते ।
अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो
युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम् ॥ १८ ॥

अन्वयः—अक्षोभ्यः धैर्यसागरः लक्ष्मणः केन क्षोभितः । रुष्टेन येन अग्रतः शताकीर्णमिव पश्यामि ॥ १७ ॥

अक्षोभ्य इति । अक्षोभ्यः=अकोप्यः, धैर्यसागरः=गाम्भीर्यपयोनिधि, लक्ष्मणः=सुमित्रानन्दनः, केन=पुरुषविशेषेण, क्षोभितः=क्षोभम् उत्पादितः, रुष्टेन=क्रुद्धेन, येन=रामानुजेन, अग्रतः=पुरतः, शताकीर्णमिव=जनशतसान्द्रमिव पश्यामि=अवलोकयामि ॥ १७ ॥

(तत=तत्पश्चात्, प्रविशति=प्रवेशं करोति, धनुर्बाणपाणिः=धनुर्बाणौ पाणौ यस्यासौ लक्ष्मणः)

लक्ष्मणः—(**सक्रोधः=सकोपः**) कथं कथं=केन प्रकारेण, मोहम्=मूर्च्छाम् उपगतः=प्राप्तः, इति=केवलं पृच्छसि यन्मोहमुपगतो राजा केन कारणेन, न तु तत्प्रतीकारे प्रवर्तसे । प्रतीकारप्रकारश्चापराधिजनस्य दण्डनमेव न तु विषाद-कारणमित्याशयः ।

अन्वयः—यदि राज्ञः मोहं न सहसे, धनुः स्पृश, दया मा । स्वजननिभृतः मृदुः सर्वः एवं परिभूयते । अथ न रुचितं, त्वं मां मुञ्च । अहं लोकं युवतिरहितं कर्तुं कृतनिश्चयः । यतः वयं छलिताः ॥ १८ ॥

यदीति । यदि=चेत्, राज्ञः=पितुः, मोहम्=विसंज्ञभावम्, न=नहि

समुद्र की तरह गंभोर इस लक्ष्मण को किसने उभाड़ दिया ? इस अकेले लक्ष्मण के क्रोधित होने से मेरे सामने जनसमूह क्षुब्ध दीख रहा है ।

(धनुर्बाण हाथ में लिये लक्ष्मण का प्रवेश)

लक्ष्मण--(क्रोध से) क्यों ? अचेत कैसे हो गये ?

यदि महाराज की दयनीय दशा सह्य न हो तो धनुष उठाइए, यह दया दिखाने का अवसर नहीं है । स्वजन के लिए क्षमाशील आप की तरह मृदुल लोगों का तिरस्कार इसी तरह होता है । यदि मेरी बात आपको पसन्द नहीं हो तो आप मुझे तो मुक्त कर दें । मैंने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—आर्यपुत्र ! रोदितव्ये काले सौमित्रिणा धनुर्गृहीतम् । अपूर्वः खल्वस्यायासः । [अय्यउत्त ! रोदिदव्वे काले सोमित्तिणा धणू गहीदं । अपूव्वो क्खु से आआसो ।]

रामः—सुमित्रामातः ! किमिदम् ?

सहसे = मर्षयसि तर्हि धनुः = चापम्, स्पृश = मोहभूते जने व्यापारय । दया = कृपा, मा = न कार्या, स्वजननिभृतः = स्वजने क्षमाशीलः सर्वोऽपि = भवादृशः, मृदुः = शान्तः, क्षमावान्, एवं अधिकारप्राप्तराज्यभ्रंशादिना, परिभूयते = तिरस्क्रियते । अथ = अथवा न रुचितम् = स्वजनविषये स्वयं धनुर्व्यापारणं ते न रोचते चेत्, तर्हि त्वम् मां = लक्ष्मणम् मुञ्च = स्वजनविषये धनुः स्पृशन्तमनुजानीहि । किमर्थमनुज्ञां वाञ्छसीत्याह—अहम्लक्ष्मणः, लोकम् = संसारम्, युवतिरहितम् = युवतिजात्या हीनम्, कर्त्तुम् = विधातुम्, कृतनिश्चयः = कृतसंकल्पोऽस्मि । कुत एतावान् युवतिजातौ प्रद्वेषस्तत्राह—यतः = यस्मात् कारणात्, वयं छलिताः = निजहावभावादिभिर्भर्तृवशीकरण(द्वारा वञ्चिताः राज्यात् भ्रंशिताः अर्थात् युवतिभूतया कैकेय्या । तस्मात् युवतिजातिरेवास्मास्वपराधिनीति कृत्वा मम तद्विध्वंसनाध्यवसायो जात इत्यभिप्रायः । यत् इति सर्वनाम्ना युवति-पदार्थस्य समासार्थान्तरगतस्य प्रत्यवमर्शो यत्पदाक्षिप्ततत्पदसम्बद्धो दुर्घट इति गणपतिशास्त्रिणः । अस्मिन् श्लोके रौद्रो रसः, कैकेयी आलम्बनम्, रामस्यामर्षशून्यता उद्दीपनम्, भुजपरिस्फुरणादयोऽनुभावः, व्यङ्ग्यगर्वादयो व्यभिचारिणः, क्रोधश्च स्थायीभावः । प्रथमपदार्थे द्वितीयपदार्थस्य हेतुत्वात् काव्यलिङ्गमलङ्कारः । हरिणी छन्दः ।। १८ ।।

सीता—आर्यपुत्र, रोदितव्ये = रोदनायोपस्थिते, काले = समये, सौमित्रिणा = लक्ष्मणेन, धनुः गृहीतम् = शोककाले कोपाविष्करणम् अयुक्तमित्यर्थः । अस्य = लक्ष्मणस्य, आयासः = खेदः, अपूर्वः = अदृष्टपूर्वः ।

रामः—सुमित्रामातः = सुमित्रा माता यस्य तस्य संबुद्धिः । सुमित्रामातः = हे लक्ष्मण, किमिदम् = कोपमकारणं संरभ इत्यर्थः ।

इस धरती को युवतीशून्य करने का निश्चय कर लिया है, क्योंकि एक युवती के कारण हमारी स्थिति आज दयनीय है ।। १८ ।।

सीता—आर्यपुत्र, रोने के समय कुमार लक्ष्मण ने धनुष उठाया है । इनका इतना क्रोध तो कभी देखा गया नहीं ।

राम—लक्ष्मण यह क्या ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लक्ष्मणः—कथं कथं किमिदम् ?

क्रमप्राप्ते हृते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे।
इदानीमपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता ? ॥ १९ ॥

रामः—सुमित्रामातः ! अस्मद्राज्यभ्रंशो भवत उद्योगं जनयति। आः, अपण्डितः खलु भवान्।

भरतो वा भवेद् राजा वयं वा ननु तत् समम्।
यदि तेऽस्ति धनुःश्लाघा स राजा परिपाल्यताम् ॥ २० ॥

लक्ष्मणः—किमिदमिति वचनमसहमान आह—कथं कथमिति। अत्र कथं शब्दस्य द्विरुक्तिः कोपातिशयं द्योतयति।

अन्वयः—क्रमप्राप्ते राज्ये हृते, नृपे भुवि शोच्यासने इदानीमपि संदेहः, किं क्षमा निर्मनस्विता ॥ ११ ॥

क्रमप्राप्ते इति। क्रमप्राप्ते=क्रमेण पितुरनन्तरं ज्येष्ठपुत्रेण राज्यं प्राप्तव्यमिति न्यायोचितेन क्रमेण प्राप्ते=अधिगते, राज्ये=साम्राज्ये, हृते,=अपहृते नृपे=राजनि, भुवि=भूतले, शोच्यासने=शोच्यमासनं यस्य तस्मिन् तथाभूते सति, इदानीमपि=अस्यामपि महापकारप्राप्तिदशायां, सन्देहः=प्रतिक्रियां प्रति अनध्यवसायः तव 'किमिति' वचनेन प्रकाशितः। ननु सन्देहस्तु नास्ति मे, किन्तु क्षमेऽहम्। न तु प्रतिचिकीर्षामीत्यत आह—क्षमा नाम निर्मनस्विता अर्थात् आत्माभिमानशून्यता। अत्र समुच्चयालङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ १९ ॥

रामः—सुमित्रामातः=हे लक्ष्मण, अस्मद् राज्यभ्रंशः, भवतः=त्वाम्; उद्योगम्=परिश्रमम्, जनयति=प्रेरयति। आः=इति खेदे, अपण्डितः=विवेक विधुरः, मयि राज्यासनात् पतिते त्वं युद्धाय सन्नद्ध इति तवाविवेक इत्यर्थः।

अन्वयः—भरतो वा राजा भवेत् वयं वा (भवेम) ननु तत् समम्। यदि ते धनुःश्लाघा अस्ति स राजा परिपाल्यताम् ॥ २० ॥

भरतो वेति। भरतः=कैकेयीसुतः, वा=अथवा, राजा=नृपः भवेत्, वयम्,

लक्ष्मण—क्यों ? क्या ? अब भी आप पूछ रहे हैं कि यह क्या ?

परम्परागत बड़े बेटे का राज्य छिन गया, पिता की दशा शोचनीय है, वे शोक से आकुल धरती पर लोट रहे हैं, क्यों अब भी आपको सन्देह है ? क्षमा का अर्थ आत्माभिमान शून्यता तो नहीं है। १९ ॥

राम—सुमित्रानन्दन, हमारी राज्यच्युति तुम्हें इतना उत्तेजित कर रही है। पर, यह उचित नहीं, तुम तो विवेकशून्य ही हो गये हो। सोचो तो—

राज्य भरत को मिले या राम को तुम्हारे लिए तो दोनों ही बातें समान हैं। यदि तुम्हें अपने धनुष पर अभिमान है तो जाओ, उस राजा भरत की रक्षा करो ॥ २० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लक्ष्मणः—न शक्नोमि रोषं धारयितुम् । भवतु भवतु । गच्छामस्तावत् । (प्रस्थितः)

रामः—त्रैलोक्यं दग्धुकामेव ललाटपुटसंस्थिता ।
भ्रुकुटिर्लक्ष्मणस्यैषा नियतीव व्यवस्थिता ॥ २१ ॥

सुमित्रामातः ! इतस्तावत् ।

लक्ष्मणः—आर्य ? अयमस्मि ।

रामो वा भवेम, विपरिणामेन योज्यम्, तद्=अन्यतराभिषेचनम्, ननु समम्=त्वद् विषये तुल्यमेव, यदि ते=तव, धनुःश्लाघा=धानुष्कत्वाहङ्कारः, अस्ति=भवति, स राजा नवीनो राजा स भरतः, परिपाल्यताम्=सहायीभूय रक्ष्यताम् ॥ २० ॥

लक्ष्मणः—न=नहि, शक्नोमि=क्षमे, रोषम्,=कोपम्, धारयितुम्=नियन्तुम् । भवतु, भवतु, भवदुक्तं समुचितमनुचितं यथा तथा भवतु । गच्छामस्तावत् वयमिति शेषः । (**प्रस्थितः=गतः**)

अन्वयः—त्रैलोक्यं दग्धुकामेव ललाटपुटसंस्थिता एषा लक्ष्मणस्य भृकुटिः नियतीव व्यवस्थिता ॥ २१ ॥

त्रैलोक्यमिति । त्रयो लोकाः एव त्रैलोक्यम् 'चातुर्वर्ण्यादित्वात् ष्यञ्', तत् भुवनत्रयम्, दग्धुकामेव=दग्धुम् काम इच्छा यस्याः सैव दिधक्षन्तीवेत्यर्थः । ललाटपुटसंस्थिता ललाटपुटे=भाले, संस्थिता कोपातिरेकेण ललाटपर्यन्तमुपगता एषा=प्रत्यक्षदृश्या, लक्ष्मणस्य = सुमित्रानन्दस्य, भृकुटिः=भ्रूवक्रता, नियतीव विधिरिव, व्यवस्थिता=स्थिरनिश्चया । नियतिशब्दस्य क्तिजन्तत्वात् 'कृदिकारादक्तिनः' इति ङीप् । ललाटपुटसंस्थितेति विशेषणं नियत्यामपि योज्यम् । त्रैलोक्यं दग्धुकामेति रोषस्य प्रलयकालानलत्वं गम्यते, तेन च रोषस्यातितीव्रता दुःसंहरता च प्रतीयते । अस्मिन् श्लोके उपमालङ्कारः ॥ २१ ॥

सुमित्रामातः=हे लक्ष्मण, इतस्तावत्=इत इव आगम्यताम् ।

लक्ष्मणः—आर्य=मान्य, अयमस्मि=अत्रैवाऽस्मि ।

लक्ष्मण—मैं अपने क्रोध को रोक नहीं सकता । आपको यही सब ठीक लगता है तो मैं चलता हूँ ।

(प्रस्थान)

राम—तीनों लोक को जलाकर भस्म कर डालने के लिए तत्पर लक्ष्मण की वक्र भ्रूरेखा विधि की इच्छा की तरह अटल-सी लग रही है ॥ २१ ॥

लक्ष्मण जरा इधर तो आना ।

लक्ष्मण—यह आ गया आर्य !

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—भवतः स्थैर्यमुत्पादयता मयैवमभिहितम् ।

ताते धनुर्नमयि सत्यमवेक्षमाणे
मुञ्चानि मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम् ।
दोषेषु बाह्यमनुजं भरतं हनानि
किं रोषणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु ॥ २२ ॥

लक्ष्मणः—(सबाष्पम्) हा धिक् ! अस्मान् अविज्ञायोपालभसे ।

रामः—भवतः=तव, स्थैर्यम्=स्थिरता शान्तिरित्यर्थः उत्पादयता=जनयता, मया=रामेण, एवम्=अनेन प्रकारेण, अभिहितम्=कथितम् । इदानीं शान्तचित्तेन भवता मत्प्रश्नोत्तरमभिधीयतामिति ।

अन्वयः—सत्यम् अवेक्षमाणे ताते धनुः नमयि स्वधनम् हरन्त्याम् मातरि शरं मुञ्चानि दोषेषु बाह्यम् अनुजम् भरतम् हनानि त्रिषु पातकेषु रोषणाय किं रुचिरम् ।

तात इति । सत्यम्=स्वप्रतिश्रुतभरताभिषेकान्यथाभावम्, अवेक्ष्यमाणे-प्रतीक्षमाणे, ताते=दशरथे, धनुः=चापः, नमयि=नमयानि, एवं स्थिते स्वधनम्=स्वभर्तृप्रतिश्रुतम् राज्यम् हरन्त्याम् =आददानायाम्, मातरि=कैकेय्याम्, शरम्=वाणम् मुञ्चानि=इह किं मुञ्चेयमित्यर्थः, दोषेषु=मद्राज्यप्राप्तिप्रतिबन्धकादिषु, बाह्यं=निर्दोषम्, अनुजम् =भरतम् हनानि किं हन्याम्, त्रिषु=त्रिसंख्यकेषु, पातकेषु=पितृमातृभ्रातृवधलक्षणेषु महापापेषु मध्ये, रोषणाय=कोपनाय तुभ्यं, किं =कतमम् पातकम्, रुचिरम्=रुचिप्रदम् । अस्मिन् श्लोके साभिप्रायत्वात्परिकरालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २२ ॥

लक्ष्मणः—(सबाष्पम्=साश्रुनयनम्) हा धिक्=हा कष्टम्, अस्मानविज्ञाय=ममाभिप्रायं सम्यगज्ञात्वा उपालभसे=अधिक्षिपसि ।

राम—तुम्हें शान्त करने के लिए ही वैसा हमने कहा है । अब तुम्हो बतलाओ ।

सत्यका पालन करने वाले पूज्य पिता पर धनुष उठाया जाय या विवाहशुल्क के रूप में राज्य लेनेवाली माता का वध किया जाय अथवा निर्दोष भाई भरत को मारा जाय ? बोलो–इन तीनों पापों में कौन-सा पाप किया जाय, जिससे तुम्हारा क्रोध शान्त हो ॥२२॥

लक्ष्मण—(रोकर) हाय ! आपने तो बिना जाने हो मुझे उलहना देना शुरू कर दिया ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे न मनोरथः ।
वर्षाणि किल वस्तव्यं चतुर्दश वने त्वया ॥ २३ ॥

रामः—अत्र मोहमुपगतस्तत्रभवान् ? हन्त ! निवेदितमप्रभुत्वम् । मैथिलि !
मङ्गलार्थेऽनया दत्तान् वल्कलांस्तावदानय ।
करोम्यन्यैर्नृपैर्धर्मं नैवाप्तं नोपपादितम् ॥ २४ ॥

अन्वयः—यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे मनोरथः न । चतुर्दशवर्षाणि त्वया वने वस्तव्यम् किल ॥ २३ ॥

यत्कृत इति । यत्कृते=येन कारणेन कृते, महति=दुरन्ते क्लेशे=दुःखे राज्ये=राजपदे मे=मम मनोरथः=अभिलाषः न=नहि । चतुर्दशवर्षाणि= चतुर्दशवर्षपर्यन्तम् त्वया=रामेण वने=अरण्ये वस्तव्यम्=स्थातव्यं किल । भरताभिषेकमात्रेण सा न तृप्ता, किन्तु तव वनवासोऽपि तया वृत्त इति मर्मवेधी, येनाहं वक्तुं बाधित इति भावः ।

रामः—अत्र=अस्मिन्नर्थे तत्रभवान्=पूज्यस्तातः, हन्त=इति खेदे, मोहम्= संज्ञाहीनत्वम्, उपगतः=प्राप्तः निवेदितम्=प्रकटितम् अप्रभुत्वम्=अधीरत्वम् । अत्र राज्ञोऽधीरतायां रामस्य खेदः । मैथिलि=सीते !

अन्वयः—अनया दत्तान् वल्कलान् तावत् मङ्गलार्थे आनय । अन्यैः नृपैः नैवाप्तं नोपपादितम् धर्मम् करोमि ॥ २४ ॥

मङ्गलार्थं इति । अनया=अवदातिकया, दत्तान्=प्रदत्तान्, वल्कलान्= तरुत्वक्कल्पितानि वसनानि, मङ्गलार्थे=मङ्गलकर्मानुष्ठानार्थम्, आनय तावत्= मह्यमर्पय । अन्यैः=पूर्वजैः नृपैः=राजभिः, नैवाप्तम्=न लब्धम्, नोपपादितम्= अननुष्ठितञ्च, एवम्भूतम् धर्मं करोमि=तपश्चरामि । काममस्मत् पूर्वपुरुषैः आरण्यकव्रतं वार्धकेऽनुष्ठितं, न तु बाल्ये इति । तदनुष्ठानावसरं बाल्य एव लभमानोहं धन्यतरोऽस्मि । व्यतिरेकालंकारो व्यङ्ग्योऽत्र । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २४ ॥

मुझे दुःखदायी राज्य की अभिलाषा नहीं है । मुझे तो दुःख केवल १४ वर्ष तक आपके वनवास का है ॥ २३ ॥

राम—क्या इसी बात पर महाराज मूर्छित हो गये ? अफसोस, उन्होंने अपनी अधीरता व्यक्त की है । जानकि !

इसने जो वल्कल दिये हैं, उसका उपयोग इस मंगलकार्य के लिए मुझे करने दो । मैं इसी अवस्था में वह धर्मानुष्ठान करूँगा, जिसका अवसर आजतक हमारे पूर्वजों को भी नहीं मिला है ॥ २४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—गृह्णात्वार्यपुत्रः [गुह्लदु अय्यउत्तो ।]
रामः—मैथिलि ! किं व्यवसितम् ?
सीता—ननु सहधर्मचारिणी खल्वहम् । [णं सहधम्मआरिणी क्खु अहं ।]
रामः—मयैकाकिना किल गन्तव्यम् ।
सीता—अतो न खल्वनुगच्छामि ? [अदो णु क्खु अनुगच्छामि ।]
रामः—वने खलु वस्तव्यम् ।
सीता—तत् खलु मे प्रासादः [तं क्खु मे पासादो ।]
रामः—श्वश्रूश्वशुरशुश्रूषापि च ते निर्वर्तयितव्या ?

सीता—गृह्णातु=ग्रहणम् करोतु, आर्यपुत्रः=स्वामीति भावः ।

रामः—मैथिलि=सीते, किं व्यवसितम्=इष्टम् । मयि वनाय चलिते त्वया किं चिकीर्षितमिति भावः ।

सीता—नन्विति समारंभे, सहधर्मचारिणी=सहधर्मानुष्ठानशीला, खलु=निश्चयेन, अहम्=सीतेति भावः ।

रामः—मया=रामेण, एकाकिना=एकेनैव अद्वितीयेन गन्तव्यम्, न त्वत्सहितेनेत्यतस्त्वमत्रैव तिष्ठेति भावः ।

सीता—अतः=अस्मात् कारणात्, नु खलु=निश्चयेन, अनुगच्छामि=व्रजामि । परिचर्यार्थं मयावश्यमनुगन्तव्यमिति ।

रामः—वने=अरण्ये, खलु=निश्चयेन, वस्तव्यम्=रामस्तु तां भाययति वनवासेनेति भावः ।

सीता—तत्खलु=पूर्वोक्तम् वनं तु, मे=मम कृते, प्रासादः=राजगृहम् । भवता रामेणोक्तं वनवासं सीता सहवासे प्रासादं मन्यते ।

रामः—श्वशुरशुश्रूषापि=श्वश्रूश्वशुरसेवा वध्वाः प्रधानं कर्त्तव्यम् । अतः तदनुष्ठानार्थं भवती गृह एव तिष्ठतु । ते=तव, निर्वर्तयितव्या=अनुष्ठेया ।

सीता—आर्यपुत्र, ग्रहण करें ।
राम—मैथिलि, तुम्हारी क्या राय है ?
सीता—मैं तो आपकी सहधर्मिणी हूँ ।
राम—पर, वनवास तो मुझे अकेले ही मिला है ।
सीता—इसी लिए तो मुझे आपके साथ चलना है ।
राम—पर, यह न भूल जाओ 'वनवास' है ।
सीता—वह तो मेरे लिए राजमहल है ।
राम—सास ससुर की सेवा करना भी तुम्हारा कर्त्तव्य है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—एनामुद्दिश्य देवतानां प्रणामः क्रियते। [णं उद्दिसअ देवदानं पणामो करीअदि ।]

राम:—लक्ष्मण ! वार्यतामियम् ।

लक्ष्मणः—आर्य ! नोत्सहे श्लाघनीये काले वारयितुमत्रभवतीम् । कुतः—

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च ।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥ २५ ॥

सीता—एनाम् = गुरुशुश्रूषाम्, उद्दिश्य = अभिलक्ष्य देवतानाम् = वनदेवताः प्रणम्य चेतः सान्त्वयिष्यामि ।

रामः—लक्ष्मण = सुमित्रानन्दन, वार्यताम् = वारणं क्रियताम्, इयम् = जानकी ।

लक्ष्मणः—आर्य = मान्य, नोत्सहे = नाहं शक्नोमि श्लाघनीये = प्रशंसनीये, काले = समये, वारयितुम् = वारणं कर्त्तुम्, अत्रभवतीम् = मान्यां जानकीम् । कुतः = कस्माद्धेतोः—

अन्वयः—राहुदोषेऽपि तारा शशाङ्कम् अनुचरति । वनवृक्षे पतति च लता च भूमिम् याति । करेणुः पङ्कलग्नम् गजेन्द्रम् न त्यजति । व्रजतु धर्मं चरतु, नार्यो भर्तृनाथाः ।

अनुचरतीति । राहुदोषेऽपि = राहुग्रसनदशायामपि, शशाङ्कम् = चन्द्रम्, तारा = चन्द्रभार्या, अनुचरति = अनुगच्छत्येव । वनवृक्षे = अरण्यद्रुमे, पतति सति च पुनः लता = वल्लरी, भूमिम् = धरणीम्, याति = पतति । करेणुः = हस्तिनी, पङ्कलग्नम् = कर्दमे मग्नम्, गजेन्द्रम् = हस्तिनम्, न = नहि त्यजति = जहाति । व्रजतु = गच्छतु, धर्मम् चरतु = पत्यनुगमनं करोतु । नार्यः = स्त्रियः, भर्तृनाथाः = स्वामिपरतन्त्रा भवन्तीति भावः । दृष्टान्तार्थान्तरन्यासावलङ्कारौ ॥ २५ ॥

सीता—इसके लिए देवताओं को सिर झुका कर प्रणाम करती हूँ ।

राम—इसे रोको लक्ष्मण ।

लक्ष्मण—इस शुभ अवसर पर इन्हें रोकने का साहस नहीं होता आर्य । क्योंकि—

राहु से ग्रसित होने पर भी रोहिणी चन्द्रमा का साथ देती है। वृक्ष के धराशायी होने पर लताएँ उससे लिपटी ही रहती हैं। गजराज के कीचड़ में फंस जाने पर हथिनियाँ उसका साथ नहीं छोड़तीं। अतः इन्हें भी वन जाने दें, धर्म निभाने दें। स्त्रियों के लिए पति ही सर्वस्व है ॥ २५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(प्रविश्य)

चेटी—जयतु भट्टिनी। नेपथ्यपालिन्यार्या रेवा प्रणम्य विज्ञापयति—अवदातिकया सङ्गीतशालाया आच्छिद्य वल्कला आनीताः। इमेऽपरा अननुभूता वल्कलाः। निर्वर्त्यतां तावत् किल प्रयोजनमिति। [जेदु भट्टिणी। णेवच्छपालिणी अय्यरेवा पणमिअ विण्णवेदि—ओदादिआए सङ्गीदसालादो आच्छिन्दिअ वक्कला आणीदा। इमा अवरा अणणुहूदा वक्कला। णिब्बत्तीअदु दाव किल पओअणं त्ति।]

रामः—भद्रे ! आनय, सन्तुष्टैषा। वयमर्थिनः।

चेटी—गृह्णातु भर्ता [गह्णादु भट्टा।] (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता)

(रामो गृहीत्वा परिधत्ते)

लक्ष्मणः—प्रसीदत्वार्यः।

(प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा)

चेटी—जयतु=सर्वतोभावेन वर्त्तताम्, भट्टिनी=स्वामिनी। नेपथ्यपालिनी=नेपथ्यपालिका आर्या=मान्या रेवा, प्रणम्य=प्रणामं कृत्वा, विज्ञापयति=सूचयति, अवदातिकया संगीतशालायाः आच्छिद्य=बलादाहृत्य, वल्कलाः आनीताः, इमे=पुरो दृश्यमानाः, अपरा=अन्याः अननुभूताः–नवा वल्कलाः। प्रयोजनं निर्वर्त्यताम् =स्वकार्यं सम्पाद्यताम्।

रामः—भद्रे=कल्याणि, आनय=देहि, एषा=सीता, संतुष्टा=पूर्वानीत-वल्कलेनैव परितृप्ता। वयमर्थिनः—वयम् वल्कलैच्छवः। अतो देहि मे।

चेटी—गृह्णातु=ग्रहणम् करोतु, भर्त्ता=स्वामीति। (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता=दत्वा परावर्त्तिता)

(रामः=कुमारः, गृहीत्वा=नीत्वा, परिधत्ते=धारणङ्करोति)

लक्ष्मणः—प्रसीदत्वार्यः=प्रसन्नो भवतु श्रीमान्। अनेन लक्ष्मणः स्वाभिप्रायं व्यञ्जयति।

(प्रवेश करके)

चेटी—जय हो महारानी की, नेपथ्यपालिका आर्या रेवा प्रणामपूर्वक निवेदन करती हैं कि—अवदातिका संगीतशाला से वल्कल चुरा लाई है। ये नये वल्कल हैं। इनका उपयोग कीजिए।

राम—भद्रे ! मुझे दो। उनकी आवश्यकता पूरी हो चुकी है। मुझे जरूरत है।

चेटी—लीजिए महाराज (वल्कल देकर प्रस्थान)

(राम पहन लेते हैं)

लक्ष्मण—आर्य,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्योगाद् भूषणान्माल्यात् सर्वेभ्योऽर्धं प्रदाय मे ।
चिरमेकाकिना बद्धं चीरे खल्वसि मत्सरी ॥ २६ ॥

रामः—मैथिलि ! वार्यतामयम् ।

सीता—सौमित्रे ! निवर्त्यतां किल । [सोमित्रे ! णिवत्तीअदु किल ।]

लक्ष्मण—आर्ये !

गुरोर्मे पादशुश्रूषां त्वमेका कर्तुमिच्छसि ? ।
तवैव दक्षिणः पादो मम सव्यो भविष्यति ॥ २७ ॥

अन्वयः—निर्योगात् भूषणात् माल्यात् सर्वेभ्यः मे अर्द्धम् प्रदाय एकाकिना चीरम् बद्धम् चीरे खलु मत्सरी असि ॥ २६ ॥

निर्योगादिति । निर्योगात् = वस्त्रादेः, भूषणात् = अलंकारात्, माल्यात् = पुष्पादिस्रजः, सर्वेभ्यः = सकलेभ्यः, मे = मम लक्ष्मणम्, अर्द्धम् = समांशम्, प्रदाय = दत्त्वा, एकाकिना = अद्वितीयेन, चीरम् = वल्कलम्, बद्धम् = परिहितम् । चीरे = वल्कले, खलु = निश्चयेन, मत्सरी = स्वार्थी, असि = भवसि । वल्कलविषये कथं स्वार्थः संजात इति भावः । पर्यायोक्त्यलंकारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २६ ॥

रामः—मैथिलि = सीते, वार्यताम् = निवारणं क्रियताम् । अयम् = लक्ष्मणः ।

सीता—सौमित्रे = लक्ष्मण, निवर्त्यताम् = विरम्यताम्, किल = निश्चयेन ।

लक्ष्मणः—आर्ये = मान्ये ।

अन्वयः—त्वम् एका मे गुरोः पादशुश्रूषां कर्त्तुम् इच्छसि । दक्षिणः पादः तव एव, मम सव्यः भविष्यति ॥ २७ ॥

गुरोर्मे इति । त्वम् = सीता, एका = केवला, मे = मम, गुरोः = रामस्य, शुश्रूषां = सेवां, कर्त्तुम् = विधातुम्, इच्छसि = वाञ्छसि । दक्षिणः = सव्येतरः, पादः = चरणम्, तवैव = भवदीयैव । मम तु = लक्ष्मणस्य, सव्यः = वामः पादः, भविष्यति = मिलिष्यति । पर्यायोक्त्यलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २७ ॥

आजतक तो आप वस्त्राभूषण, माल्य प्रभृति सारी उपभोग्य वस्तुओं में मुझे आधा हिस्सा देते आये हैं, फिर भला इस वल्कल में इतना लोभ क्यों ? इसे क्यों अकेले पहन-रहे हैं ॥ २६ ॥

राम—मैथिलि ! इसे रोको न ।

सीता—लक्ष्मण ! रहने दो ।

लक्ष्मण—क्यों आर्ये,

मेरे पूज्य राम की चरणसेवा आप अकेली ही करना चाहती हैं । अच्छा तो दायें पैर की सेवा आप करें और बायें पैर की ही सेवा मैं करूँगा ॥ २७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—दीयतां खल्वार्यपुत्रः। संतप्यते सौमित्रिः। [दीअदु क्खु अय्यउत्तो। सन्तप्पदि सौमित्ती।]

रामः—सौमित्रे ! श्रूयताम्। वल्कलानि नाम—

तपःसङ्ग्रामकवचं नियमद्विरदाङ्कुशः।
खलीनमिन्द्रियाश्वानां गृह्यतां धर्मसारथिः॥ २८॥

लक्ष्मणः—अनुगृहीतोऽस्मि। (गृहीत्वा परिधत्ते)

रामः—श्रुतवृत्तान्तैः पौरैः सन्निरुद्धो राजमार्गः। उत्सार्यतामुत्सार्यतां तावत्।

सीता—दयताम्=कृपां कुरु, खलु=निश्चयेन, आर्यपुत्रः=स्वामी। संतप्यते=व्यथते, सौमित्रिः=लक्ष्मणः।

रामः—सौमित्रे=हे लक्ष्मण, श्रूयताम्=आकर्ण्यताम्। वल्कलानि नाम=वल्कलानां महिमा। वल्कलानि नामेति श्लोकान्वयि।

अन्वयः—तपःसंग्रामकवचम् नियमद्विरदाङ्कुशः इन्द्रियाश्वानां खलीनं धर्मसारथिः गृह्यताम्॥ २८॥

तपः सङ्ग्रामेति। तपः संग्रामकवचम्=तपोरूपे संग्रामे युद्धे धर्त्तव्यम् कवचम्=वर्म, नियमद्विरदाङ्कुशः=नियमो व्रतमेव द्विरदो गजस्तस्य अङ्कुशः वशीकरणसाधनम्। इन्द्रियाणि अश्वाः इव तेषां खलीनम् नियन्त्रणप्रग्रहः, धर्मसारथिः धर्मस्य=रथस्य, सारथिः=चारकः, गृह्यताम्=स्वीक्रियताम्। विधेयप्राधान्यविवक्षया तदनुरोधादेकवचनमिह कृतमिति। "अत्र तपसः संग्रामत्वाभिधानेन युद्धवन्निरन्तरसावधानताऽपेक्षितेति नियमानां द्विरदत्वरूपेण तेषां नितान्तस्वाच्छन्द्यकृता दुरुपास्यतेति। इन्द्रियाणामश्वत्वाभिधानेन नितान्तचञ्चलता, वल्कलानां तत्खलीनत्वोक्त्या च तन्नियमनसमर्थतेति धर्मस्य रथत्वोक्त्या परलोकप्रापकतेति श्रीरामचन्द्रमिश्राः।"

लक्ष्मणः—अनुगृहीतोऽस्मि=अहमनुगृहीतः अस्मि, अत्रतः पञ्च संवादाः।

(गृहीत्वा=ग्रहणं कृत्वा, परिधत्ते=धारणं करोति)

रामः—श्रुतवृत्तान्तैः=श्रुतः वृत्तान्तः=अस्मद्वनगमनरूपा वार्ता यैस्तैः

सीता—आर्यपुत्र, कृपा करें, लक्ष्मण को कष्ट होता है।

राम—लक्ष्मण ! लो, ये वल्कल—

तपस्यारूप संग्राम में कवच हैं, संयमरूपी हाथी के वशीकरण में अङ्कुश इन्द्रियरूपी अश्वों के निग्रह में लगाम का काम करते हैं, यही सोचकर इन्हें ग्रहण करो॥ २८॥

लक्ष्मण—मैं अनुगृहीत हुआ। (लेकर पहनते हैं)

राम—यह खबर सुनते ही नगरवासियों से राजमार्ग बिल्कुल अवरुद्ध हो गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लक्ष्मणः—आर्य ! अहमग्रतो यास्यामि । उत्सार्यतामुत्सार्यताम् ।
रामः—मैथिलि ! अपनीयतामवगुण्ठनम् ।
सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति (अपनयति) [जं अय्यउत्तो आणवेति ।]
रामः—भोः भोः पौराः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः—

स्वैरं हि पश्यन्तु कलत्रमेतद् वाष्पाकुलाक्षैर्वदनैर्भवन्तः ।
निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च ॥ २९ ॥

पौरैः = नगरनिवासिभिः, सन्निरुद्धः=परिपूर्णः, राजमार्गः = लोकपथः । उत्सार्यताम् = जनसंमर्द इति शेषः ।

लक्ष्मणः—आर्य = मान्य, अहम् = लक्ष्मणः, अग्रतः = पुरतः, यास्यामि= गमिष्यामि । उत्सार्यताम् = मार्गं देहि ।

रामः—मैथिलि = सीते, अपनीयताम्=उत्सार्यताम्, अवगुण्ठनम्=परदर्शन-परिहारार्थम् शिरोमुखाच्छादकवस्त्रम् ।

सीता—यत्, आर्यपुत्रः = स्वामी, आज्ञापयति=आदिशति । (अपनयति= उत्सार्यते) ।

रामः—भोः भोः पौराः = सीतादर्शनकाङ्क्षिणो नगरनिवासिनः, शृण्वन्तु= शृणुध्वम्, भवन्तः = नागरिकाः—

अन्वयः—वाष्पाकुलाक्षैः वदनैः भवन्तः एतत् कलत्रं स्वैरं हि पश्यन्तु । नार्यः यज्ञे विवाहे व्यसने वने च निर्दोषदृश्याः हि भवन्ति ॥ २९ ॥

स्वैरं हीति । वाष्पाकुलाक्षैः = अश्रुपरिप्लुतनयनैः, वदनैः = मुखैः, भवन्तः= नगरनिवासिनः, एतत् = पुरतो वर्त्तमानम्, कलत्रं = पत्नीम्, स्वैरम्=यथेच्छम् हि=यतः, पश्यन्तु = अवलोकयन्तु । नार्यः=स्त्रियः, यज्ञे = यज्ञकर्मणि, विवाहे= पाणिग्रहणविधौ, व्यसने = आपत्तिकाले, वने = अरण्ये, च=पुनः, निर्दोषदृश्याः= निर्दोषम्=दोषरहितम् यथास्यात्तथा दृश्याः = दर्शनीयाः, हि = इति निश्चये, भवन्ति । अत्र अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । उपजातिच्छन्दः ॥ २९ ॥

इन्हें किसी तरह हटाया जाय ।

लक्ष्मण—आर्य, मैं आगे चलता हूँ । हट जाइए, हट जाइए ।

राम—सीते, घूंघट हटा लो ।

सीता—जैसी आज्ञा (घूंघट हटा लेती है)

राम—हे पुरवासियो, आप लोग सुनें—

आप लोग आंसू भरी आंखों से सीता को निःशंक भाव से देखें । क्योंकि यज्ञ, विवाह, आपत्ति तथा संकट के अवसर पर तथा वन में स्त्रियों को देखना निर्दोष है ॥ २९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—कुमार ! न खलु न खलु गन्तव्यम् । एष हि महाराजः,

श्रुत्वा ते वनगमनं वधूसहायं
सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम् ।
उत्थाय क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः
कान्तारद्विरद इवोपयाति जीर्णः ॥ ३० ॥

लक्ष्मणः—आर्य !

चीरमात्रोत्तरीयाणां किं दृश्यं वनवासिनाम् ?

(प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा)

काञ्चुकीयः—कुमार=हे राम, न खलु=नैव, न खलु=नैव, गन्तव्यम्=गमनीयम् । एषः=पुरो दृश्यमानः, महाराजः=दशरथः ।

अन्वयः—वधूसहायम् सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम् ते वनगमनम् श्रुत्वा जीर्णः क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः कान्तारद्विरद इव उपयाति ॥ ३० ॥

श्रुत्वा त इति । वधूसहायम्=वधूः=सीता, सहाया=द्वितीया यस्मिन् वनगमने तत् तथाभूतम्, सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम्=सौभ्रात्रेण भ्रातृस्नेहमहिम्ना, व्यवसिता=संकल्पिता, लक्ष्मणानुयात्रा = लक्ष्मणानुगमनम्, यत्र कर्मणि तथाभूतम्, ते=तव रामस्य, वनगमनम्=वनाय प्रस्थानम्, श्रुत्वा=निशम्य, जीर्णः=जरसा ग्रस्तः, क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः=क्षितितलरेणुभिः=धरातलधूलिभिः, रूषिताङ्गः=धूसरशरीरः, कान्तारद्विरद इव=वन्यकरीव, राजा उपयाति=इत आगच्छति । परिकरालङ्कारः । प्रहर्षिणी छन्दः ॥ ३० ॥

लक्ष्मणः—आर्य=मान्य,

अन्वयः—चीरमात्रोत्तरीयाणाम् वनवासिनाम् किम् दृश्यम् ।

चीरमात्रेति । चीरमात्रम्=वल्कलमात्रम्, उत्तरीयम्=दुकूलादिकम् येषां

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—कुमार, मत जाइए, मत जाइए । यह देखिए महाराज—

सीता सहित आपका वनगमन तथा लक्ष्मण का भ्रातृप्रेम के कारण अनुगमन सुनकर महाराज दशरथ वृद्ध गजराज की तरह, शोक से धरती पर लोटने के कारण धूलधूसरित शरीर वाले काँपती चाल से इधर ही आ रहे हैं ॥ ३० ॥

लक्ष्मण—आर्य, वल्कलधारी हम वनवासियों को देखकर अब वे क्या करेंगे ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—

गतेष्वस्मासु राजा नः शिरःस्थानानि पश्यतु ॥ ३१ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

प्रथमोऽङ्कः ।

तथाभूतानामस्माकम्, वनवासिनाम् = अरण्यप्रस्थानोन्मुखानाम्, किं दृश्यम् = न किमपीति ।

रामः—रामोऽपि तदनुमोदयन्नाह—

अन्वयः—राजा अस्मासु गतेषु नः शिरःस्थानानि पश्यतु ॥ ३१ ॥

गतेष्विति । राजा = दशरथः, अस्मासु गतेषु = अप्रतीक्ष्यैव राजानं वनं प्रस्थितेषु, नः = अस्माकम्, शिरःस्थानानि = प्रधानवासस्थानानि पश्यतु = विलोकयतु ॥ ३१ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति प्रथमोऽङ्कः

राम–हमारे चले जानेपर महाराज हमारे प्रधान निवास स्थानों को देखा करेंगे ॥३१॥

(सबका प्रस्थान)

प्रथम अङ्क समाप्त ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—भोः भोः प्रतिहारव्यापृताः ! स्वेषु स्वेषु स्थानेष्वप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः ।

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—आर्य ! किमेतत् ? [अय्य । किं एदं ?]

काञ्चुकीयः—एष हि महाराजः सत्यवचनरक्षणपरो राममरण्यं गच्छन्तमुपावर्त्तयितुमशक्तः पुत्रविरहशोकाग्निना दग्धहृदय उन्मत्त इव बहु प्रलपन् समुद्रगृहके शयानः—

अथ वनगतपुत्रशोकावस्था राज्ञः दशरथस्यास्मिन् अङ्के प्रपञ्च्यते । तत्रादौ विष्कम्भके काञ्चुकीयस्य दशरथस्यावस्थानिवेदकस्य प्रवेशमाह—

(ततः=तदनन्तरं, प्रविशति=प्रवेशं करोति, काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—भोः भोः=इति संबोधने, प्रतीहारे=द्वारे, व्यापृताः=अधिकृताः, स्वेषु=आत्मीयेषु, वीप्सायां द्विर्वचनम्, अप्रमत्ताः=अवहिताः, भवन्तु=जायन्ताम् भवन्तः इति ।

(प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा)

प्रतिहारी—आर्य=मान्य, किमेतत्=सावधानोपदेशने किं प्रयोजनमिति प्रश्नाशयः ।

काञ्चुकीयः—कञ्चुकी तत्र राज्ञः दशरथस्य दुरवस्थाकारणं कथयति—एष हीत्यादि । महाराजः=नृपः, सत्यवचनरक्षणपरः=सत्यवचनस्य रक्षणे परः=तत्परः, अर्थात् सत्यवाक्पालनतत्परः, रामम् दशरथसुतम्, अरण्यम्=वनम्, गच्छन्तम्=चलन्तम्, उपावर्त्तयितुम्=वनगमनान्निवर्त्तयितुम्, अशक्तः=असमर्थः, पुत्रविरह-

---

(कंचुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—ऐ द्वारपालों, तुम सभी अपनी-अपनी जगह सावधान हो जाओ ।

(प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—आर्य, यह आदेश किस लिए ?

कञ्चुकी—क्या कहा जाय, सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञापालक महाराज रामको वन जाने से रोक नहीं सके । अब पुत्रविरह की अग्नि में उनका हृदय जल रहा है । वे पागलों की तरह प्रलाप कर रहे हैं । इस समय समुद्रगृह में लेटे हुए—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेरुश्चलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे शोषं व्रजन्निव महोदधिरप्रमेयः ।
सूर्यः पतन्निव च मण्डलमात्रलक्ष्यः शोकाद् भृशं शिथिलदेहमतिर्नरेन्द्रः ॥१॥

प्रतीहारी—हा हा एवंगतो महाराजः ? [हा हा एव्वंगओ महाराओ ?]

शोकाग्निना=पुत्रस्य=सुतस्य, विरहः=वियोगः, तस्य शोकः क्लेशः, स एवाग्निः, वह्निस्तेन=सुतवियोगजन्यखेदवह्निना, अत्र वह्नित्वमत्यन्तसंतापकत्वेनोपचरितम् । दग्धहृदयः—दग्धम् ज्वलितम् हृदयम्=चित्तम् यस्यासौ, उन्मत्त इव=विक्षिप्त इव, बहु प्रलपन्=निरर्थकम् भाषणम् कुर्वन्, समुद्रगृहके=समुद्रकृतकस्य समीपवर्तिनि गृहे । स च कृत्रिमवनवद् भोगार्थः । शयानः अर्थात् समुद्रगृहे महाराजो वर्त्तते इति अग्रिमेण पद्येनान्वयः ।

अन्वयः—युगक्षयसन्निकर्षे चलन् मेरुः इव शोषम् व्रजन्, अप्रेमयः महोदधिः इव पतन्, मण्डलमात्रलक्ष्यः सूर्य इव नरेन्द्रः, शोकात् भृशं शिथिलदेहमतिः (वर्त्तते) ॥ १ ॥

मेरुरिति । युगक्षयसन्निकर्षे=युगस्य क्षयो युगान्तस्तस्य सामीप्योपसृतौ—अर्थात् युगान्तप्रत्यासत्तौ, चलन्=गच्छन्, मेरुः=तन्नामा स्वर्णगिरिः इव=यथा, शोषम्=शुष्कताम्, व्रजन्=प्राप्नुवन्, अप्रमेयः = परिच्छेत्तुमशक्योऽतिमहत्त्वात्, महोदधिः=महांश्चासौ उदधिरिति महोदधिः महासागरः स इव=यथा, पतन्=तेजोविहीनः सन् अस्तमुपगच्छन्, मण्डलमात्रलक्ष्यः=उपसंहृतरश्मितया केवलमण्डलमात्रमेव लक्ष्यः, अर्थात् प्रशान्तप्रताप इत्यर्थः, सूर्यः=रविः, इव=यथा, नरेन्द्रः=भूपेन्द्रः=दशरथः, शोकात्=पुत्रविरहजन्यक्लेशात्, भृशम्=अत्यर्थम्, शिथिलदेहमतिः=अवसन्नकायबुद्धिरस्तीति भावः । अत्र त्रिभिरप्युपमानभूतैर्मेरुमहोदधिभास्करैः राज्ञो मरणस्यासन्नत्वमुक्तम् । उपमानत्रयस्योत्प्रेक्षणेऽत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः । अपरोऽपि दशरथस्यैकस्योपमेयस्योपमानत्रयस्योल्लेखान्मालोपमालङ्कारश्चेति । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १ ॥

प्रतिहारी—हा हा=इति खेदे, एवं गतः=इमामवस्थां प्रतिपन्नः महाराजः=दशरथः ।

युगान्त समीप आने पर डगमगाते हुए सुमेरु की तरह या यों कहो सूखते हुए अप्रमेय सागर की तरह से अथवा तेजोविहीन सूर्य की तरह अपार शोक-सागर में निमग्न कृशकाय महाराज चेतनाशून्य हो रहे हैं ॥ १ ॥

प्रतीहारी—हाय, हाय, महाराज की ऐसी दशा ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

काञ्चुकीयः—भवति ! गच्छ ।

प्रतीहारी—आर्य ! तथा । [अय्य ! तहा ।] (निष्क्रान्ता)

काञ्चुकीयः—(सर्वतो विलोक्य) अहो नु खलु रामनिर्गमनदिनादारभ्य शून्यंवेयमयोध्या संलक्ष्यते । कुतः—

नागेन्द्रा यवसाभिलाषविमुखाः सास्रेक्षणा वाजिनो
ह्रेषाशून्यमुखाः सवृद्धवनिताबालाश्च पौरा जनाः ।
त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः क्रन्दन्त उच्चैर्दिशा
रामो याति यया सदारसहजस्तामेव पश्यन्त्यमी ॥ २ ॥

काञ्चुकीयः—भवति=श्रीमती, गच्छ=याहि ।

प्रतीहारी—आर्य=मान्य, तथा=यथा कथितम् तथैवेति । (निष्क्रान्ता= बहिर्गता)

काञ्चुकीयः—(सर्वतः=चतुर्दिक् विलोक्य=दृष्ट्वा) अहो=आश्चर्यम्; खेदाद्वा; रामनिर्गमनदिनात्=रामस्य वनगमनदिवसात्, आरभ्य=प्रारभ्य, शून्यमिव=निर्जनमिव, अयोध्या=एतदाख्यनगरी, संलक्ष्यते=विलोक्यते । कुतः=कस्माद्धेतोः ।

अन्वयः—अमी यवसाभिलाषविमुखा नागेन्द्राः, सास्रेक्षणाः ह्रेषाशून्यमुखाः वाजिनः, त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः उच्चैः क्रन्दन्तः सवृद्धवनिताबालाः पौराः जनाः च यया दिशा सदारसहजः रामः याति ताम् एव पश्यन्ति ॥ २ ॥

नागेन्द्रा इति । अमी=पुरो दृश्यमानाः, सर्वेऽपि इमे, यवसाभिलाषविमुखाः =कोमलघासग्रासपराङ्मुखाः, नागेन्द्राः=गजश्रेष्ठाः । सास्रेक्षणाः=सवाष्पनयनाः, ह्रेषाशून्यमुखाः=ह्रेषा=अश्वशब्दः तेन शून्यानि मुखानि येषां ते तथाभूताः अर्थात् घोटकशब्दरहितवदनाः वाजिनः=अश्वाः । त्यक्ताहारकथाः=

कञ्चुकी—आर्ये, जाओ ।

प्रतिहारी—आर्य, जा ही रहा हूँ । (प्रस्थान)

काञ्चुकी—(सब ओर देखकर) जब से राम गये, यह सारी अयोध्या सूनी-सूनी दीख रही है । क्योंकि—

हाथियों ने चारा खाना बन्द कर दिया है । घोड़ों की आँखों में आँसू भरे हैं, उन्होंने हिनहिनाना छोड़ दिया है । नगरवासी बूढ़े, जवान, औरत और बच्चे तक भी खाना भूल गये हैं । सभी के चेहरे उतर गये हैं । सभी रोते हैं, चिल्लाते हैं और राम, जानकी-लक्ष्मण के साथ जिधर गये हैं, उधर ही आँखें लगाये देख रहे हैं ॥ २ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यावदहमपि महाराजस्य समीपवर्ती भविष्यामि। (परिक्रम्यावलोक्य) अये ! अयं महाराजो महादेव्या सुमित्रया च सुदुःसहमपि पुत्रविरहसमुद्भवं शोकं निगृह्यात्मानमेव संस्थापयन्तीभ्यामन्वास्यमानस्तिष्ठति । कष्टा खल्ववस्था वर्तते । एष एव महाराजः—

पतत्युत्थाय चोत्थाय हा हेत्युच्चैर्लपन् मुहुः ।
दिशं पश्यति तामेव यया यातो रघूद्वहः ॥ ३ ॥

विसृष्टभोजनवार्ताः, अतएव दीनानि=दैन्ययुक्तानि, म्लानानि वदनानि=मुखानि येषां ते सुदीनवदनाः=अतिदैन्यमुखाः, उच्चैः=तारस्वरैः, क्रन्दन्तः=रुदन्तः । सवृद्धः वनिताबालाः=वृद्धैर्वनिताभिर्बालैश्च सहिताः पौराः=पुरवासिनः, जनाः=लोकाः, च पुनः, यया दिशा=यस्मिन् दिशि, सदारसहजः=दारैः=पत्न्या, दारशब्दः पत्नीवाचको नित्यं पुंल्लिङ्गो बहुवचनान्तश्च, सहजेन=भ्रात्रा सहित इति सदारसहजो रामः=रघुकुलश्रेष्ठः उदारपुरुषः, याति=गच्छति, तामेव दिशं पश्यन्तीति । एतेन तेषां तं प्रति गाढानुरागवत्ताऽभिहिता । अत्र शोकापन्नानां स्वाभाविकं वर्णनं विहितमिति स्वभावोक्तिः । विशेषाणि साभिप्रायाणि करुणरसपोषणे इति परिकरोऽपि । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २ ॥

यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, अहमपि=मयाऽपि, महाराजस्य=दशरथस्य, समीपवर्ती=निकटवर्त्ती, भविष्यामि=गमिष्यामि । (परिक्रम्य=भ्रमणं कृत्वा अवलोक्य=दृष्ट्वा) अये=इति सम्बोधने, अयं महाराजः=दशरथः, महादेव्या कौशल्यया, सुमित्रया=लक्ष्मणमात्रा च सुदुःसहमपि=अतिकठोरमपि, पुत्रविरहसमुद्भवं शोकम्=सुतविरहजन्यक्लेशं, निगृह्य=नियन्त्रणं कृत्वा, आत्मानमेव संस्थापयन्तीभ्याम्=समाश्वासयन्तीभ्याम् अन्वास्यमानस्तिष्ठतीति भावः । कष्टा=कष्टमयी, अवस्था=दशा, अस्ति वर्त्तते । एष एव=अयमेव, महाराजः=दशरथः ।

अन्वयः—उत्थाय च उत्थाय हा हा इति मुहुः उच्चैः लपन् पतति । यया रघूद्वहः यातः तामेव दिशं पश्यति ॥ ३ ॥

पततीति—उत्थाय चोत्थाय=प्रयत्नपूर्वकेणोत्तिष्ठति, अनेन शोकातिशयं

मैं भी महाराज के पास चलूं (घूमकर और देखकर) अरे, यही तो महाराज हैं। महारानी कौशल्या सुमित्रा के साथ अपने असह्य पुत्रशोक को भुलाकर उन्हें सम्भालने की चेष्टा कर रही हैं। कैसा दर्दनाक दृश्य है। ये महाराज—उठते हैं, गिरते हैं, फिर उठते हैं, हाय हाय हाय की रट लगाये हैं, एकटक उधर ही देख रहे हैं जिधर राम-लक्ष्मण गये हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(निष्क्रान्तः)

मिश्रविष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो राजा देव्यौ च)

राजा—हा वत्स ! राम ! जगतां नयनाभिराम !
हा वत्स ! लक्ष्मण ! सलक्षणसर्वगात्र !
हा साध्वि ! मैथिलि ! पतिस्थितचित्तवृत्ते !
हा हा गताः किल वनं बत मे तनूजाः ॥ ४ ॥

व्यज्यते, हा हेति दीनतासूचकान् शब्दान् मुहुः=वारं वारम्, उच्चैः=तारस्वरेण, लपन्=उच्चारयन् पतति, यया दिशा रघूद्वहः=रघुवंशश्रेष्ठः, यातः=गतः; तामेव=दिशं, पश्यति=अवलोकयति ॥ ३ ॥

(निष्क्रान्तः=निर्गतः)

॥ मिश्रविष्कम्भकः ॥

तल्लक्षणन्तु—वृत्तवर्त्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः ॥

(ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति=प्रवेशं करोति, यथानिर्दिष्टः=यथापूर्वनिर्देशः, राजा=दशरथः, च=पुनः, देव्यौ=कौशल्यासुमित्रे) ।

अन्वयः—हा वत्स ! जगतां नयनाभिराम ! राम ! हा वत्स सलक्षणसर्वगात्र ! लक्ष्मण ! हा साध्वि ! पतिस्थितचित्तवृत्ते ! मैथलि ! बत मे तनूजाः हा हा किल वनं गताः ॥ ४ ॥

राजा—हे वत्सेति। हा=हा इति कष्टे, वत्स=पुत्र राम, जगतां=लोकानाम्, नयनाभिराम=नयनरमणीय । लक्ष्मणं स्मरति—हा वत्स लक्ष्मण, सलक्षणसर्वगात्र=उत्तमपुरुषयुक्तलक्षणसर्वाङ्ग । सीतामपि सम्बोधयति विलपन्—हा साध्वि मैथिलि=पतिव्रते सीते, पतिस्थितचित्तवृत्ते=पत्यौ स्थिता आसक्ता चित्तवृत्तिर्यस्यास्तस्याः संबुद्धिः। हा हा गताः = याताः, किल=निश्चयेन, वनम् = अरण्यम्, बत = इति खेदे, मे = मम, तनूजाः = पुत्राः, परिकरालङ्कारः, वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४॥

(प्रस्थान)

मिश्र विषकम्भक

(यथोक्तरूप में राजा एवं रानियों का प्रवेश)

राजा—हा लोकनयनाभिराम राम, हा सर्वगुणसम्पन्न लक्ष्मण, हा स्वामिभक्ते, शुचिमच्चरिते सीते ! हन्त, मेरे प्रिय बच्चे सचमुच तुम वन को चले गये ॥ ४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चित्रमिदं भोः, यद् भ्रातृस्नेहात् पितरि विमुक्तस्नेहमपि वताल्लक्ष्मणं द्रष्टुमिच्छामि । वधु ! वैदेहि !

रामेणापि परित्यक्तो लक्ष्मणेन च गर्हितः ।
अयशोभाजनं लोके परित्यक्तस्त्वयाप्यहम् ॥ ५ ॥

पुत्र राम ! वत्स लक्ष्मण ! वधु वैदेहि ! प्रयच्छत मे प्रतिवचनं पुत्रकाः ! शून्यमिदं भोः ! न मे कश्चित् प्रतिवचनं प्रयच्छति । कौसल्यामातः ! क्वासि ?

चित्रमिदम्=आश्चर्यमिदम् । भोः, यत् भ्रातृस्नेहात्=अग्रजस्नेहात्, लक्ष्मणः=सुमित्रानन्दनः, वनं गच्छति, तया च प्रतीयते यन्मयि पितरि नास्ति तस्य स्नेहः । परञ्च तथापि तम् द्रष्टुम्=अवलोकयितुम् इच्छामि । वधु वैदेहि=पुत्रवधु सीते—

अन्वयः—रामेण अपि परित्यक्तः, लक्ष्मणेन च गर्हितः, त्वया अपि (अधुना) परित्यक्तः अहं लोके अयशोभाजनम् (जातः) ॥ ५ ॥

रामेणापीति । रामेणापि=ज्येष्ठसुतेनापि, परित्यक्तः, अत्र—अपिशब्दात् पुत्रान्तरातिशायिपितृभक्तिशालित्वेनासंभावितपितृपरित्यागव्यवसायित्वं रामस्य द्योत्यते । च=पुनः लक्ष्मणेन=सुमित्रानन्दनेन, गर्हितः=मत्परित्यागपूर्वकभ्रात्रनुगमनभङ्ग्या निन्दितः । एवं पुत्रपरित्यागेनाहं लोके=संसारे, अयशः=अपकीर्त्तेः, भाजनम्=पात्रम्, अहम्=दशरथः, जातः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ५ ॥

पुत्रकाः=रामसीतालक्ष्मणाः=पुत्री च पुत्री चेति विग्रहे पुमेकशेषः । अनुकम्पायां कन् । प्रयच्छत=प्रदत्त, मे=मम, प्रतिवचनम्=प्रत्युत्तरम् । शून्यमिदं भोः=अत्र न कोऽपि विद्यते । न मे किञ्चित्=किमपि प्रतिवचनम्, प्रयच्छति=ददाति । कौशल्यामातः=रामः, क्वासि=कुत्रासि ।

ओह, यह कैसा आश्चर्य है—उस लक्ष्मण को, जिसने भ्रातृप्रेम के सामने पितृस्नेह को भी तिरस्कृत कर दिया–उसे भर आँख देखने की प्रवल इच्छा हो रही है । बहू वैदेहि—

राम ने भी मुझे छोड़ दिया, लक्ष्मण ने भी मुझे तिरस्कृत कर दिया, संसार के सामने मैं कलङ्कित बना तो क्या ? तुम भी मुझे छोड़कर चल ही दिये ? ॥ ५ ॥

बेटा राम, वत्स लक्ष्मण, बहू वैदेहि, मेरी बातों का उत्तर क्यों नहीं देते । मेरे बच्चे, ओह, यहाँ कोई है ही नहीं—मेरी बातों का कोई उत्तर ही नहीं देता ? कौशल्यानन्दन, तुम कहाँ हो ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सत्यसन्ध ! जितक्रोध ! विमत्सर ! जगत्प्रिय ! ।
गुरुशुश्रूषणे युक्त ! प्रतिवाक्यं प्रयच्छ मे ॥ ६ ॥

हा क्वासौ सर्वजनहृदयनयनाभिरामो रामः ? क्वासौ मयि गुर्वनुवृत्तिः ? क्वासौ शोकार्तेष्वनुकम्पा ? क्वासौ तृणवदगणितराज्यैश्वर्यः ? पुत्र ! राम ! वृद्धं पितरं मां परित्यज्य किमसम्बद्धेन धर्मेण ते कृत्यम् ? हा धिक् । कष्टं भोः ?

सूर्य इव गतो रामः, सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः ।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ॥ ७ ॥

अन्वयः—सत्यसन्ध ! जितक्रोध ! विमत्सर ! जगत्प्रिय ! गुरुशुश्रूषणे युक्त ! मे प्रतिवाक्यं प्रयच्छ ॥ ६ ॥

सत्यसन्धेति । सत्यसन्ध=अवितथप्रतिज्ञ, जितक्रोध=आत्मवशीकृतकोपवेगः, विमत्सर=विगतः मत्सरः अन्यशुभद्वेषो यस्य तत्सम्बुद्धौ, अतएव जगत्प्रिय=संसारप्रेमास्पद, गुरुशुश्रूषणे युक्त=गुरूणाम् पूजनीयानाम् पित्रादीनां शुश्रूषणे सेवायाम् युक्त तत्पर, मे=मम, प्रतिवाक्यम्=प्रत्युत्तरम्, प्रयच्छ=देहि ॥ ६ ॥

हा क्वासौ=कुत्रास्ति, सर्वजनहृदयनयनाभिरामः=हृदयं च नयनञ्च हृदयनयने सर्वेषां जनानां हृदयनयनयोरभिरामः प्रीतिजनकः रामः=कौशल्यानन्दनः, क्वासौ=कुत्राऽस्ति, मयि=दशरथेः गुर्वनुवृत्तिः—गुर्वी महती, अनुवृत्तिः=अनुगतिः, आज्ञापालनभाव इत्यर्थः, त्वं सदा मदाज्ञामपालयः, इदानीं क्व गतस्त्वम् समुल्लङ्घ्य मदाज्ञाम् । शोकेनार्त्तेषु=पीडितेषु, अनुकम्पा=कृपा । त्वम् शोकार्त्तेषु सर्वदा दयाशीलः अवर्तत । इदानीम् विषमदुःखपीडिते मयि कथं न दयसे ? तृणवत्=घासमिव, अगणितं राज्यैश्वर्यम्=वैभवम् येन सः तथाभूतः। राज्यं=नृपत्वम्, कामम् परित्यज्य, त्वम्, परम् वृद्धम् माम्=दशरथम् विहाय वनम् अरण्यम् मा गमः । असम्बद्धेन=सम्बन्धरहितेन, अनुचिताज्ञापालनरूपो धर्मो न शास्त्रानुकूल इति तात्पर्यम् ।

अन्वयः—सूर्यः इव रामः गतः, दिवस इव लक्ष्मणः सूर्यम् अनुगतः । सूर्यदिवसावसाने छाया इव सीता न दृश्यते ॥ ७ ॥

सूर्य इवेति । रामः=कौशल्यानन्दनः, सूर्यः=रविः, इव=यथा, गतः=

ओ दृढ़प्रतिज्ञ, कोपजेता, मात्सर्यशून्य, लोकप्रिय, गुरुजनसेवक, मेरी बातों का उत्तर क्यों नहीं देते ॥ ६ ॥

हाय कहाँ है वह सर्वप्रिय राम ? कहाँ है सब की आँखों का सितारा ? कहाँ गई रे तेरी मुझ में भक्ति ? कहाँ है दुःखियों का दुःख दूर करने वाला ? बेटा राम, मुझ वृद्ध पिता को छोड़कर झूठे धर्म से तुम्हारा इतना लगाव ? धिक्कार है , घोर कष्ट है ।

सूर्य के समान राम चला गया । सूर्य के पीछे दिन की तरह लक्ष्मण भी चला गया ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(ऊर्ध्वमवलोक्य) भोः कृतान्तहतक !

अनपत्या वयं रामः पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः ।
वने व्याघ्री च कैकेयी त्वया किं न कृतं त्रयम् ? ॥ ८ ॥

कौशल्या—(सरुदितम्) अलमिदानीं महाराजोऽतिमात्रं सन्तप्य पर-

दृष्टिगोचरादपेतः, सूर्यम् अस्तमितम् दिवस इव, लक्ष्मणः=सुमित्रानन्दनः, अनुगतः =रामस्य पश्चाद् गतः । सूर्यदिवसावसाने छायेव सीता न दृश्यते, अर्थात् राम-लक्ष्मणयोरदर्शने । इह तिस्रः उपमाः, तत्र द्वितीयस्याम् उपमेयधर्मस्य रामस्य सूर्यमिति प्रतिबिम्बोपादानसामर्थ्यात् गम्यत्वं, तृतीयस्यां तु 'सूर्यदिवसावसान' इत्युपमानधर्मोपादानसामर्थ्यात् उपमेयधर्मस्य रामलक्ष्मणदर्शनस्य गम्यत्वमिति बोध्यम् । साम्यवर्णनादुपमालङ्कारः । आर्या छन्दश्च ॥ ७ ॥

(ऊर्ध्वम्=आकाशं, अवलोक्य=दृष्ट्वा) भोः कृतान्तहतक=कृतान्तश्चासौ हतकः इति तत्सम्बुद्धौ=कृतान्तहतक ।

अन्वयः—वयम् अनपत्याः; रामः अन्यस्य महीपतेः पुत्रः, कैकेयी वने व्याघ्री च—त्वया त्रयम् किं न कृतम् ? ॥ ८ ॥

अनपत्या इति । वयम्, अनपत्याः=नास्ति अपत्यं सन्ततिर्येषाम् ते तादृशाः, न कृता इति शेषः, रामः=कौशल्यासुतः, अन्यस्य=मद्भिन्नस्य, महीपतेः= राज्ञः, पुत्रः=सुतः न कृतः । कैकेयी = भरतमाता, वने=अरण्ये, च = पुनः व्याघ्री न कृता । त्वया=विधात्रा, त्रयम्=एतत्त्रयम्, किं=कस्मात् कारणात् न कृतम् ?—अयमाशयः—"यदि वयं निरपत्याः कृता अभविष्याम तर्हि गुणवत्तमपुत्र-परित्यागावसरलाभेन नातप्स्यामेति, रामस्य चान्यनृपतिकुमारत्वे पुत्रोचितलालन-स्थाने वनवासकष्टं नापतिष्यत्, कैकेय्याश्चेदृशक्रूरसत्त्वायाः काननव्याघ्रीभाव एवोचित इति त्रयमप्याशंसनमुपपन्नमेवेति पण्डितरामचन्द्रः ।" पर्यायोक्तिर-लङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ८ ॥

कौशल्या—(सरुदितम्=रोदनसहितम्) अलम्=इति काकुः, समर्थः=किं न समर्थ इत्यर्थः । इदानीम्=अधुना, महाराजः=दशरथः, अतिमात्रम्=अत्य-

---

सूर्य और दिवस के अवसान पर छाया की तरह अब सीता भी नहीं दीखती ॥ ७ ॥

(ऊपर की ओर देखकर) रे दुष्ट यमराज !

तुम ने ये तीन काम क्यों नहीं किये ? मुझे निःसन्तान ही रखता या राम को किसी दूसरे का बेटा बना देता और इस कैकेयी को वन में बाघिन बना दिया होता ।

कौशल्या—(रोती हुई) महाराज, अब बस करें । अधिक रोकर अपने को अधिक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वशमात्मानं कर्तुम् । ननु सा तौ कुमारौ महाराजस्य समयावसाने प्रेक्षितव्या भविष्यन्ति । [अलं दाणिं महाराओ अदिमत्तं सन्तप्पिअ परवसं अत्ताणं कादुं । णं सा ते अ कुमारा महाराअस्स समआवसाणे पेक्खिदव्वाभविस्सन्ति ।]

राजा—का त्वं भोः ?

कौशल्या—अस्निग्धपुत्रप्रसविनी खल्वहम् । [असिणिद्धपुत्तप्पसविणी खु अहं ।]

राजा—किं किं सर्वजनहृदयनयनाभिरामस्य रामस्य जननी त्वमसि कौशल्या ?

कौशल्या—महाराज ! सैव मन्दभागिनी खल्वहम् । [महाराअ ! सा एव मन्दभाइणी खु अहं ।]

राजा—कौशल्ये ! सारवती खल्वसि । त्वया हि खलु रामो गर्भे धृतः ।

धिकम्, संतप्य—शोकम् कृत्वा, परवशम् = पराधीनम्, आत्मानम् = स्वकीयम्, कर्त्तुम् । ननु सा = वैदेही, तौ=रामलक्ष्मणौ, च = पुनः, कुमारौ = बालकौ, महाराजस्य, समयावसाने = चतुर्दशवर्षान्ते, प्रेक्षितव्याः=प्रेक्षितुम् शक्याः (कृत्यानां कर्त्तरि वेति षष्ठी) भविष्यन्तीति ।

राजा—जराशोककृतात् दृष्ट्यपाटवात् राजा पृच्छति का त्वम् भोः ? अर्थात् त्वम् का असि ?

कौशल्या—अस्निग्धपुत्रप्रसविनी = राज्यनिष्कासनावधारितस्वत्स्नेहाभावस्य पुत्रस्य जननी । खलु = निश्चयेन, अहम् = कौशल्येति भावः ।

राजा—किं किं = कथम् कथम्, सर्वजनहृदयनयनाभिरामस्य = सकललोकहृदयनयनरञ्जकस्य रामस्य जननी=माता, त्वम्=भवती, कौशल्या असि ।

कौशल्या—महाराज = हे नृप, सा एव = यथा कथितम् तथैव, मन्दभागिनी अधन्या, खलु अहम् = कौशल्येति ।

राजा—कौशल्ये = कोशलनृपतनये, सारवती खल्वसि = सारं प्रशस्तं वस्तु

अधीर न करें । बनवास की अवधि समाप्त होने पर तो आप राम, लक्ष्मण और जानकी को देखेंगे ही ।

राजा—तुम कौन हो ?

कौशल्या—मैं उसी स्नेह-शून्य बेटे की माँ हूँ ।

राजा—क्या कहा ? तुम लोकरंजक नयनाभिराम उस राम की माता कौशल्या हो ?

कौशल्या—हाँ महाराज, मैं वही अभागिन हूँ ।

राजा—कौशल्ये, निश्चय ही तुम महत्त्वशालिनी हो, तुमने राम को अपने गर्भ में धारण किया है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अहं हि दुःखमत्यन्तमसह्यं ज्वलनोपमम् ।
नैव सोढुं न संहर्तुं शक्नोमि मुषितेन्द्रियः ॥ ९ ॥

(सुमित्रा विलोक्य) इयमपरा का ?

कौशल्या—महाराज ! वत्स लक्ष्मण—(इत्यर्धोक्ते) [महाराअ ! वच्छ-लक्खण—]

राजा—(सहसोत्थाय) **क्वासौ क्वासौ लक्ष्मणः ? न दृश्यते । भोः कष्टम् ।**

रामनामकं तद्वती असि । त्वया=कौशल्यया, हीति निश्चयेन, रामः=ज्येष्ठकुमारः गर्भे=स्वजठरे, धृतः=स्थापितः ।

अन्वयः—अहं हि मुषितेन्द्रियः अत्यन्तम् असह्यम् ज्वलनोपमम् दुःखम् नैव सोढुम् नैव संहर्त्तुम् शक्नोमि ।। ९ ।।

अहमिति । अहम्=दशरथः, हि=इति निश्चये, मुषितेन्द्रियः=मुषितानि=उपहतसामर्थ्यानि इन्द्रियाणि ज्ञानकर्मोभयेन्द्रियाणि यस्य तथाभूतः । इन्द्रियोपहतौ परिच्छेदाभावेन सहनप्रतिकारयोरुभयोरशक्यसम्पादनत्वादिति भावः । अत्यन्तम्=अत्यधिकम्, असह्यम्=सोढुमशक्यम्, ज्वलनोपमम्=अग्नितुल्यम्, दुःखम्=कष्टम्, नैव सोढुम्=न सहनङ्कर्त्तुम्, नैव=न च संहर्त्तुम्=विनाशंकर्त्तुम्, शक्नोमि=समर्थोऽस्मि, किं कर्त्तव्यविमूढतेति व्यज्यते । अनुष्टुप् छन्दः ।। ९ ।।

(सुमित्रां=लक्ष्मणजननीम्, विलोक्य=दृष्ट्वा) इयम्=पुरो दृश्यमाना, अपरा=अन्या का इति प्रश्नः ।

कौशल्या—महाराज=हे नृप, वत्सलक्ष्मण=पुत्रलक्ष्मण (इति इत्थम्, अर्धोक्ते=अर्धवाक्येनैव)

राजा—(सहसोत्त्थाय=हठात् समुत्थाय) लक्ष्मणपदश्रवणमात्रेण प्राप्तलक्ष्मण-सान्निध्यभ्रममाह क्वासौ क्वासौ लक्ष्मणः=कुत्रास्ति मम पुत्रः लक्ष्मणः । न दृश्यते न कुत्राप्यवलोक्यते । भोः कष्टम्=हन्त खेदम् इति कथयित्वा पतति ।

अभागा तो मैं हूँ—जो अग्नि की तरह अत्यन्त असह्य इस दुःख को नहीं सह सकता हूँ और न दूर ही कर सकता हूँ । मेरी इन्द्रियाँ तो शून्य हो गयी हैं ।। ९ ।।

(सुमित्रा को देखकर) यह दूसरी कौन है ?

कौशल्या—महाराज वत्स लक्ष्मण—**(इतना आधा कहते ही)**

राजा—(सहसा उठकर) कहाँ है ? कहाँ है मेरा लक्ष्मण, दीखता तो नहीं है । हा बड़ा कष्ट है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(देव्यौ ससंभ्रममुत्थाय राजानमवलम्बेते)

कौशल्या—महाराज ! वत्सलक्ष्मणस्य जननी सुमित्रेति वक्तुं मयोपक्रान्तम्। (महाराअ ! वच्छलक्खणस्स जणणी सुमित्तत्ति वत्तुं मए उवक्कन्दं ।]

राजा—अयि सुमित्रे !

तवैव पुत्रः सत्पुत्रो येन नक्तंदिवं वने ।
रामो रघुकुलश्रेष्ठश्छाययेवानुगम्यते ॥ १० ॥

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः । एष खलु तत्रभवान् सुमन्त्रः प्राप्तः ।

(देव्यौ=कौशल्यासुमित्रे ससंभ्रमम्=सहसैव, उत्थाय=उत्थिते भूत्वा, राजानम् दशरथम् अवलम्बेते)

कौशल्या—महाराज=हे नृप, वत्सलक्ष्मणस्य=पुत्रलक्ष्मणस्य, जननी=माता सुमित्रेति, वक्तुम्=कथयितुम्, मया=कौशल्यया उपक्रान्तमिति ।

राजा —अयि सुमित्रे=अयि लक्ष्मणजननि ।

अन्वयः—तव पुत्रः एव सत्पुत्रः, येन वने रघुकुलश्रेष्ठः रामः नक्तन्दिवं छायया इव अनुगम्यते ॥ १० ॥

तवैवेति । तव=सुमित्रायाः, पुत्रः=सुतः एव, सत्पुत्रः=प्रशंसाभाजनं तनयः, येन=लक्ष्मणेन, वने=अरण्ये, रघुकुलश्रेष्ठः=रघुवंशावतंसः, रामः=कौशल्यासुतः, नक्तंदिवम्=दिवानिशम्, छाययेवानुगम्यते=कदापि रामस्यापरिहाणात् सत्पुत्रत्वस्य हेतोः समर्थनाद् काव्यलिङ्गमलङ्कारोऽत्र । छाययेवेत्युपमा च । अनुष्टुप् छन्दः ।

(प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा)

काञ्चुकीयः—जयतु=विजयस्व, महाराजः=नृपः । एष खलु तत्रभवान्=श्रीमान्, सुमन्त्रः=राजसारथिः, प्रधानसचिवो वा, प्राप्तः=समायातः ।

कौशल्या—महाराज, मैं तो यह कहने लगी थी कि यह प्रिय लक्ष्मण की माता सुमित्रा है ।

राजा—ओ सुमित्रे, तुम्हारा ही पुत्र सुपुत्र है, जो रात दिन जंगल में रघुकुलतिलक राम का साथ दे रहा है ॥ १० ॥

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—जय हो महाराज की । आर्य सुमन्त्र आये हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—(सहसोत्थाय सहर्षम्) अपि रामेण ?

काञ्चुकीयः—न खलु, रथेन ।

राजा—कथं कथं रथेन केवलेन ? (इति मूर्च्छितः पतति) ।

देव्यौ—महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि (गात्राणि परामृशतः) [महाराअ ! समस्ससिहि समस्ससिहि ।]

काञ्चुकीयः–भोः ! कष्टम् । ईदृग्विधाः पुरुषविशेषा ईदृशीमापदं प्राप्नुवन्तीति विधिरनतिक्रमणीयः । महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

राजा—(किञ्चित् समाश्वस्य) बालाके ! सुमन्त्र एक एव ननु प्राप्तः ?

राजा—(सहसोत्थाय सहर्षम्=सप्रसन्नम्) अपि रामेण=किं रामेण सह प्राप्त' इति प्रश्नः ।

काञ्चुकीयः—न खलु, रथेन=केवलरथेन अर्थात् रामरहितेन समागतः इति ।

राजा—कथं कथं रथेन केवलेन । किं कथितम्, केवलेन रथेनैव सम्प्राप्तः इति एवमुक्त्वा मूर्च्छितः=संज्ञाहीनः सन् पतति)

देव्यौ—महाराज=हे नृप, समाश्वसिहि समाश्वसिहि, (गात्राणि=शरीराणि, परामृशतः=स्पर्शयतः)

काञ्चुकीयः—भोः कष्टम्=खेदम् । ईदृग्विधाः=ईदृशी विधा प्रकारो येषाम् ते ईदृग्विधाः दशरथसदृशा महाबलशालिनः सम्राजोऽपीति भावः । पुरुषविशेषाः =लोकोत्तराः पुरुषाः, ईदृशीम्=घोराम् प्रतीकारशून्याम्, आपदम्=विपत्तिम्, प्राप्नुवन्तीति विधिः=भवितव्यता, अनतिक्रमणीयः=अनुल्लङ्घनीयः । महाराज=हे राजन्, समाश्वसिहि ।

राजा—(किञ्चित् समाश्वस्य=आश्वासनं प्राप्य) बालाके=बालाकिरिति काञ्चुकीयस्य संज्ञा । सुमन्त्रः=सचिवः, एक एव=अद्वितीय एव, ननु प्राप्तः= समागतः ।

राजा—(सहसा उठकर सहर्ष) क्या राम के साथ ?

कञ्चुकी—नहीं, रथ लेकर ।

राजा—क्या क्या केवल रथ लेकर ? (मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं)

देवियाँ—महाराज, धीरज धरिये, धीरज धरिये । (अंगों का स्पर्श करती हैं)

कञ्चुकी—हाय कैसा दारुण दुःख है ? ऐसे महापुरुष को भी इस प्रकार की आपत्ति सहनी पड़ती है । सचमुच भवितव्यता किसी से नहीं टाली जा सकती ।

राजा—(कुछ संभलकर ... सुमंत्र अकेले आये हैं ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

काञ्चुकीयः—महाराज ! अथ किम् ।

राजा—कष्टं भोः !

शून्यः प्राप्तो यदि रथो भग्नो मम मनोरथः ।
नूनं दशरथं नेतुं कालेन प्रेषितो रथः ॥ ११ ॥

तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः)

काञ्चुकीयः—महाराज=हे नृप, अथ किम्=इति अङ्गीकारे ।

राजा— कष्टम् भोः=हन्त ।

अन्वयः—यदि रथः शून्यः प्राप्तः (तर्हि) मम मनोरथः भग्नः । नूनम् दश रथं नेतुं कालेन रथः प्रेषितः ॥ ११ ॥

शून्य इति । यदि=स्यात्, रथः=स्यन्दनः, शून्यः=रामविरहितः प्राप्तः= आयातस्तर्हि, मम=दशरथस्य,मनोरथः=शोकपर्याकुलम् माम् ज्ञात्वा कदाचिद्राम प्रतिनिवर्त्तेत इत्यात्मकः, भग्नः=त्रुटितः । नूनं पदमुत्प्रेक्षायाम्, दशरथम्=माम् नेतुम्=आनयितुम्, कालेन=यमेन, रथः=स्यन्दनः, प्रेषित इति । शून्यरथप्रेष णस्यनानयार्थितया यमकृतं शून्यरथप्रेषणं दशरथानयनार्थमेवेति गम्यते । इतः परं नाहं जीविष्यामीति । मन एव रथः इति विग्रहे मनोरूपस्य रथस्य भग्नान्मृत्यु कालः सम्प्राप्तः इत्येवार्थः । अत्र मनोरथ इत्यत्र श्लिष्टत्वात् श्लेषः । नूनमिति च शून्यरथे कालप्रेषितत्वस्योत्प्रेक्षणात् उत्प्रेक्षालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ११ ॥

तेन हि=अतः शीघ्रम्=सत्वरम्, प्रवेश्यताम्, अत्र 'बालाके ! प्रवेशय तम्' इति क्वचित्पाठः ।

काञ्चुकीयः—यत्, आज्ञापयति = आदिशति, महाराजः=देवः । (निष्क्रान्तः=बहिर्गतः)

कञ्चुकी—जी हां ।

राजा—हा शोक-यदि रथ सूना आया है तो मेरी आशा टूट गयी । मालूम पड़ता है यमराज ने दशरथ को लेने रथ भेजा है ॥ ११ ॥

अच्छा उसे शीघ्र भेज दो ।

कञ्चुकी—जो महाराज की आज्ञा ।

(प्रस्थान)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—धन्याः खलु वने वातास्तटाकपरिवर्तिनः ।
विचरन्तं वने रामं ये स्पृशन्ति यथासुखम् ॥ १२ ॥
(ततः प्रविशति सुमन्त्रः)
सुमन्त्रः—(सर्वतो विलोक्य सशोकम्)
एते भृत्याः स्वानि कर्माणि हित्वा, स्नेहाद् रामे जातबाष्पाकुलाक्षाः ।
चिन्तादीनाः शोकसन्दग्धदेहाः, विक्रोशन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति ॥ १३ ॥
(उपेत्य) जयतु महाराजः ।

अन्वयः—वने तटाकपरिवर्तिनः वाताः धन्याः खलु, ये वने विचरन्तं रामम् यथासुखं स्पृशन्ति ॥ १२ ॥

धन्या इति । वने=अरण्ये, तटाकपरिवर्त्तिनः=पद्माकरे विचरणशीलाः, वाताः =काननमारुताः, धन्याः=सौभाग्यभाजः, खलु=निश्चयेन । ये=वाताः कानने विचरन्तम्=विहरन्तम्, रामम् यथासुखम्=यथेच्छम्, स्पृशन्ति=आलिङ्गन्ति । रामदेहस्पर्श एव वातान् धन्यान् करोतीत्युक्त्या तद्विरहितस्य स्वस्य अधन्यत्व-मुक्तम् । अत्र धन्यत्वस्य हेतुना समर्थनात्काव्यलिङ्गमलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः॥

(ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति=प्रवेशं करोति सुमंत्रः)

सुमन्त्रः—(सर्वतः=सर्वत्र, विलोक्य=दृष्ट्वा, सशोकम्=सकष्टम्)

अन्वयः—एते भृत्याः रामे स्नेहात् जातवाष्पाकुलाक्षाः, चिन्तादीनाः, शोक संदग्धदेहाः, स्वानि कर्माणि हित्वा विक्रोशन्त पार्थिवं गर्हयन्ति ॥ १३ ॥

एते भृत्या इति । एते भृत्याः=सेवकाः, रामे स्नेहात्=अनुरागात्, जातेन= उत्पन्नेन, वाष्पेण=अश्रुणा, आकुले=व्याप्ते अक्षिणी येषां ते जातवाष्पाकुलाक्षाः, चिन्तादीनाः=चिन्तया रामः कीदृशो वने भविष्यतीत्यादिरूपया दीनाः आर्त्ताः, शोकेन=क्लेशेन, सन्दग्धः=सम्यक् भस्मीभूतः देहो येषां ते तादृशाः, स्वानि= स्वकीयानि, कर्माणि=कार्याणि हित्वा=परित्यज्य, विक्रोशन्तम्=राम रामेति विलपन्तम्, पार्थिवम्=नृपम्, गर्हयन्ति=निन्दन्ति । अत्र परिकरालङ्कारः । शालिनी छन्दः ॥ १३ ॥

राजा—तालाबों में चलने वाली वन की हवाएँ भी धन्य हैं, जो वन में घूमते हुए राम का स्पर्श करती हैं । **(सुमंत्र का प्रवेश)**

सुमंत्र—(चारों ओर शोक से देखकर) राम के स्नेह से नेत्रों में आँसू भरे हुए, चिन्ता से दीन और शोक से सन्तप्त ये सेवक भी अपने अपने कार्य छोड़ चुके हैं तथा रोते हुए राजा को कोस रहे हैं ॥ १३ ॥

(पास जाकर) महाराज को जय हो ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—भ्रातः ! सुमन्त्र !
क्व मे ज्येष्ठो रामः ?
नहि नहि युक्तमभिहितं मया ।

क्व ते ज्येष्ठो रामः प्रियसुतः ! सुतः सा क्व दुहिता—
विदेहानां भर्तुर्निरतिशयभक्तिर्गुरुजने ।
क्व वा सौमित्रिर्मां हतपितृकमासन्नमरणं-
किमप्याहुः किं ते सकलजनशोकार्णवकरम् ॥ १४ ॥

राजा—भ्रातः सुमन्त्र, हे प्रियसुत सुमन्त्र, क्व मे ज्येष्ठो रामः=मे=मम, ज्येष्ठः सुतः रामः=कौशल्यानन्दनः, क्व=कुत्र वर्त्तते ? इति प्रष्टुमुपक्रान्तम्, रामस्य लोकमाङ्गलिकस्य मन्दभाग्यात्मसम्बन्धकीर्त्तनममङ्गलमिव मन्यमान आह—नहि नहि युक्तम्=उचितम्, अभिहितम्=कथितम्, मया=दशरथेन, पश्चात् स्वस्य रामेण सह सम्बन्धम् परिजिहीर्षन्निवाह—क्व ते ज्येष्ठ इति ।

अन्वयः—प्रियसुत, ज्येष्ठः सुतः रामः क्व ? सा गुरुजने निरतिशयभक्तिः विदेहानाम् भर्त्तुः दुहिता क्व ? सौमित्रिः वा क्व ? किं ते सकलजनशोकार्णवकरम् आसन्नमरणम् हतपितृकं माम् किमपि आहुः ॥ १४ ॥

क्व ते ज्येष्ठ इति । हे प्रियसुत=प्रियः सुतः अर्थात् राम एव यस्य तस्य संबुद्धिः । एतेनात्मनः प्रियसुतत्वाभावो ध्वनितः । ते=तव, ज्येष्ठः=प्रथमः, सुतः=पुत्रः, रामः=कौशल्यानन्दनः, क्व=कुत्रास्ति ? सा=जानकी गुरुजने=श्वशुरादौ, निरतिशयभक्तिः=सर्वातिशायिभक्तिसंवलिता, विदेहानाम्=मिथिलानामकदेशविशेषाणाम् भर्त्तुः=स्वामिनः दुहिता=पुत्री, क्व=कुत्र ? सौमित्रिः=सुमित्रानन्दनः, वा=अथवा, क्व=कुत्र ? किं ते=रामादयः, सकलजनशोकार्णवकरम्=अखिललोकखेदसमुद्रोत्पादकम्, आसन्नमरणम्=आसन्नम्=सन्निहितम् मरणम् यस्य तम्=मुमूर्षुमित्यर्थः, हतपितृकम्=अभाग्यभाजनम् निजम् जनकम् माम्=दशरथम्, किमप्याहुः=किमपि संदिदिशुः ? अथ तथा त्वरितमभिधीयतामिति तदाशयः । शिखरिणी छन्दः—'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी' इति तल्लक्षणात् ॥ १४ ॥

राजा—भाई सुमन्त्र, कहाँ है मेरा बेटा राम ? नहीं, नहीं, मैंने ठीक नहीं किया ।

कहाँ है तुम्हारा बड़ा बेटा राम ? हे प्रियसुत ! कहाँ है वह, गुरुजनोंपर अतिशय भक्ति रखने वाली विदेहराजकुमारी सीता ? कहाँ है प्यारा लक्ष्मण ? सबके लिए शोकसागर उपस्थित करनेवाले आसन्नमृत्यु मुझ अभागे पिताके लिए उन्होंने कुछ संदेश भी कहा है ? ॥१४॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुमन्त्रः—महाराज ! मा मैवममङ्गलवचनानि भाषिष्ठाः । अचिरादेव तान् द्रक्ष्यसि ।

राजा—सत्यमयुक्तमभिहितं मया । नायं तपस्विनामुचितः प्रश्नः । तद् कथ्यताम् । अपि तपस्विनां तपो वर्धते ? अप्यरण्यानि स्वाधीनानि विचरन्ती वैदेही न परिखिद्यते ?

सुमित्रा—सुमन्त्र ! बहुवल्कलालङ्कृतशरीरा बालाऽप्यबालचारित्रा भर्तुः सहधर्मचारिणी अस्मान् महाराजं च किञ्चिन्नालपति ? [सुमन्त्र ! बहुवक्कलालङ्किदसरीरा वालावि अवालचरित्ता भतुणो सहधम्मआरिणी अम्हे महाराअं च किञ्चि णालवादि ।]

सुमन्त्रः—महाराज—हे नृप, मा मा भाषिष्ठाः=मा मा भाषस्व, एवम्=इत्थम्, अमङ्गलवचनानि=अशुभवाक्यानि । अचिरादेव=शीघ्रमेव, तान्=रामादिकान् द्रक्ष्यसि ।

राजा—सत्यम्=नालीकम्, अयुक्तम्=अनुचितम्, अभिहितम्, मया=दशरथेन । न=नहि, अयम्=एषः, तपस्विनाम्=तापसानाम्, रामादीनाम् वनचारित्वात् तपस्वित्वम्, उचितम् युक्तम्, प्रश्नं करोतीति । अपीति प्रश्ने । तपस्विनाम्=नागरभोगजिहासया तापसत्वं परिगृहीतवतां रामादीनां त्रयाणां तपो वर्द्धते=नियमादिकम् निर्विघ्नमनुष्ठीयते । अपि=इति प्रश्ने । अरण्यानि=वनानि, स्वाधीनानि=स्वभर्तृभुजवीर्यगुप्तिवशात् आत्मवशे स्थितानि, विचरन्ती=परिचरन्ती, वैदेही=जानकी, न=नहि, परिखिद्यते=क्लिश्यते ।

सुमित्रा—एतावत्कालं जोषमास्थिता सुमित्रा सीताविषयकप्रश्ने दशरथेन कृते स्त्रीस्वभावेन सीताविषय एव पृच्छति—सुमन्त्र इति । बहुवल्कलालंकृतशरीरा=अधिकसंख्यकवल्कलवसना, बालापि=अल्पवयस्काऽपि अबालचारित्रा=प्रौढशीला, भर्त्तुः=रामस्य, सहधर्मचारणी=सहचारिणी, अस्मान् जनान्, च=

सुमन्त्र—महाराज ! ऐसी अमंगलकारी बातें मुँहसे न निकालें । आप उन्हें शीघ्र देखेंगे ।

राजा—सचमुच मैंने ठीक नहीं कहा । तपस्वियों के विषय में इस तरह पूछना ठीक नहीं । अच्छा, कहो, तपस्वियों का तप तो बढ़ रहा है । वनों में निःशंक घूमती हुई सीता को कुछ कष्ट तो नहीं है ।

सुमित्रा—सुमन्त्र, अत्यधिक वल्कलों से आभूषित शरीर वाली जानकी, बाला होकर भी आदर्शचरित्रा, पतिसहगामिनी, पतिव्रता सीता हमें तथा महाराज को कुछ कह तो नहीं रही थी ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुमन्त्रः—सर्वं एव महाराजम्—

राजा—न न । श्रोत्ररसायनैर्मम हृदयातुरौषधैस्तेषां नामधेयैरेव श्रावय !

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः । आयुष्मान् रामः ।

राजा—राम इति । अयं रामः । तन्नामश्रवणात् स्पृष्ट इव मे प्रतिभाति । ततस्ततः ।

सुमन्त्रः—आयुष्मान् लक्ष्मणः ।

पुनः महाराजम् = दशरथम्, न = नहि, किंचित् = किमपि, आलपति = कथयति ।

सुमन्त्रः—सुमन्त्रस्तु सर्वे किं कृतवन्तः इति प्रतिपादयितुम् प्रवर्तते । संवाद-प्रेषकपुत्रप्रेमपराधीनस्य राज्ञः दशरथस्य तेषां सर्वनाम्ना निर्देशस्यासह्यताव्यञ्जक-तया व्यग्रताव्यञ्जकः । अपूर्णमिदम् वाक्यम् । सर्व इति पदेन रामादीन् सर्वान् परामृष्टवान् ।

राजा—पुत्रकनामश्रवणतृष्णया तन्नामनिर्देशपूर्वम् प्रवृत्तं सुमन्त्रस्योत्तरम् असहमान आह– न = नहि, नहि, श्रोत्ररसायनैः = श्रुतिप्रियैः, हृदयातुरौषधैः = मानसिकव्यथाप्रशमनपटुभिः, यथा हि रसायनम् औषधम् रोगमपनीयानन्दं जन-यति तथैव रामादीनां नामानि श्रवणेन हृदयपीडारोगमपनीय सुखं जनयिष्यन्तीति भावः । तेषाम् रामादीनाम् त्रयाणाम्, नामधेयैरेव = नामभिरेव श्रावय = कथय ।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयतीत्यादि पञ्च संवादास्तत्र सुमन्त्रः कथयति–यदाज्ञाप-यति = यथादिशति, महाराजः = नृपः । आयुष्मान् = चिरञ्जीवी, रामः = कौशल्या-नन्दनः ।

राजा—राम इति—रामनामश्रवणेन । नृपदशरथस्तदाकृतिं कल्पनया ध्याय-न्नाह—अयं राम इति । पुनश्चेतनतामासाद्य पूर्वानुभूता दशा कल्पितेति ब्रवीति स्वयमेव = तन्नामेति । तन्नामश्रवणात् = सुमन्त्रमुखात् रामनामोच्चारणात्, स्पृष्ट इव = रामस्य शरीरं स्पृशामि इव, मे = मम, प्रतिभाति । ततस्ततः = तत्पश्चात् ।

सुमन्त्रः—आयुष्मान् = चिरञ्जीवी, लक्ष्मणः = सुमित्रानन्दनः ।

सुमन्त्र—सभी महाराज को—

राजा—नहीं, नहीं, कानों को आनन्द देने वाले तथा दुःखी हृदय को शान्त करने वाले उनके नाम लेकर ही संदेश सुनाओ ।

सुमन्त्र—महाराज की जैसी आज्ञा । चिरजीवी राम ।

राजा—अच्छा राम, यह राम, राम का तो नाम सुन लेनेसे ऐसा जान पड़ता है, मानो हमने उसे छाती से लगा लिया हो ! हाँ फिर—

सुमन्त्र—आयुष्मान् लक्ष्मण !

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—अयं लक्ष्मणः। ततस्ततः।

सुमन्त्रः—आयुष्मती सीता जनकराजपुत्री।

राजा—इयं वैदेही। रामो लक्ष्मणो वैदेहीत्ययमक्रमः।

सुमन्त्र—अथ कः क्रमः ?

राजा—रामो, वैदेही लक्ष्मण इत्यभिधीयताम्।

रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तिष्ठत्वत्रापि मैथली।
बहुदोषाण्यरण्यानि सनाथैषा भविष्यति ॥ १५ ॥

राजा—अयम्=एषः, लक्ष्मणः=सौमित्रेयः। ततस्ततः = तत्पश्चात्।

सुमन्त्रः—आयुष्मती = चिरञ्जिविनी, सीता = रामवल्लभा, जनकराजपुत्री = राजा जनकस्य सुता।

राजा—इयम्=एषा, वैदेही = विदेहराजतनया। राजा शोकवशगः सुमन्त्रस्य रामो लक्ष्मणः सीतेति वचनं क्रमभङ्गं मन्यमान आह—राम इति। अक्रमः= अनुचितक्रमः, क्रमभङ्ग इत्याह।

सुमन्त्रः—अथ इति जिज्ञासायाम्। कः किम्, क्रमः=समुचितक्रमः।

राजा—रामः=दशरथपुत्राणां मध्ये अग्रजः, तदा तस्य पत्नी वैदेही=सीता तत्पश्चात् लक्ष्मणः=सुमित्रानन्दनः–इति क्रम उचितः।

अन्वयः—अत्रापि मैथली रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तिष्ठतु। (यतः) अरण्यानि बहुदोषाणि, एषा सीता सनाथा भविष्यति ॥ १५ ॥

रामलक्ष्मणयोरिति। अत्रापि=नामनिर्देशेऽपि, मैथली=जानकी, रामलक्ष्मणयोर्मध्ये=अग्रे रामः पश्चात् लक्ष्मणः, तयोः मध्ये=अन्तराले, तिष्ठतु। अरण्यानि= वनानि, बहवो दोषाः=विघ्नाः यत्र तथाभूतानि सन्तीति रामेण वनगमने सीता मध्ये कृतैव। अनर्थशङ्कीनि खलु बन्धुहृदयानीति कृत्वा दशरथो नामग्रहणेऽपि सीतां मध्यस्थामेवेच्छति, अग्रे स्वयं तथैव प्रतिपादयिष्यत्यपि। एतेन दशरथस्य सीताविषयकः स्नेहातिशयः सूचितः ॥ १५ ॥

राजा—यह लक्ष्मण ! अच्छा आगे—

सुमन्त्र—आयुष्मती जनकतनया सीता।

राजा—यह सीता। राम, लक्ष्मण, सीता—यह क्रम ठीक नहीं है।

सुमन्त्र—तो फिर कोन सा क्रम ठीक होगा ?

राजा—राम, सीता, लक्ष्मण, ऐसा कहो—

यहाँ नाम लेने में भी सीता, राम और लक्ष्मणके बीच में ही रहें, क्योंकि जंगलों में बहुत उपद्रव हुआ करते हैं। इन दोनों के बीच में जानकी के रहने से वह निरापद रहेंगी ॥१५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः । आयुष्मान् रामः ।

राजा—अयं रामः ।

सुमन्त्रः—आयुष्मती जनकराजपुत्री ।

राजा—इयं वैदेही ।

सुमन्त्रः—आयुष्मान् लक्ष्मणः ।

राजा—अयं लक्ष्मणः । राम ! वैदेही ! लक्ष्मण ! परिष्वजध्वं मां पुत्रकाः ।

सकृत् स्पृशामि वा रामं, सकृत् पश्यामि वा पुनः ।
गतायुरमृतेनेव जीवामीति मतिर्मम ॥ १६ ॥

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति=यथादिशति, महाराजः=नृपः दशरथः । आयुष्मान्=चिरञ्जीवी, रामः=ज्येष्ठसुतः ।

राजा—अयम्=एषः, रामः=कौशल्यानन्दनः ।

सुमन्त्रः—आयुष्मती=चिरञ्जीविनी, जनकराजतनया=विदेहनृपसुता ।

राजा—इयम्=एषा वैदेही= जानकी ।

सुमन्त्रः—आयुष्मान्=चिरञ्जीवी लक्ष्मणः=सौमित्रः ।

राजा—अयम्=एषः लक्ष्मणः=सुमित्रानन्दनः । दशरथः पुनरपि नामश्रवणेन कल्पनया रामादीनां आकृतीः सम्मुखेऽनुध्याय ब्रवीति—राम, वैदेहि, लक्ष्मण इति । परिषजध्वम्=आलिङ्गत, पुत्रकाः=सुताः ।

अन्वयः—सकृत् रामं स्पृशामि वा सकृत् तं पश्यामि । गतायुः अमृतेन इव जीवामि इति मम मतिः ।। १३ ।।

सकृदिति । सकृत्=एकवारम्, रामम्=ज्येष्ठसुतम्, स्पृशामि=आलिङ्गामि, वा=अथवा, पुनः सकृत् तं पश्यामि । रामदर्शनस्पर्शनयोरभिप्रेयमाणताप्रतिपादनेन वात्सल्यपोषः तत्फलमाह—गतायुरिति । गतम् समाप्तम् आयुर्यस्य सः, मुमूर्षुरित्यर्थः । यथा–अमृतेन=सुधया, इव=यथा, जीवामि=जीवेयम्, इति मम =मे, मतिः निश्चयात्मिका बुद्धिः । अर्थात् गतायुः यथाऽमृतेनासादितेन जीवति

सुमन्त्र—महाराज की जैसी आज्ञा ! आयुष्मान् राम ।

राजा—यह राम ।

सुमन्त्र—आयुष्मती सीता ।

राजा—यह रही सीता ।

सुमन्त्र—आयुष्मान् लक्ष्मण ।

राजा—चिरंजीवी लखन । राम, जानकी, लखन, मेरे बेटों, मेरा आलिंगन तो करो।

यदि एक बार भी राम का आलिंगन कर लूँ अथवा उसे कहीं देख ही लूं तो मरणासन्न होता हुआ भी मैं उसी तरह जी उठूँ, जैसे कोई अमृत पीकर जी उठा हो ।। १६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुमन्त्रः शृङ्गबेरपुरे रथादवतीर्यायोध्याभिमुखाः स्थित्वा सर्व एव महाराजं शिरसा प्रणम्य विज्ञापयितुमारब्धाः ।

कमप्यर्थं चिरं ध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुरिताधराः ।
बाष्पास्तम्भितकण्ठत्वादनुक्त्वैव वनं गताः ॥ १७ ॥

तथा रामस्य दर्शनेन स्पर्शनेन वा मया जीवितव्यम् । उपमया स्वस्यावश्यम्भाविमरणमुच्यते । अमृतेनेवेत्युपमालंकारः, अनुष्टुप् छन्दः ।। १६ ।।

सुमन्त्रः—इदानीं सुमन्त्रोऽवसरं प्राप्य पूर्वप्रक्रान्तं रामादीनां वृत्तं ब्रवीति । शृङ्गबेरपुरे=शृङ्गबेरपुरं हि गङ्गातटवर्तिस्थानं यत्र रामः गङ्गालङ्घनात्प्राक् किञ्चित्कालं स्थितः । तत्र रथादवतीर्य=स्यन्दनात् अवतीर्य, अयोध्याभिमुखाः= यस्यां दिशायां अयोध्या अस्ति तस्यां दिशायां मुखं कृत्वा, सर्व एव=रामादय एव महाराजं=नृपदशरथम्, शिरसा प्रणम्य, विज्ञापयितुम्=सन्देष्टुम्, आरब्धाः= आरब्धवन्तः ।

अन्वयः—चिरं कम् अपि अर्थं वक्तुं प्रस्फुरिताधराः वाष्पस्तम्भितकण्ठत्वात् अनुक्त्वा एव वनं गताः ।। १७ ।।

कमपीति । चिरम्=चिरकालं कमपि अर्थं पितृभक्तैः पुत्रैः स्ववनवासारम्भे पुत्रवत्सलस्य पितुः समाश्वासनाय सन्देष्टुमुचितं कञ्चिदर्थं='वनवासस्तातेनादिष्टस्तातवचनानुपालनधर्मसाधकत्वात् वार्धकासाध्यानामारण्यकव्रतानां पटुकरणत्वदशायामस्यां सुखानुष्ठानसिद्धिसम्पादकत्वाच्चास्माकमिष्ट एव । अतोऽस्मद्वनवासक्लेशचिन्तयात्मनो हृदयं न मनागपि तातो व्यथयितुम् अर्हतीत्येवं रूपं वा । नित्यास्यतैव वनवासचिरविच्छिन्ना भवित्री तातचरणशुश्रूषा वनवासनिस्तरणोत्तरकाले यथास्माभिर्भूयोऽनुवर्तयितुम् लभ्येत, तथा तातेन पुत्रवियोगशोकादात्मा जराजर्जरदेहो यत्नेन रक्षणीयः—इत्येवं रूपं वा । अन्यादृशमेव वा प्रतिपत्तिभिर्यथाप्रतिभोदयसंभावनीयम् । ध्यात्वा चित्तोपस्थितेष्वर्थेषु मध्ये अयं वा संदेशार्होऽसौ वा संदेशाऽर्हः इति दीर्घकालं विमर्शपूर्वम्निश्चित्य, वक्तुं प्रस्फुरिताधराः अधरस्फुरणप्रकाशितवचनप्रयत्नाः भूत्वेति शेषः । वाष्पस्तम्भितकण्ठत्वात् सद्यः प्रियपितृपरिजन-

---

सुमन्त्र--शृंगवेरपुर में रथ से उतर कर अयोध्या की ओर मुंह कर सभी खड़े हो गये और उन्होंने महाराज को सदेश देना प्रारम्भ किया--

पहले तो बहुत देर तक वे कुछ सोचते ही रहे, फिर कुछ कहने के लिए उनके होठ फड़के, फिर आँसुओं से उनका गला रुँध गया और मुँह से बिना कुछ कहे ही वे जंगल की ओर चलते बने ।। १७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—कथमनुक्त्वैव वनं गताः ? (इति द्विगुण मोहमुपगतः)

सुमन्त्रः—(ससम्भ्रमम्) बालाके ! उच्यताममात्येभ्यः—अप्रतीकारायां दशायां वर्तते महाराज इति ।

काञ्चुकीयः—तथा । (निष्क्रान्तः)

देव्यौ—महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि । [महाराअ ! समस्ससिहि समस्ससिहि ।]

राजा—(किञ्चित् समाश्वस्य)

वियोगप्रभवेन स्तम्भितो विरुद्धव्यापारः कण्ठो यस्य तस्य भावस्तत्त्वं तस्मादनुक्त्वा चिन्तितमपि असन्दिश्यैव वनं गताः, एतेन तेषामवचनस्य शोकवेगपराहतचित्तताप्रसूतत्वेन कारणान्तरजन्यता निरस्ता । दशरथादीन् प्रति तेषां भावातिशयो व्यञ्जितः । अवचनस्य वाष्पस्तम्भितकण्ठत्वेन हेतुना समर्थनात् काव्यलिङ्गम् । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १७ ॥

राजा—कथम् अनुक्त्वैव=अकथयित्वैव, वनम्=अरण्यं, गताः=प्राप्ताः । मया जनितस्य वनवासात्मकखेदस्यातिभूमिप्राप्तिरेव वचनप्रतिबन्धं करोति । कथमहमेव तथाभावे निदानमिति राज्ञो भावः । अतएव द्विगुणमोहोपगतेः सङ्गतिः ।

सुमन्त्रः—(ससम्भ्रमम्=साश्चर्यम्) बालाके ! उच्यताम्=कथ्यताम्, अमात्येभ्यः=मंत्रिभ्यः, अप्रतीकारायां=प्रतीकारायोग्यायाम्, यस्याः प्रतिकारो नैव कर्तुं शक्यते इति भावः । दशायाम्=अवस्थायाम्, वर्त्तते=अस्ति, महाराजः=नृपो दशरथः इति ।

काञ्चुकीयः—तथा=तथैव करोति । (निष्क्रान्तः=बहिर्गतः)

देव्यौ—महाराज=हे नृप, समाश्वसिहि=आश्वस्तो भव ।

राजा—(किञ्चित्=ईषित्, समाश्वस्य=आश्वासनं प्राप्य ।)

राजा—क्या कहा ? बिना कुछ कहे ही जंगल चले गये । (इतना कहकर मूर्च्छित हो गये)

सुमन्त्र—(घबड़ाकर) बालाकि, मंत्रियों से जाकर कहो कि महाराज की स्थिति चिन्ताजनक है ।

कञ्चुकी—जैसी आज्ञा (प्रस्थान)

देवियां—महाराज, धीरज रखें, धीरज धरें ।

राजा—(कुछ संभलकर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अङ्गं मे स्पृश कौशल्ये ! न त्वां पश्यामि चक्षुषा ।
रामं प्रति गता बुद्धिरद्यापि न निवर्तते ॥ १८ ॥

पुत्र ! राम ! यत् खलु मया सन्ततं चिन्तितम्—

राज्ये त्वामभिषिच्य सन्नरपतेर्लाभात् कृतार्थाः प्रजाः–
कृत्वा, त्वत्सहजान् समानविभवान् कुर्वात्मनः सन्ततम् ।
इत्यादिश्य च ते, तपोवनमितो गन्तव्यमित्येतया–
कैकेय्या हि तदन्यथा कृतमहो निःशेषमेकक्षणे ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे कौशल्ये ! मे अङ्गं स्पृश । त्वाम् चक्षुषा न पश्यामि । रामं प्रति गता बुद्धिः अद्य अपि न निवर्त्तते ।। १८ ।।

अङ्गमिति । कौशल्ये=हे रामजननि ! मे=मम, अङ्गं=शरीरं, स्पृश=स्पर्शं कुरु, अर्थात् अङ्गग्लानिशान्त्यर्थं त्वत्सान्निध्यज्ञानार्थञ्च । त्वाम् चक्षुषा=नेत्रेण, अत्र चक्षुषेति करणतया प्रसिद्धस्य चक्षुषः शब्देनोपादानम् वैशिष्ट्यविवक्षार्थम् । तच्च उपहतशक्तित्वलक्षणम् । अर्थात् उपहतदर्शनसामर्थ्येन नेत्रेण न पश्यामि—अथानेन विपदुपनिपातेन यदि मदीया दर्शनशक्तिः नालोप्स्यत तदा तु दर्शनेनैव तव सान्निध्यं ज्ञात्वा अङ्गस्पर्शनेन त्वां स्वसान्निध्यसूचनाय नाक्लेशयिष्यमिति भावः । रामं प्रति गता बुद्धिः=मन इत्यर्थः, अद्यापि न निवर्त्तते=न प्रत्यागच्छति । रामगतमना अहं न किमपि जानामि, न च मे चक्षुरादीनि इन्द्रियाणि स्वव्यापारसमर्थानि, तेषां मनसा सह सन्निकर्षाभावात् । काव्यलिङ्गमलंकारः, अनुष्टुप् छन्दः ।। १८ ।।

पुत्र=हे सुत, राम=कौशल्यानन्दन, यत् खलु=इति निश्चये, मया=दशरथेन, सन्ततम्=सततम्, चिन्तितम्=शोचितम् । सर्वथा स्वचिन्तितस्य विनाशे कैकेयी कारणमिति नृपो दशरथः कथयति—

अन्वयः—त्वां राज्ये अभिषिच्य, सन्नरपतेः लाभात् प्रजाः कृतार्थाः कृत्वा, त्वत् सहजान् सन्ततम् आत्मनः समानविभवान् कुरु इति च ते आदिश्य इतः तपोवनं गन्तव्यम् इति एतया हि कैकेय्या तत् निःशेषम्, अहो एकक्षणे अन्यथा कृतम् ।।१९।।

राज्ये त्वामिति—त्वाम्=रामम्, राज्ये=राजपदे, अभिषिच्य=व्यवस्थाप्य,

---

कौशल्ये, मेरी देह का स्पर्श करो, मैं आँखों से तुम्हें देख नहीं पा रहा हूँ, राम की ओर लगा मेरा मन अब तक लौट नहीं रहा है ।। १८ ।।

बेटा राम, मैं सदा सोचता आ रहा था कि—

तुम को राजा बनाकर, प्रजा को अच्छे राजा के लाभ से कृतार्थ कर और तुम्हें यह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुमन्त्र ! उच्यतां कैकेय्याः—

गतो रामः, प्रियं तेऽस्तु, त्यक्तोऽहमपि जीवितैः ।
क्षिप्रमानीयतां पुत्रः, पापं सफलमस्त्विति ॥ २० ॥

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

सन्नरपतेः=प्रशस्तस्य राज्ञस्त्वद्रूपस्य, लाभात्=प्राप्तेः, प्रजाः=जनाः, कृतार्थाः=कृतकृत्याः, धन्याः वा, कृत्वा=विधाय, स्वत्सहजान्=लक्ष्मणादींस्त्रीन्, सन्ततम्=निरन्तरम्, आत्मनः=स्वस्य, समानविभवान्=तुल्यभोग्यसम्पत्कान्, कुरु=विधेहि, इति=एव, च=पुनः ते=तुभ्यम् सम्बन्धेऽत्र षष्ठी, आदिश्य=व्याहृत्य, इतः=अयोध्यातः नगराद्वा, तपोवनम्=तपसे समुपयुज्यमानं किमपि काननम्, गन्तव्यम्=गमनं कर्त्तव्यमिति (यत् खलु मया सन्ततम् चिन्तितम् तद् वस्तु) इति=इत्थम्, एतया कैकेय्या तत्, सर्वम् चिन्तितम्=वस्तु, निःशेषम्=अखिलम्, अहो=कष्टम्, एकक्षणे=क्षणमात्रेण, अन्यथाकृतम्=विपरीतताम् गमितम् । कैयेयी एव सर्वानर्थहेतुभूतेति तात्पर्यम् । शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ॥ १९ ॥

सुमन्त्र=सारथे, उच्यताम्=कथ्यताम् कैकेय्याः—

अन्वयः—रामः गतः प्रियं ते अस्तु, जीवितैः अहमपि त्यक्तः, पुत्रः क्षिप्रम् आनीयताम्, पापम् सफलम् अस्तु ॥ २० ॥

गत इति । रामः=कौशल्यानन्दनः, गतः=वनं गतः, प्रियं तेऽस्तु—त्वं तद्वनगमनश्रवणेन प्रीता भव । जीवितैः=प्राणैः अहमपि परित्यक्तः । रामवनगमनेन मृतप्रायोऽहम्, पुत्रः=भरतः, क्षिप्रं=शीघ्रम्, आनीयताम्, पापम्=रामनिर्वासनरूपम्, सफलं=भरताभिषेकेण फलेन सहितम् यथा तथा अस्तु=जायताम् । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २० ॥

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति=यथादिशति, महाराजः=नृपो दशरथः ।

कहकर कि 'अपने भाइयों को सदा अपनी तरह सम्पन्न बनाये रखना', मैं वृद्धावस्था में तपोवन चला जाऊँगा । किन्तु, हाय ! मेरा यह सब सोचा हुआ कैकेयी ने क्षण भर में पलट डाला ॥ १९ ॥

सुमन्त्र कैकेयी से कह दो—

राम जंगल गये । मेरे प्राण भी मुझे छोड़ चले । अब तुम अपना मनोरथ पूरा कर लो अपने बेटे भरत को बुला लो । तुम्हारा षड्यंत्र सफल हो ॥ २० ॥

सुमन्त्र—महाराज की जैसी आज्ञा हो ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा–(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये ! रामकथाश्रवणसन्दग्धहृदयं मामाश्वासयितुमागताः पितरः कोऽत्र ?

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः ।

राजा—आपस्तावत् ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः । इमा आपः ।

राजा—(ऊर्ध्वम्=आकाशम्, अवलोक्य=दृष्ट्वा) अये=इति विषादे; रामकथा=रामस्य वृत्तम्, श्रवणसंदग्धहृदयं=श्रवणेन सन्दग्धम् सम्यक् प्रकारेण दग्धम् भस्मीभूतं हृदयम् यस्य तं तथाभूतम्, माम्=दशरथम्, आश्वासयितुम्=सान्त्वयितुम् । पितरः=पितृभूताः पितृपितामहादयः, आगताः=पुरस्तादागताः विलोक्यन्ते । पूर्वजदर्शनस्य सन्निहितमरणसूचकत्वम् । एतच्च नियतमरणख्यापकं लिङ्गपरिशिष्टम् । तदुक्तम्—

श्वकाककङ्कगृध्राणां प्रेतानां यक्षरक्षसाम् ।
पिशाचोरगनागानां भूतानां विकृतामपि ।।
यो वा मयूरकण्ठाभं विधूमं वह्निमीक्षते ।
आतुरस्य भवेन्मृत्युः स्वस्थो व्याधिमवाप्नुयात् ।। (सु० सू० अ० ३०)

कोऽत्र=अत्र अस्मिन् स्थाने, कः=सेवकः अस्ति । (प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा)
काञ्चुकीयः—जयतु=सर्वतोभावेन विजयताम्, महाराजः=नृपदशरथः=
राजा—आपः=जलम्, तावदानयेति ।
काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति=यथादिशति, महाराजः=नृपः । निष्क्रम्य==बहिर्गत्वा, प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा) जयतु=विजयताम्, महाराजः=नृपदशरथः । इमा आपः=जलम्, अप्शब्दो नित्यस्त्रीलिंगो बहुवचनान्तः । धार्मिकपवित्रकार्येषु प्रथममाचमनं विहितम्, पूज्यपूर्वजदर्शनात्प्रागपि तदपेक्षितम् ।

राजा—(ऊपर की ओर देखकर) अच्छा, राम की इस विपद्-गाथा से दग्धहृदय मुझको सान्त्वना देने के लिए पितरगण आ गये हैं । कोई यहाँ है ?

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—जय हो महाराज की ।

राजा—जल लाओ ।

कञ्चुकी—जो आज्ञा (बाहर से जल लाकर) जय हो महाराज की । यह जल है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—(आचम्यावलोक्य)

अयममरपतेः सखा दिलीपो, रघुरयमत्रभवानजः पिता मे ।
किमभिगमनकारणं, भवद्भिः सह वसने समयो ममापि तत्र ॥ २१ ॥

राम ! वैदेहि ! लक्ष्मण ! अहमितः पितॄणां सकाशं गच्छामि । हे पितरः । अयमहमागच्छामि ! (मूर्च्छया परामृष्टः)

(काञ्चुकीयो यवनिकास्तरणं करोति)

राजा—(आचम्य=आचमनं कृत्वा, अवलोक्य=दृष्ट्वा)

अन्वयः—अयम् अमरपतेः सखा दिलीपः, अयं रघुः, अत्र भवान् मे पिता अजः। अभिगमनकारणं किम् ? तत्र भवद्भिः सह वसने ममापि समयः (प्राप्तः) ॥२१॥

अयमिति । अयम्=पुरो दृश्यमानः, अमरपतेः=अमराणाम् देवानाम् पतेः= इन्द्रस्य, सखा=मित्रम् दिलीपः तदाख्यया प्रथितः मत्प्रपितामहः । अयम्=पुरो· दृश्यमानः, रघुः=मम पितामहः । अत्रभवान्=श्रीमान्, मे=मम, पिता=जनकः, अजः=एतदाख्यः नृपः । अभिगमनकारणम्=भवतामत्र मर्त्यभुवि समागमनस्य प्रयोजनम् किम् ? न कोऽपि हेतुरत्रभवतामागमनस्येत्यर्थः । भवद्भिः सह वसने निवासे तत्र तस्मिन् लोके यत्र भवन्तो निवसन्ति, ममापि समयः=अवसरः प्राप्त इति शेषः । मम मृत्युकालः समुपस्थित इति । अत्र पर्यायोक्तिरलङ्कारः । पुष्पि· ताग्रा वृत्तम् ॥ २१ ॥

राम ! =हे कौशल्यानन्दन, वैदेहि=हे विदेहतनये !, लक्ष्मण=हे सौमित्रेय ! अहम् =दशरथः, इतः =अयोध्यातः, पितॄणाम्=अजादीनाम्, सकाशं समीपम्, गच्छामि=यामि । हे पितरः, अयमहम् =दशरथः, आगच्छामि समागतोऽस्मि। (मूर्च्छया=हतचेतनया, परामृष्टः=आक्रान्तः) ।

(काञ्चुकीयः यवनिकास्तरणं करोति=तिरस्करणीनिवेशनम् करोति राजदर्शनपरिहाराय । अनेन दशरथो मृत इति सूचितम्)

राजा—(आचमन करके और देखकर)

ये हैं देवराज इन्द्र के मित्र महाराज दिलीप, ये हैं महाराज रघु, ये हैं माननीय मेरे पूज्य पिताजी अज । आप लोगों को यहाँ आने का क्या कारण है ? अब तो मेरे लिए भी आप सबों के साथ रहने का समय आ पहुँचा है ॥ २१ ॥

ओ राम, सीता, लक्ष्मण, अब मैं यहाँ से पितरों के पास जारहा हूँ । हे पितरो ! यह मैं आया । (मूर्छित हो जाते हैं)

(कञ्चुकी वस्त्र से ढँकता है)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सर्वे—हा हा महाराजः। हा हा महाराजः। [हा हा महाराओ। हा हा महाराओ।]

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति द्वितीयोऽङ्कः।

❀ ❀ ❀

अथ तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति सुधाकारः)

सुधाकारः—(सम्मार्जनादीनि कृत्वा) भवतु, इदानीं कृतमत्र कार्यमार्यसम्भवकस्याज्ञप्तम्। यावन्मुहूर्तं स्वप्स्यामि। (स्वपिति) [भोदु, दाणि किदं एत्थ कय्यं अय्य सम्भवअस्स आणत्तं। जाव मुहूत्तं सुविस्सं।]

सर्वे— हा हा महाराज इति=महाराजः प्रमीत इति शेषः। पुंसामुक्तिरियम्। हा हा महाराओ इति तु स्त्रीणामुक्तिः।

(निष्क्रान्ताः सर्वे=इति द्वितीयाङ्कपरिसमाप्तिः)

इति द्वितोयोऽङ्कः।

❀ ❀ ❀

अथ तृतीयोऽङ्क आरभ्यते। तत्र दशरथप्रतिमागृहम् कौशल्यादिभिर्द्रक्ष्यमाणं प्रसाधयितुम् सुधाकारस्य नियुक्तस्य प्रवेशमाह—

(ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति=प्रवेशं करोति, सुधाकारः; सुधा—चूर्णम्, तां करोतीति विग्रहेण भवनभित्तिधवलीकरणाय सुधालेपनाधिकृतः सुधाकार इत्युच्यते। स चात्र दशरथस्य स्वर्गप्रयाणानन्तरं तस्य प्रतिमागृहपरिमार्जनेऽधिकृतो वेदितव्यः)

सुधाकारः—(सम्मार्जनादीनि=स्वच्छताप्रभृतीनिः, कृत्वा=विधाय) भवतु=

सभी—हा हा महाराज ! हा हा महाराज।

(सबों का प्रस्थान)

द्वितीय अङ्क समाप्त।

❀ ❀ ❀

(सुधाकर का प्रवेश)

सुधाकर--(झाड़ू लगाकर) अच्छा, तो आर्य संभवक ने जो काम दिया, वह तो पूरा हो ही गया, अब कुछ देर सो लूँ। (सोता है)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(प्रविश्य)

भटः—(चेटमुपगम्य ताडयित्वा) अङ्घो दास्याः पुत्र ! किमिदानीं कर्म न करोषि ? (ताडयति) [अङ्घो दासीएपुत्त ! किं दाणि कम्म ण करेसि ?]

सुधाकारः—(बुद्ध्वा) ताडय मां, ताडय माम् ! [तालेहि मं तालेहि मं ।]

भटः—ताडिते त्वं किं करिष्यसि ? [ताडिदे तुवं किं करिस्ससि ?]

सुधाकारः—अधन्यस्य मम कार्तवीर्यस्येव बाहुसहस्रं नास्ति । [अनण्णस्य मम कत्तवीअस्स विअ बाहुसहस्सं णत्थि ।]

तिष्ठतु, इदानीम् आज्ञप्तम् = आदिष्टम् अधुना, कृतम् = विहितम्, अत्र = अस्मिन् स्थाने, कार्यम् = कृत्यम्, आर्यसम्भवकस्य = पूज्यस्य संभवकाख्यस्य काञ्चुकीयस्य-सम्भवकाख्यया तु पद्मावतीभटः स्वप्नवासदत्ते व्यवहृतः । (स्वपिति = शयनं करोति) ।

(प्रविश्य = प्रवेशङ्कृत्वा)

भटः—(चेटम् उपगम्य = समीपं गत्वा, ताडयित्वा = ताडनं कृत्वा) अङ्घो इति–निपातोऽयं सकोपमामन्त्रणार्थः। दास्याः पुत्र ! अदासी पुत्र एव दासीपुत्रत्व-मारोप्य संबोधनं क्रियते निन्दार्थम् । 'षष्ठ्या आक्रोशे' इत्यलुक् । किम् = कथम्, इदानीम् = अधुना, कर्म = स्वनियोगम्, कर्त्तव्यत्वेनादिष्टं व्यापारम्, न = नहि, करोषि ।

सुधाकारः—(बुद्ध्वा = प्रबोधनङ्कृत्वा) कृतकर्मणः आत्मनो निरपराधत्व-निश्चयात् गर्वित आह—ताडय मां ताडयेति ।

भटः—ताडिते = ताडनं कृते सति 'त्वयि' इति विशेषमध्याहार्यम् । अथवा भावे क्तः । तथा च सति ताडने कृतेऽपि त्वं किं करिष्यसीति स्वाभिमानः ।

सुधाकारः—अधन्यस्य = बाहुसहस्ररहितत्वप्रयुक्तमधन्यत्वं प्राप्तस्य मम = सुधाकारस्य, कार्त्तवीर्यस्य कृतवीर्यसूनोरर्जुनस्य, इव = यथा, बाहुसहस्रम् = नास्ति । बाहुसहस्रफलं पृच्छति—बाहुसहस्रेणेति ।

(भट का प्रवेश)

भट—(चेट के पास जाकर तथा उसे पीटते हुए) अबे चेरी का बेट , काम क्यों नहीं करता । (पीटता ही जाता है)

सुधाकार—(जग कर) पीटो, मुझे और पीट लो

भट—पीटूंगा ही तो तुम क्या कर लोगे ?

सुधाकार—मेरा तो भाग्य ही खोटा है जो सहस्रबाहु की तरह [illegible]हें न हुई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भटः—बाहुसहस्रेण किं कार्यम् ? [बाहुसहस्सेण किं कय्यं ?]

सुधाकारः—त्वां हनिष्यामि । [तुवं हणिस्सं ।]

भटः—एहि दास्याःपुत्र ! मृते मोक्ष्यामि । (पुनरपि ताडयति) [एहि दासिएपुत्त ! मुदे मुञ्चिस्सं ।]

सुधाकारः—(रुदित्वा) शक्यमिदानीं भर्तः ! मेऽपराधं ज्ञातुम् । [सक्कं दाणिं भट्टा ! मे अवराहं जाणिदुम् ।]

भटः—नास्ति किलापराधो नास्ति । ननु मया सन्दिष्टो भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यविभ्रष्टकृतसन्तापेन स्वर्गं गतस्य भर्तुर्दशरथस्य प्रतिमागेहं द्रष्टुमद्य कौशल्या-

---

भटः—बाहुसहस्रेण किम् कार्यम् इति प्रश्नः ।

सुधाकारः—त्वाम्=भटम्, हानिष्यामि=मारयिष्यामि—इत्युद्दण्डतापूर्णमुत्तर-माकर्ण्य महाकोपाविष्टो भटः स्वनिश्चयं ब्रवीति ।

भटः–एहित्यादि, एहि=आगच्छ, मृते मोक्ष्यामि—ताडनवशात् त्वयि मरणं गते सति त्वाम् मोक्ष्यामि, यावत् त्वं मृतो भवसि तावत् त्वां ताडयामीत्यर्थः । (पुनरपि ताडयति=ताडनं करोतीति)

सुधाकारः—(रुदित्वा=रोदनं कृत्वा) सुधाकारमिदानीं भृत्यस्वभावसुलभेन प्रकारेण सम्यक् ताडितो भूत्वा साहसमताडनहेतुभूतम् स्वमपराधं रोदनपूर्वकम् काक्वाऽऽक्षिपति । शक्यम्=इत्यत्र भावे प्रत्ययः, जानातेः=कर्त्तरि तुमुन् तेन कर्मणि द्वितीया । इदानीम्=अधुना, भर्त्तः=स्वामी, मे=मम, अपराधः=दोषः, ज्ञातुम्=को मेऽपराध इति ज्ञातुमित्यर्थः ।

भटः—नास्तीति, इहापि प्रश्नः काक्वा अस्त्येवेत्यर्थः । अपराधं सविस्तरं प्रतिपादयति—ननु मयेति । ननु=निश्चयेन, मया=भटेन, संदिष्टः=आज्ञप्तः त्वमिति शेषः । भर्तृदारकस्य, रामस्य=कौशल्यानन्दनस्य, राज्यविभ्रष्टकृतसंतापेन= राज्यात्=साम्राज्यात्, विभ्रष्टं=विभ्रंशः, तेन कृतसंतापेन=राज्यविभ्रंशोत्पा-दितेन सन्तापेन, स्वर्गं गतस्य=मृतस्य । अत्र दशरथमरणस्य रामराज्यविभ्रंशो हि

भट—अगर हजार बाँहें ही होतीं तो क्या कर लेता ?

सुधाकार—तो तुम्हें खत्म कर देता ।

भट—अरे दासीके बच्चे, अब तो तुम्हें खत्म करके ही दम लूँगा । **(फिर पीटता है)**

सुधाकार—(रोकर) तो क्या मालिक, मेरा कसूर बता सकते हैं ?

भट—कुछ अपराध नहीं, सचमुच तुम्हारा कुछ भी कसूर नहीं । बता मैंने जो तुम्हें आज्ञा दी थी कि राजकुमार राम के राज्यच्युत होकर वन चले जाने के कारण शोकाकुल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुरोगैः सर्वैरन्तःपुरैरिहागन्तव्यमिति । अत्रेदानीं त्वया किं कृतम् ? [णत्थि किल अवराहो णत्थि। ण मए सन्दिट्ठो भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जबिब्भट्ठकिदसन्दावेण सग्गं गदस्स भट्टिजो दसरहस्स पडिमागेहं देट्ठुं अज्ज कोसल्लापुरोएहि सव्वेहि अन्तेउरेहि इह आअन्तव्वं त्ति । एत्थ दाणि तुए किं किदं ?]

सुधाकारः—पश्यतु भर्ता अपनीतकपोतसन्दानकं तावद् गर्भगृहम् । सौधवर्णकदत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः । अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि । प्रकीर्णा बालुकाः । अत्रेदानीं मया किं न कृतम् ? [पेक्खदु भट्टा अवणीदकवोदसन्दाणअं दाव गब्भगेहं । सोहवण्णअदत्तचन्दणपञ्चाङ्गुला भित्तीओ । ओसत्तमल्लदामसोहीणि दुवाराणि । पइण्णा बालुआ । एत्थ दाणि मए किण किदं ?]

कारणम् । भर्तुः=दशरथस्य प्रतिमागेहम्=मृतानां राज्ञाम् स्मृतिचिह्नभूताः प्रतिमा यत्र स्थाप्यन्ते तद् गृहम्, द्रष्टुम्=अवलोकितुम्, अद्य कौशल्यापुरोगैः=कौशल्यापुरोगा पुरोगामिनी येषां तैः । अन्तःपुरैः=अन्तःपुरस्थाभिः राज्ञीभिरित्यर्थः । इह=अत्र आगन्तव्यमिति । अत्र=अस्मिन्, प्रतिमागृहे, त्वया=सुधाकारेण किं कृतम्=किं विहितमिति प्रश्नः ?

सुधाकारः—सम्प्रति स्वापराधे ज्ञाते भृत्यः सर्वं कार्यं मया सुसम्पादितमिति स्वस्य निरपराधत्वं समर्थयति, पश्यतु=अवलोकयतु, भर्त्ता=स्वामी । अपनीतम्=दूरीकृतम्, कपोतसंदानकं=कपोतनीडं यस्मात् तत् । चिरापरिमार्जितेषु हि गृहेषु कपोतादयो नीडानाबध्नन्ति । अथवा—कपोतसन्दानकानि=कपोतकुलायाः, गर्भगृहम्=मध्यगृहम् । सौधवर्णकदत्तचन्दनपञ्चाङ्गुलाः=सौधे सुधामये वर्णके आलेपे दत्तं निवेशितम् चन्दनपञ्चङ्गुलम्=चन्दनमयपञ्चाङ्गुलन्यासो यासु ताः। अवसक्तमाल्यदामशोभीनि = अवसक्तैः = संयोजितैः, माल्यदामभिः=पुष्पस्रग्गुणैः, शोभितुं शीलमेषामिति तथाभूतानि द्वाराणि । प्रकीर्णाः विस्तीर्णाः, बालुकाः=सूक्ष्मसिकताः पादस्पर्शसुखार्थाः । यथा साम्प्रतमपि शोभार्थं रक्तसूक्ष्मेष्टकाचूर्णम् गृहप्राङ्गणेषु मार्गेषु च विकीर्यते । एवं सर्वं स्वकृतं कार्यजातम् प्रदर्श्य भटोक्त-

---

महाराज दशरथ ने प्राण त्याग दिये, उनकी प्रतिमा का दर्शन करने के लिए उनका समस्त अन्तःपुर प्रतिमागृह जाने वाला है । बता तूने यहाँ क्या काम किया ?

सुधाकार—देख लीजिए—प्रतिमागृह के अपरिमार्जन से पक्षियों ने घोंसले बना लिये थे, वे हटा दिये गये हैं, दीवालें पुतवा दी गयी हैं, उन पर पांचों अंगुलियों का आकार बना दिया गया है । दरवाजे पुष्पमालाओं से सजा दिये गये हैं, सजावट के लिए चारों ओर रेत बिछा दी गयी है । आप ही कहिए यहाँ मैंने क्या नहीं किया ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भटः—यद्येवं विश्वस्तो गच्छ। यावदहमपि सर्वं कृतमित्यमात्याय निवेदयामि।
[जइ एवं विस्सत्थो गच्छ। जाव अहं वि सव्वं किदं त्ति अमच्चस्स णिवेदेमि।]

(निष्क्रान्तौ)

(प्रवेशकः)

(ततः प्रविशति भरतो रथेन सूतश्च)

भरतः—(सावेगम्) सूत ! चिरं मातुलपरिचयादविज्ञातवृत्तान्तोऽस्मि। श्रुतं

दिशैव प्रश्नकाक्वा प्रतिक्षिपति सुधाकारः—अत्रेदानीमिति। अत्र=अस्मिन् विषये, त्वदाज्ञप्ते=यत्त्वया संदिष्टं तत्सर्वं मया सुसम्पादितमेव।

भटः—सर्वकार्यसम्पादनेन सन्तुष्टो भटः ब्रूते—यद्येवमिति=एवम्=इत्थम् सर्वं कृतमिति भावः। तर्हि विश्वस्तः=ताडनभयरहितः, गच्छ=याहि, विश्रामार्थमिति भावः। यावन्निवेदयामीत्यत्र 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्' इति यावद्योगे लट्-लकारस्य प्रयोगः। अहमपि=भटोऽपि, सर्वं कृतम्=आदिष्टं सर्वं कार्यम् सम्पादितम् इति, अमात्याय=सचिवाय, निवेदयामि।

(निष्क्रान्तौ=बहिर्गतौ)

(प्रवेशकः=विष्कम्भकवत् संक्षिप्तार्थो भाविवृत्तसूचकः)

तल्लक्षणं यथा—

वृत्तवर्त्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तुविष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः॥
एकानेकगतः शुद्धः संकीर्णो नीचमध्ययोः।
तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः॥

सूचितं देवीनां प्रतिमागृहागमनं भरतसमाश्वासनफलकतया घटयिष्यन् प्रतिमागृहे देवीसन्निधानात् प्रागेव भरतसन्निधापनाय भरतस्य 'क्षिप्रमानीयताम् पुत्रः' इति पितृनिदेशात् आनीयमानस्य रथगतस्य प्रवेशमाह—ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति=प्रवेशं करोति, भरतः=कैकेयीसुतः, रथेन=स्यन्दनेन। सूतश्च=सारथिश्च पुनः।

भरतः—(सावेगम्=सोत्पीडम्) सूत=सारथे, चिरम्=बहुकालपर्यन्तम्, मातुलपरिचयात्=मातुलस्य युधाजितः, परिचयात्=तद्गृहे भृशनिवासात्

भट—यदि बात ऐसी है तो इतमीनान से चले जाओ। मैं भी सचिव महोदय को इसकी सूचना देता हूँ।

(दोनों का प्रस्थान)

(प्रवेशक)

(रथ में बैठे भरत तथा सारथी का प्रवेश)

भरत—(दुःखी होकर) सारथि, बहुत दिनों तक ननिहाल में रहने के कारण घर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मया दृढमकल्यशरीरो महाराज इति । तदुच्यताम्—

पितुर्मे को व्याधिः

सूतः— हृदयपरितापः खलु महान्

भरतः—किमाहुस्तं वैद्याः

सूतः— न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः ।

भरतः—किमाहारं भुङ्क्ते शयनमपि

सूतः— भूमौ निरशनः

भरतः—किमाशा स्याद्

अविज्ञातवृत्तान्तः=अविदितराजसमाचारः अस्मि । श्रुतम्=ज्ञातम्, मया=भरतेन दृढम्=नितान्तम्, अकल्यशरीरः=सामयदेहः । तत्=तस्मात्, उच्यताम्=कथ्यताम्, त्वया । त्वं हि मत्पित्राज्ञया मां नेतुमागतस्तद्वृत्तान्तं तत्त्वतो जानासीत्यभिप्रायः । पितुः=जनकस्य, मे=मम, को व्याधि=कः रोगः ? भरतस्य प्रश्नान् सूतेन दत्तान्युत्तराणि चैकपद्येनैवाह—

सूतः—हृदयपरितापः=हृदयस्य परितापः मानसिकः, न तु शारीरिको रोगः। खलु=इति निश्चये, महान्=अतिमात्रः।

भरतः–किमाहुः=किं कथितम् ? तम्=पितरं, वैद्याः=भिषजः । अत्र भरतस्य जिज्ञासा अस्ति—यच्चिकित्सकानाम् रोगस्य साध्यासाध्यत्वे का मीमांसेति ।

सूतः—न=नहि, खलु । भिषजः=वैद्याः, तत्र न खलु निपुणाः हृदि परितापे विषये तत्त्वज्ञाः नैव भवन्तीति ।

भरतः—भरत पुनः पृच्छति, आहारं भोजनं भुङ्क्ते=अश्नाति, शयनमपि=शयनं च अनुभवति न वेति ।

सूतः—भूमौ निरशन इति—स्थण्डिले निराहारो वर्त्तत इत्यर्थः।

भरतः—किमाशा स्यात्=पितुर्जीवितं प्रति आशा किं संभाव्यते ।

की स्थिति से बिल्कुल अनजान बना रहा । मैंने सुना है महाराज बहुत बीमार हैं । तुम बताओ न उन्हें क्या रोग है ?

सूत—उन्हें दारुण मानसिक रोग है ?

भरत—इस सम्बन्ध में वैद्यों की राय क्या है ?

सूत--चिकित्सकों को कुछ भी पता नहीं चलता है ?

भरत--खाना क्या खाते हैं ? उन्हें नींद तो आती है ?

सूत--खाते कुछ भी नही है । धरती पर सोते हैं ।

भरत--जीने की कुछ आशा है ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूतः— दैवं
भरतः— स्फुरति हृदयं वाहय रथम् ॥ १ ॥
सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (रथं वाहयति)
भरतः—(रथवेगं निरूप्य) अहो नु खलु रथवेगः । एते ते,

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया,
नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे ।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं-
रथश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥ २ ॥

सूतः—दैवम्=दैवाधीनमिदानीमिति शेषः । न किञ्चित् वक्तुं शक्यते ।

भरतः—भरतः सूतस्यैताद्दशोक्त्यनिष्टशङ्कापर्याकुलो रथं शीघ्रं नेतुमादिशति स्फुरति=पितरं जीवन्तं द्रष्टुम् त्वरति, हृदयं=मम मनः । अतः रथं=स्यन्दनं वाहय=शीघ्रं गमय । शिखरिणी छन्दः ॥ १ ॥

भरतः—(रथवेगम्=स्यन्दनगतिम्, निरूप्य=अवलोक्य) अहो=आश्चर्यम्, नु खलु=निश्चयेन, रथवेगः=स्यन्दनगतिः—त्वया बाह्यमानस्य रथस्य वेगो विस्मयकर इत्यर्थः । एते ते=रथवेगं निरूपयन्ति ।

अन्वयः—द्रुतरथगतिक्षीणविषयाः द्रुमाः धावन्ति इव, मही उद्वृत्ताम्बुः नदी इव नेमिविवरे निपतति, अरव्यक्तिः नष्टा, चक्रवलयं जवात्स्थितमिव (प्रतिभाति), अश्वोद्धूतं रजः च पुरतः पतति न अनुपतति ॥ २ ॥

व्याख्या—द्रुतरथगतिक्षीणविषयाः=द्रुतया=शीघ्रया रथगत्या क्षीणविषयाः अल्पीभूतदृष्टिगोचरांशाः सन्तः, द्रुमाः=वृक्षाः, धावन्ति इव=धावन्त इव प्रतीयन्ते । मही=भूमिः, उद्वृत्ताम्बूः=उद्भ्रान्तजला, नदीव=सरिदिव । आभासमानभ्रमियोगान्नदीसाम्यम् । नेमिविवरे = प्रधिरन्ध्रे, निपतति = निपतन्तीव

सूत—भगवान् जाने ।
भरत—मेरा हृदय जोर से धड़क रहा है सूत, रथ को तेज हांको ।
सूत--जो आज्ञा । **(रथ हांकता है)**
भरत—(रथवेग को देखकर) वाह—

रथ की तेज चाल से वृक्ष छोटे से दिखाई दे रहे हैं और दौड़ते नजर आते हैं। उछलते हुए जलवाली नदी की तरह धरती पहिए की धुरी में गिरती प्रतीत होती है। तेजी से घूमने के कारण रथ-चक्र के अरे दीख नहीं पड़ते । घोड़ों के टापों से उठने वाली धूलि पीछे नहीं आगे गिर रही है ।। २ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूतः—आयुष्मन् ! सोपस्नेहतया वृक्षाणामभितः खल्वयोध्यया भवितव्यम्।
भरतः—अहो न खलु स्वजनदर्शनोत्सुकस्य त्वरता मे मनसः। सम्प्रति हि,

पतितमिव शिरः पितुः पादयोः स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापित-
स्त्वरितमुपगता इव भ्रातरः क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः।
सदृश इति महानिति व्यायतश्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया
परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि वेषं च भाषां च सौमित्रिणा ॥ ३ ॥

प्रतीयते। अरव्यक्तिः = अराणां=नेमिनाभिमध्यावयवानां, व्यक्तिः=स्फुटः-प्रतीतिः, नष्टा=विनष्टा। चक्रवलयम् = चक्रमण्डलम्, जवात्=वेगवशात्, स्थितमिव=गतिरहितमिव भाति। अश्वोद्धूतम्=अश्वखुराघातोत्त्थम् रजश्च पुरतः=अग्रे, पतति=उद्गच्छति न अनुपतति=न रथमनुगच्छति। निमेषमात्रेण, रजोनुपतनगोचरदेशातिक्रमणादित्यर्थः। एतद्रथवेगस्य स्वाभाविकं वर्णनमिति स्वभावोक्तिरलङ्कारः। धावन्तीवेत्यादिषूत्प्रेक्षणात् उत्प्रेक्षालङ्कारश्च। अत उत्प्रेक्षासहकृता स्वभावोक्तिरलङ्कारः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ २ ॥

सूतः—आयुष्मन्=चिरञ्जीव, सोपस्नेहतया=सुस्निग्धत्वेन हेतुना, वृक्षाणाम्=तरूणाम्, अभितः=समन्तात्, खलु=निश्चयेन, अयोध्यया भवितव्यम्, अर्थात् परितः परिदृश्यमानस्य देशस्य समन्ततः वृक्षबाहुल्यनिमित्तकोपश्लेषवत्तया नगरसान्निध्यं व्यज्यते।

भरतः—अहो=आश्चर्यम्, स्वजनदर्शनोत्सुकस्य=स्वजनानां=स्वकीयानां दर्शने उत्सुकः स्वजनदर्शनोत्सुकः तस्य। त्वरता=संभ्रमयुक्तत्वम्, मे=मम, मनसः=चित्तस्य। सम्प्रति हीति श्लोकान्वयि—

अन्वयः—पितुः, पादयोः शिरः पतितमिव, स्निह्यता राज्ञा समुत्त्थापितः इव अस्मि, भ्रातरः त्वरितम् उपागताः इव, मातरः अश्रुभिः मां क्लेदयन्ति इव, सदृशः इति महानिति व्यायतः च इति भृत्यैः सेवया अहं स्तुतः इव, तत्र आत्मनः वेषं च भाषां च सौमित्रिणा परिहसितमिव पश्यामि ॥ ३ ॥

व्याख्या—पितुः = दशरथस्य, पादयोः=चरणयोः, शिरः=उत्तमाङ्गं

सारथि—चिरञ्जीव, वृक्षों की सघनता और शीतलता से मालूम पड़ता है कि अयोध्या अब समीप ही है।

भरत—अहो ! आत्मीयजनों को देखने के लिए मेरा मन कितना उतावला हो रहा है! क्योंकि इस समय—

मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि पूज्य पिताजी के चरणों में नत हूँ और उन्होंने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूतः—(आत्मगतम्) भोः कष्टम्, यदयमविज्ञाय महाराजविनाशमुदर्के निष्फलामाशां परिवहन्नयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः। जानद्भिरप्यस्माभिर्न निवेद्यते। कुतः,

---

पतितमिव=कालान्तरे पतिष्यद् इदानीमेव पतितमिति त्वरातिशयात् प्रतिभातीत्यर्थः। स्निह्यता=स्नेहं दर्शयता, राज्ञा=दशरथेन, समुत्थापितः=पादप्रदेशादाकृष्य स्वाङ्कमारोपितः, इव=यथा, अस्मि=भवामीति। भ्रातरः=रामादयः, त्वरितम्=शीघ्रम्, उपागताः=समीपं प्राप्ता इव, मामिति शेषः। मातरः=कौशल्यादयः, अश्रुभिः=नयनसलिलैः, माम्=भरतम् क्लेदयन्ति=सिञ्चन्ति, इव=यथा, अर्थात् पुत्रागमनप्रसूतानन्दाश्रुभिः आर्द्रयन्तीव मातरः इति। सदृशः=समानवयस्कः, अथवा बहोः कालात् प्रत्यागतोऽपि परिचीयमान इति हेतोः आकृत्या पूर्वसदृश इव भासमानः, महान् इति=पूर्वदृष्टाकारापेक्षया प्रवृद्धाकार इति व्यायतश्चेति=परिचितव्यायामश्चेति, भृत्यैः=सेवकैः, सेवया=प्रीत्या, अहम्=भरतः, स्तुतः इव=प्रीणयितुमिवेत्यर्थः। तत्र=तस्मिन् स्थाने, आत्मनः=स्वकीयम्, वेषम्=केकयदेशोचितपरिधानीयनिवेशं च=पुनः भाषाम्=तद्देशवासावस्थापरिशीलनात्म्यभावेनापि बलान्मुखान्निर्गच्छन्तीं वाणीम्, सौमित्रिणा=लक्ष्मणेन परिहसितमिव=उपहस्यमानमिव पश्यामि=अनुभवामीति। स्वभावोक्तिरलङ्कारः॥ ३॥

सूतः—(आत्मगतम्=स्वागतम्) भोः=अहो, कष्टम्=खेदम्, यदयम्=भरतः, अविज्ञाय=अविदित्वा, महाराजविनाशम्=दशरथमरणम्, उदर्के=उत्तरकाले, निष्फलाम्=फलरहिताम्, आशाम्=पितृप्रणामसखिस्नेहमातृवात्सल्यभृत्यसेवादिप्राप्तिविषयं मनोरथम्, परिवहन्=धारयन् अयोध्याम्=नगरीम् प्रवेक्ष्यति=प्रवेशं करिष्यति, कुमारः=भरतः। जानद्भिरपि=सर्ववृत्तान्तज्ञैरपि अस्माभिर्न निवेद्यते=अहम् किमपि कुमाराय न निवेदयामीति। कुतः=यतः—

वात्सल्य से मुझे गोद में उठा लिया है। भाइयों ने शीघ्रता से आकर मुझे घेर लिया है और माताओं की आँखें प्रेम के आँसू बरसा रही है, जिससे मैं भीगता-सा जा रहा हूँ। कुमार भरत जैसे जाने के समय थे वैसे ही अब भी है, एक ने कहा। दूसरे ने कहा--नहीं, कुछ बड़े और पुष्ट भी हो गये है। इस तरह सप्रीति नौकर चाकर मेरी प्रशंसा में लगे हैं। इधर लक्ष्मण मेरी बदली हुई वेश-भूषा की खिल्ली उड़ा रहा है॥ ३॥

सारथि—(अपने आप) ओह! कितने शोक की बात है कि महाराज की मृत्यु से अनभिज्ञ भरत मिथ्या आशा और प्रसन्नता लिए अयोध्या में प्रवेश करेंगे और सब कुछ जानते हुए भी मैं इन्हें कुछ न बता पा रहा हूँ। बताऊँ भी कैसे?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूतः—आयुष्मन् ! सोपस्नेहतया वृक्षाणामभितः खल्वयोध्यया भवितव्यम् ।
भरतः—अहो न खलु स्वजनदर्शनोत्सुकस्य त्वरता मे मनसः । सम्प्रति हि,

पतितमिव शिरः पितुः पादयोः स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापित-
स्त्वरितमुपगता इव भ्रातरः क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः ।
सदृश इति महानिति व्यायतश्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया
परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि वेषं च भाषां च सौमित्रिणा ॥ ३ ॥

प्रतीयते । अरव्यक्तिः = अराणां=नेमिनाभिमध्यावयवानां, व्यक्तिः=स्फुटः-प्रतीतिः, नष्टा=विनष्टा । चक्रवलयम् = चक्रमण्डलम्, जवात्=वेगवशात्, स्थितमिव=गतिरहितमिव भाति । अश्वोद्धूतम्=अश्वखुराघातोत्थम् रजश्च पुरतः=अग्रे, पतति=उद्गच्छति न अनुपतति=न रथमनुगच्छति।निमेषमात्रेण, रजोनु-पतनगोचरदेशातिक्रमणादित्यर्थः । एतद्रथवेगस्य स्वाभाविकं वर्णनमिति स्व-भावोक्तिरलङ्कारः । धावन्तीवेत्यादिषूत्प्रेक्षणात् उत्प्रेक्षालङ्कारश्च । अत उत्प्रेक्षा-सहकृता स्वभावोक्तिरलङ्कारः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ २ ॥

सूतः—आयुष्मन्=चिरञ्जीव, सोपस्नेहतया=सुस्निग्धत्वेन हेतुना, वृक्षा-णाम्=तरूणाम्, अभितः=समन्तात्, खलु=निश्चयेन, अयोध्यया भवितव्यम्, अर्थात् परितः परिदृश्यमानस्य देशस्य समन्ततः वृक्षबाहुल्यनिमित्तकोपश्लेषवत्तया नगरसान्निध्यं व्यज्यते ।

भरतः—अहो=आश्चर्यम्, स्वजनदर्शनोत्सुकस्य=स्वजनानां=स्वकीयानां दर्शने उत्सुकः स्वजनदर्शनोत्सुकः तस्य । त्वरता=संभ्रमयुक्तत्वम्, मे=मम, मनसः=चित्तस्य । सम्प्रति हीति श्लोकान्वयि—

अन्वयः—पितुः, पादयोः शिरः पतितमिव, स्निह्यता राज्ञा समुत्थापितः इव अस्मि, भ्रातरः त्वरितम् उपागताः इव, मातरः अश्रुभिः मां क्लेदयन्ति इव, सदृशः इति महानिति व्यायतः च इति भृत्यैः सेवया अहं स्तुतः इव, तत्र आत्मनः वेषं च भाषां च सौमित्रिणा परिहसितमिव पश्यामि ॥ ३ ॥

व्याख्या—पितुः = दशरथस्य, पादयोः=चरणयोः, शिरः=उत्तमाङ्गं

सारथि—चिरञ्जीव, वृक्षों की सघनता और शीतलता से मालूम पड़ता है कि अयोध्या अब समीप ही है ।

भरत—अहो ! आत्मीयजनों को देखने के लिए मेरा मन कितना उतावला हो रहा है! क्योंकि इस समय—

मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि पूज्य पिताजी के चरणों में नत हूँ और उन्होंने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूतः—(आत्मगतम्) भोः कष्टम्; यदयमविज्ञाय महाराजविनाशमुदर्के निष्फलामाशां परिवहन्नयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः। जानद्भिरप्यस्माभिर्न निवेद्यते। कुतः,

---

पतितमिव = कालान्तरे पतिष्यद् इदानीमेव पतितमिति त्वरातिशयात् प्रतिभातीत्यर्थः। स्निह्यता = स्नेहं दर्शयता, राज्ञा = दशरथेन, समुत्थापितः = पादप्रदेशादाकृष्य स्वाङ्कमारोपितः, इव = यथा, अस्मि = भवामीति। भ्रातरः = रामादयः, त्वरितम् = शीघ्रम्, उपागताः = समीपं प्राप्ता इव, मामिति शेषः। मातरः = कौशल्यादयः, अश्रुभिः = नयनसलिलैः, माम् = भरतम् क्लेदयन्ति = सिञ्चन्ति, इव = यथा, अर्थात् पुत्रागमनप्रसूतानन्दाश्रुभिः आर्द्रयन्तीव मातरः इति। सदृशः = समानवयस्कः, अथवा बहोः कालात् प्रत्यागतोऽपि परिचीयमान इति हेतोः आकृत्या पूर्वसदृश इव भासमानः, महान् इति = पूर्वदृष्टाकारापेक्षया प्रवृद्धाकार इति व्यायतश्चे ति = परिचितव्यायामश्चेति, भृत्यैः = सेवकैः, सेवया = प्रीत्या, अहम् = भरतः, स्तुतः [illegible] = प्रीणयितुमिवेत्यर्थः। तत्र = तस्मिन् स्थाने, आत्मनः = स्वकीयम्, वेषम् = केकयदेशोचितपरिधानीयनिवेशं च = पुनः भाषाम् = तद्देशवासावस्थापरिशीलनात्म्यभावेनापि बलान्मुखान्निर्गच्छन्तीं वाणीम्, सौमित्रिणा = लक्ष्मणेन परिहसितमिव = उपहस्यमानमिव पश्यामि = अनुभवामीति। स्वभावोक्तिरलङ्कारः॥ ३॥

सूतः—(आत्मगतम् = स्वागतम्) भोः = अहो, कष्टम् = खेदम्, यदयम् = भरतः, अविज्ञाय = अविदित्वा, महाराजविनाशम् = दशरथमरणम्, उदर्के = उत्तरकाले, निष्फलाम् = फलरहिताम्, आशाम् = पितृप्रणामसखिस्नेहमातृवात्सल्यभृत्यसेवादिप्राप्तिविषयं मनोरथम्, परिवहन् = धारयन् अयोध्याम् = नगरीम् प्रवेक्ष्यति = प्रवेशं करिष्यति, कुमारः = भरतः। जानद्भिरपि = सर्ववृत्तान्तज्ञैरपि अस्माभिर्न निवेद्यते = अहम् किमपि कुमाराय न निवेदयामीति। कुतः = यतः—

वात्सल्य से मुझे गोद में उठा लिया है। भाइयों ने शीघ्रता से आकर मुझे घेर लिया है और माताओं की आँखें प्रेम के आँसू बरसा रही है, जिससे मैं भीगता-सा जा रहा हूँ। कुमार भरत जैसे जाने के समय थे वैसे ही अब भी है, एक ने कहा। दूसरे ने कहा--नहीं, कुछ बड़े और पुष्ट भी हो गये है। इस तरह सप्रीति नौकर चाकर मेरी प्रशंसा में लगे हैं। इधर लक्ष्मण मेरी बदली हुई वेश-भूषा की खिल्ली उड़ा रहा है॥ ३॥

सारथि—(अपने आप) ओह ! कितने शोक की बात है कि महाराज की मृत्यु से अनभिज्ञ भरत मिथ्या आशा और प्रसन्नता लिए अयोध्या में प्रवेश करेंगे और सब कुछ जानते हुए भी मैं इन्हें कुछ न बता पा रहा हूँ। बताऊँ भी कैसे ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पितुः प्राणपरित्यागं मातुरैश्वर्यलुब्धताम् ।
ज्येष्ठभ्रातुः प्रवासं च त्रीन् दोषान् कोऽभिधास्यति ? ॥ ४ ॥

(प्रविश्य)

भटः—जयतु कुमारः ।

भरतः—भद्र, किं शत्रुघ्नो मामभिगतः ?

भटः—अभिगतः खलु वर्तते कुमारः । उपाध्यायास्तु भवन्तमाहुः ।

भरतः—किमिति किमिति ?

अन्वयः—पितुः प्राणपरित्यागम्, मातुः ऐश्वर्यलुब्धताम्, ज्येष्ठभ्रातुः प्रवासम्, त्रीन् दोषान् कः अभिधास्यति ॥ ४ ॥

व्याख्या—पितृप्राणपरित्यागादिकस्यानर्थत्रयस्य कथमात्मना कर्त्तुमशक्यमित्यभिप्रायेणाह—पितुः = दशरथस्य, प्राणपरित्यागम् = मरणम्, मातुः = कैकेय्याः भरतजनन्याः, ऐश्वर्यलुब्धताम् = धनलोलुपताम्, ज्येष्ठभ्रातुः = रामचन्द्रस्य प्रवासम् = वनगमनलक्षणं देशान्तरगमनञ्च त्रीन् = त्रिसंख्यकान्, दोषान् = दुःसंवादान्, कोऽभिधास्यति = कः = कतरः, अभिधास्यति = भरताय निवेदयिष्यति ? अहं नैवैताः विपत्तीः भरताय श्रावयितुम् समर्थ इति भावः ॥ ४ ॥

(प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा)

भटः—जयतु = विजयताम्, कुमारः = भरतः ।

भरतः—भद्र = प्रिय, किं शत्रुघ्नो = शत्रुघ्नस्य पृष्ठतो रथान्तरेणानुगन्तुः स्वान्तिकप्राप्तिविषयः प्रश्नः–अर्थात् स्वागतार्थं शत्रुघ्नः समुपस्थित इति भावः ।

भटः—अभिगतः खलु = अभिगतप्राय एव, किन्तु पथि वर्तते कुमार इत्यर्थः । उपाध्यायास्तु = वशिष्ठवामदेवादयस्तु, भवन्तम् = श्रीमन्तम् आहुः कथितवन्तः ।

भरतः—किमिति किमितीति—द्विरुक्तिर्वचनश्रवणादरकृता ।

पिता का स्वर्गवास, माँ की ऐश्वर्य-लालसा, बड़े भाई का वनवास, एक से एक बढ़कर इन तीनों दुःखों को कहने के लिए कौन जीभ हिलायेगा ? ॥ ४॥

(सिपाही का प्रवेश)

सिपाही—राजकुमार की जय हो ।

भरत—भद्र, क्या शत्रुघ्न आये हैं ?

सिपाही—कुमार तो आ ही रहे हैं, किन्तु उपाध्यायों ने आपको कहा है···

भरत—क्या कहा है ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भटः—एकनाडिकावशेषः कृत्तिकाविषयः । तस्मात् प्रतिपन्नायामेव रोहिण्यामयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः ।

भरतः—बाढमेवम् । न मया गुरुवचनमतिक्रान्तपूर्वम् । गच्छ त्वम् ।

भटः—यदाज्ञापयति कुमारः । (निष्क्रान्तः)

भरतः—अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमिष्ये । भवतु, दृष्टम् । एतस्मिन् वृक्षान्तराविष्कृते देवकुले मुहूर्तं विश्रमिष्ये । तदुभयं भविष्यति—दैवतपूजा विश्रमश्च । अथ च उपोपविश्य प्रवेष्टव्यानि नगराणीति सत्समुदाचारः तस्मात् स्थाप्यतां रथः ।

भटः—एकनाडिकावशेषः=एका नाडिका अवशेषो यस्य स तथाभूतः । कृत्तिकाविषयः=कृत्तिकानक्षत्रयुक्तः कालः । तस्मात् रोहिण्यां प्रतिपन्नायामेव कुमारः=भरतः, अयोध्याम्=राजधानीम्, प्रवेक्ष्यति=प्रवेष्टुमर्हति ।

भरतः—बाढम्=इति अङ्गीकारे । एवं गुर्वादिष्टेन प्रकारेणानुतिष्ठामीति भावः । न=नहि, मया=भरतेन, गुरुवचनम्=गुरोराज्ञा, अविक्रान्तपूर्वम्=पूर्वं कदापि अतिक्रान्तम्=उल्लङ्घितम् । गच्छ=याहि, त्वम्=भवान्, गुरुभ्यो निवेदय यद् भरतो भवदादिष्टमेव करिष्यति ।

भटः—यद् आज्ञापयति=आदिशति, कुमारः=भरतः । (**निष्क्रान्तः=बहिर्गतः**)

भरतः—अथ=इति प्रारम्भे । कस्मिन्प्रदेशे=कस्मिन् स्थाने, विश्रमिष्ये=दीर्घाध्वलङ्घनश्रममपनोत्स्यामि । अत्रात्मनेपदप्रयोगमपाणिनीयम् । भवतु=दृष्टम्=विश्रामयोग्यम् स्थलम् उपलब्धम् । एतस्मिन् वृक्षान्तरालाविष्कृते=वृक्षावकाशलक्षिते, देवकुले=देवगृहे, मुहूर्तम्=क्षणम्, विश्रमिष्ये=स्थास्यामि, तत्=तस्मात् देवकुले स्थितिकरणात् उभयं=प्रयोजनद्वयम्, भविष्यति—दैवत-

---

सिपाही—कृत्तिका नक्षत्र अब एक घड़ी मात्र शेष है, उसके बीत जाने पर रोहिणी नक्षत्र में ही कुमार अयोध्या में प्रवेश करें ।

भरत—बहुत अच्छा । मैंने कभी गुरुजनों के वचन नहीं टाले । तुम जाओ ।

सिपाही—जैसी कुमार की आज्ञा । (जाता है)

भरत—तब तक किस जगह विश्राम किया जाय । अच्छा, सोच लिया । पेड़ों के बीच दीखने वाले इस देवमन्दिर में ही कुछ क्षण विश्राम करूँगा । इस तरह देवदर्शन और विश्राम दोनों लाभ एक साथ होंगे । एक बात और, नगरों के समीप थोड़ा बैठकर नगर में प्रवेश करना चाहिए, इस परम्परागत शिष्टाचार का भी पालन हो जायेगा । अतः रथ रोको ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (रथं स्थापयति)

भरतः—(रथादवतीर्य) सूत ! एकान्ते विश्रामयाश्वान् ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (निष्क्रान्तः)

भरतः—(किञ्चिद् गत्वावलोक्य) साधुमुक्तपुष्पलाजाविष्कृताः बलयः, दत्तचन्दनपञ्चाङ्गुलाः भित्तयः अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि, प्रकीर्णा बालुकाः । किन्नु खलु पार्वणोऽयं विशेषः ? अथवा आह्निकमास्तिक्यम् ? कस्य नु

पूजा=देवार्चनम्, विश्रमश्च । अथ च=किञ्च उपोपविश्य=उपकण्ठे क्षणमुपविश्य, प्रवेष्टव्यानि=प्रवेशो विधेयः, नगराणीति । तत्समुदाचारः=सतां साधूनाम्, समुदाचारो व्यवहारः, शिष्टाचार इति यावत् । अर्थात् एतेन श्रमापकरणदेववन्दनसदाचारपालनात्मकं प्रयोजनत्रयमत्र वृक्षावकाशे समुपवेशने साध्यत इत्यहो सौकर्यमिति भावः । तस्मात्=अतः, स्थाप्यताम्=अवरुध्यताम्, रथः=स्यन्दनः ।

सूतः—यद् आज्ञापयति=आदिशति, आयुष्मान्=चिरञ्जीव, (रथम्=स्यन्दनम्, स्थापयति)

भरतः—(रथात्=स्यन्दनात्, अवतीर्य=अधः आगत्य) सूत=सारथे, एकान्ते=एकान्तस्थाने, अश्वान्=घोटकान्, विश्रामय ।

सूतः—यदाज्ञापयति कुमारः=यथादिशति आयुष्मान् । (निष्क्रान्तः=बहिर्गतः)

भरतः—(कतिचित् पदानि गत्वा=चलित्वा, अवलोक्य=दृष्ट्वा)साधुमुक्तपुष्पलाजाविष्कृताः=साधुना देवपूजकेन, मुक्तैः=अवकीर्णैः पुष्पैः लाजैश्च, आविष्कृताः=प्राकाश्यम् गमिताः, बलयः=देवतोपहाराः । दत्तचन्दनपञ्चांगुलाः भित्तयः इत्यादि व्याख्यातपूर्वम् । तस्मादिदम् मन्दिरम् स्यादिति भरतस्य मनसि भावः । मन्दिरसमारोहं विलोक्य भरतो विचारयति किन्नु खलु—पार्वणः पर्वणि कालविशेषे भवः । अयं विशेषः बल्युपहरणादिलक्षणः । अथवा=वा आह्निकम्=अहनि अहनि अनुष्ठीयमानम् । आस्तिक्यम्—अस्ति दिष्टमिति

सूत—जो आज्ञा । (रथ रोकता है)

भरत—(रथ से उतर कर) सूत, एक ओर ले जाकर घोड़ों को आराम दो ।

सूत—जैसी आज्ञा । (प्रस्थान)

भरत—(कुछ कदम चलकर और देखकर) यहाँ तो विधिवत् फूल और खील के नैवेद्य दिये गये है । दीवारों पर चन्दन की पाँच अंगुलियों की छापें लगाई हुई हैं । फूलमालाओंसे दरवाजे सजाये गये हैं, रेत बिछी है । क्या यह सब किसी पर्व के कारण है अथवा किसी आस्तिक के दैनिक कर्म हैं ? किस देवता का यह स्थान होगा ? यहाँ शस्त्र ,ध्वजा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

खलु दैवतस्य स्थानं भविष्यति ? नेह किञ्चित् प्रहरणं ध्वजो वा बहिश्चिह्नं दृश्यते। भवतु, प्रविश्य ज्ञास्ये (प्रविश्यावलोक्य) अहो क्रियामाधुर्यं पाषाणानाम्। अहो भावगतिराकृतीनाम्। दैवतोद्दिष्टानामपि मानुषविश्वासताऽऽसां प्रतिमानाम्। किन्नु खलु चतुर्दैवतोऽयं स्तोमः! अथवा यानि तानि भवन्तु। अस्ति तावन्मे मनसि प्रहर्षः।

मतिर्येषाम् ते आस्तिकाः, तेषां भावः कर्म वा आस्तिक्यम्। अत्र भरतस्य जिज्ञासा अस्त्येका—बल्युपहारादिकं किं प्रतिदिनं विधीयते ? उत कदाचित् पर्वण्येवेति। पुनर्मन्दिराधिष्ठातृदेवताविषये विचारयति यदिदं कस्य देवस्य स्यात्, तदेवाह कस्य न्विति। खलु=इति जिज्ञासायाम्, दैवतस्य=स्कन्दाद्यन्यतमस्य, स्थानम्=मन्दिरम्, भविष्यति। नेह=नात्र, किञ्चित्=किमपि, प्रहरणम्=आयुधम् शक्त्यादि, ध्वजः=कुक्कुटादिः बहिश्चिह्नं=बाह्यं दैवतविशेषलक्ष्म, दृश्यते=अवलोक्यते। भवतु=अस्तु। प्रविश्य=प्रवेशम् कृत्वा, ज्ञास्ये (**प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा अवलोक्य=दृष्ट्वा**) अहो=आश्चर्यम्, अद्भुतम् वा क्रियामाधुर्यम्=शिल्पचातुर्यम्, पाषाणानाम्=पाषाणमयीनाम् प्रतिमानाम्। अहो—इति विस्मये। भावगतिः=भावानाम्=हृद्गतविकाराणाम्, गतिः=आविष्करणम्—मानसिकभावा अपि स्फुटमत्र प्रतीयन्ते इति भावः। आसाम्, प्रतिमानाम् आकृतीनाम्=आकाराणम्, दैवतोद्दिष्टानामपि=दैवतप्रतिमात्वेन संकल्पितानामपि, मानुषविश्वासता=मनुष्यप्रतिमाविश्वासयोग्यता, अस्तीति शेषः। प्रतिमानां गणनां कृत्वाह—किन्नु खल्विति। अयं स्तोमः=प्रतिमासमूहः किन्नु खलु, चतुर्दैवतः=चत्वारि दैवतानि यस्यावयवाः स तथाभूतः किम्। अथवेति चतुर्दैवतस्तोमत्वशङ्काप्रतिक्षेपे। यानि तानि भवन्तु=दैवतानि वा भवन्तु अन्यथा वेत्यर्थः। मम मनसि प्रहर्षः=प्रतिमानां माननीयताम् प्रति आत्मतुष्टिः, अस्ति तावत् अस्त्येवेति।

आदि बाहरी चिह्न भी तो नहीं दीख पड़ते। अच्छा भीतर जाकर पता करूँ (**भीतर जाकर और देखकर**) अहो पत्थरों पर कितना अच्छा काम किया गया है, मूर्तियों की भावव्यञ्जना कितनी आकर्षक है। देवमूर्तियाँ होकर भी ये मानवमूर्तियों की तरह है। क्या ये मूर्त्तियाँ चार देवताओं की है ? अथवा किन्ही की हों--इन्हें देखकर हमें प्रसन्नता होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कामं दैवतमित्येव युक्तं नमयितुं शिरः ।
वार्षलस्तु प्रणामः स्यादमन्त्रार्चितदैवतः ॥ ५ ॥

देवकुलिकः—भोः ! नैत्यिकावसाने प्राणिधर्ममनुतिष्ठति मयि को नु खल्वयमासां प्रतिमानामल्पान्तराकृतिरिव प्रतिमागृहं प्रविष्टः ? भवतु प्रविश्य ज्ञास्ये। (प्रविशति)

प्रणम्याश्चैता ममेति ब्रवीति—काममिति ।

अन्वयः—दैवतम् इत्येव शिरः नमयितुम् कामम् युक्तम् । प्रणामः तु अमन्त्रार्चितदैवतः वार्षलः स्यात् ॥ ५ ॥

काममिति । दैवतमित्येव=देवताबुद्धयैव, शिरः नमयितुम् कामम् सुखम्, युक्तम्=उचितम् । तु=किन्तु, प्रणामाः=नतयः, अमन्त्रार्चितदैवतः=विनामन्त्रोच्चारणं पूजितं दैवतं तथाभूतः । वार्षलः=वृषलसम्बन्धी, स्यात्—वृषलेन यथा क्रियते तथा कर्त्तव्यः स्यात् । शूद्रो हि मन्त्रपाठं विनैव पूजयेदिति धर्मशास्त्रविधिः, मन्त्रपाठस्य निषेधात् । शिरोनमने न कोऽपि दोषः । दैवतविशेषनिश्चयाभावात् मन्त्रपाठस्तु कस्य दैवतकः क्रियेतेति स परित्यज्यत इति भावः। अनुष्टुप् छन्दः ॥५॥

(प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा)

देवकुलिकः—देवकुले=देवतामन्दिरे नियुक्तः-मन्दिरस्य पूजाकार इत्यर्थः । स च पूजादिक्रियां सम्पाद्य भोजनादौ प्रवृत्तस्तदभ्यन्तर एव भरतस्य तत्र प्रवेशं विलोक्य तत्रागच्छतीत्याह—भोः ! नैत्यकावसाने=नित्यकर्मणो देवपूजालक्षणस्य समाप्तौ प्राणिधर्मं=भोजनम् । अल्पम्=ईषत् अन्तरम् भेदो यस्याः सा अल्पान्तरा=ईषद्भेदा, अत्यन्तसदृशीत्यर्थः, आकृतिर्यस्येति सोल्पान्तराकृतिः, इव=यथा, प्रतिमागृहम्=देवसदनम्, प्रविष्टः=प्रवेशं कृतवान्, भवतु=यातु । प्रविश्य=प्रवेशम् कृत्वा ज्ञास्ये । (प्रविशति=मन्दिरे प्रवेशं करोति)

ये देवमूर्त्तियाँ है, ऐसा समझकर प्रणाम करना उचित है । किन्तु, विशेष परिचय के अभाव में विना मन्त्र पढ़े ही प्रणाम करना होगा और ऐसा करना शूद्रों की तरह होगा ॥ ५ ॥

(पुजारी का प्रवेश)

देवकुलिक—अरे यह कौन ? इन मूर्त्तियों के सदृश रूपवाला, पूजा की समाप्ति हो जाने के बाद मेरे भोजन के समय ही प्रतिमागृह के अन्दर घुस आया है ? अच्छा भीतर जाकर पता कर लेता हूँ । (भीतर जाता है)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—नमोऽस्तु !

देवकुलिकः—न खलु न खलु प्रणामः कार्यः !

भरतः—मा तावद् भोः !

वक्तव्यं किञ्चिदस्मासु विशिष्टः प्रतिपाल्यते ।
किंकृतः प्रतिषेधोऽयं नियमप्रभविष्णुता ॥ ६ ॥

देवकुलिकः—न खल्वेतैः कारणैः प्रतिषेधयामि भवन्तम् । किन्तु दैवतशङ्कया ब्राह्मणजनस्य प्रणामं परिहरामि । क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः ।

भरतः—नमोऽस्तु—प्रतिमोद्देश्येन नमस्कारः । ब्राह्मणभ्रमेण देवकुलिको भरतं नमस्करणात् वारयन् ब्रवीति ।

देवकुलिकः—न खलु न खलु प्रणामः कार्यः । देवकुलिकः निषेधं करोति । किन्तु प्रणामनिषेधे स्वापमानमुत्प्रेक्ष्य निषेधन्तं देवकुलिकं प्रति तदीयैतदाचरणस्यानौचितीं प्रतिपादयिष्यन्नाह—

भरतः—मा तावद् भोः—

अन्वयः—अस्मासु किञ्चित् वक्तव्यं, विशिष्टः प्रतिपाल्यते । अयं प्रतिषेधः किंकृतः, नियमप्रभविष्णुता ॥ ६ ॥

व्याख्या—अस्मासु किञ्चित्=किमपि, वक्तव्यं=दूषणम् प्रणामानर्हत्वप्रयोजकम् अस्ति किमित्यर्थः । अथवा–विशिष्टः=मदपेक्षया श्रेष्ठः, पाल्यते=प्रतीक्ष्यते । अत्रापि काक्वाक्षेपपूर्वकं कथनम्, अयं मद्वारणरूपम्, प्रतिषेधः किं कृतः=केनकारणेन कृतः । तृतीयं कारणं शङ्कते—नियमप्रभविष्णुतेति । आत्मनो नियमप्रभविष्णुता आत्मगता तपोनुष्ठानप्रौढिः किम् ? प्रतिषेधोयम् आत्मगततपोनुष्ठानप्रौढिकृतः किमिति यावत् । तत्कार्ये चायं तच्छब्दोपचारो द्रष्टव्यः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ६ ॥

देवकुलिकः—न=नहि, खलु=निश्चयेन, एतैः=श्लोकशंकितैस्त्रिभिः,

भरत—प्रणाम ।

देवकुलिक—नहीं, नहीं, प्रणाम मत करो ।

भरत—क्यों क्या बात है ?

क्या हममें कोई दोष हैं ? अथवा मेरी अपेक्षा किसी विशिष्ट प्रथमाधिकारी की तुम्हें प्रतीक्षा है । फिर प्रणाम करने का निषेध क्यों कर रहे हो ? कहीं तुम्हारा यह [अधिकार-मद तो नहीं है ॥ ६ ॥

पुजारी—नहीं, इन कारणों से मैं आपको नहीं रोक रहा था । मैं तो इसलिए मना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—एवम् । क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः । अथ के नामात्रभवन्तः ?

देवकुलिकः—इक्ष्वाकवः ।

भरतः—(सहर्षम्) इक्ष्वाकव इति । एते तेऽयोध्याभर्तारः ।

एते ते देवतानामसुरपुरवधे गच्छन्त्यभिसरी-
मेते ते शक्रलोके सपुरजनपदा यान्ति स्वसुकृतैः ।
एते ते प्राप्नुवन्तः स्वभुजबलजितां कृत्स्नां वसुमती-
मेते ते, मृत्युना ये चिरमनवसिताश्छन्दं मृगयता ॥ ७ ॥

कारणैः=हेतुभिः, प्रतिषेधयामि=प्रतिषेधम् करोमि, भवन्तम्=श्रीमन्तम् । किन्तु=परञ्च, दैवतशङ्कया=प्रतिमासु दैवतत्वभ्रमेण, ब्राह्मणजनस्य=त्वं चेत् ब्राह्मणजनः तर्हि तवेत्यर्थः, प्रणामं=नमस्कारम्, परिहरामि=भवन्तो ब्राह्मणाः दैवतभ्रमेण एताः प्रतिमाः मा प्रणंसुरिति निषेधामि । क्षत्रियाः=क्षत्रियजाति-विशेषाः अत्र भवन्तः=पूज्याः प्रतिमापुरुषाः ।

भरतः—एवम्=इत्थम्, क्षत्रियाः=राजपुत्राः, हि=इति, निश्चयेन, अत्र भवन्तः=पूज्याः प्रतिमापुरुषाः । अथ=अनन्तरम् पृच्छति, के नाम=किं संज्ञकाः, अत्र भवन्तः=पूज्याः मूर्तिषु चित्रिताः ?

देवकुलिकः—इक्ष्वाकवः=अतिप्रसिद्धा इक्ष्वाकुवंशोत्पन्नाः राजानः ।

भरतः—(सहर्षम्=सानन्दम्) इक्ष्वाकव इति=राजानः इति । एते=इमे, ते=तव, अयोध्याभर्त्तारः=अयोध्यास्वामिनः ।

अन्वयः—एते ते असुरपुरवधे देवतानाम् अभिसरीं गच्छन्ति, एते ते सपुर-जनपदाः स्वसुकृतैः शक्रलोके गच्छन्ति, एते ते कृत्स्नां वसुमतीम् स्वभुजबल-जिताम् प्राप्नुवन्तः, एते ते छन्दं मृगयता मृत्युना चिरम् अनवसिताः ॥ ७ ॥

व्याख्या—एते=प्रतिमारूपेण पुरो दृश्यमानाः, ते=अतिप्रसिद्धाः, असुर-

---

कर रहा हूँ कि कोई ब्राह्मण होकर कहीं देवताओं के भ्रम से इन्हें प्रणाम न कर ले । ये मूर्त्तियाँ क्षत्रिय महानुभावों की हैं ।

भरत—अच्छा तो ये क्षत्रियों की प्रतिमाएँ हैं, फिर यह भी बतलाओ कि ये मूर्त्तियाँ किनकी हैं ?

पुजारी—ये मूर्त्तियाँ इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रियों की हैं ।

भरत—(हर्ष के साथ) इक्ष्वाकुवंशी, इसी अयोध्या के नृपति ?

क्या ये लोग वही हैं, जो दैत्यों के नगर विध्वंस करने में देवों की सहायता के लिए जाते थे ? क्या ये वे ही नृपति हैं, जो अपने पुण्य-प्रताप से अपने नगर एवं प्रजाजन के साथ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भोः ! यदृच्छया खलु मया महत् फलमासादितम् ! अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ?

देवकुलिकः—अयं खलु तावत् सन्निहितसर्वरत्नस्य विश्वजितो यज्ञस्य प्रवर्तयिता प्रज्वलितधर्मप्रदीपो दिलीपः ।

पुरवधे=राक्षसैः समं युद्धे तद्वधे, अथवा—असुरपुराणाम् लक्षणया पुरवासिनाम्, सर्वेषाम् पुरवासिनाम्, वेवतानाम्=देवानाम्, अभिसरीम्=साहाय्यार्थमभिगमनम् गच्छन्ति=व्रजन्ति—देवसाहाय्यार्थम् राक्षसान् हन्तुम् स्वर्गं गच्छन्तीति भावः । एतेन इक्ष्वाकूणाम् देवासाध्यराक्षसवधसमर्थत्वप्रतिपादनेन तदपेक्षयाऽधिकपराक्रमशालित्वम् व्यञ्जितम् । एते ते=इक्ष्वाकवः, सपुरजनपदाः=सनगरप्रजाः, स्वसुकृतैः=स्वाचरितैः पुण्यैः, शक्रलोके=स्वर्गे, गच्छन्ति=यान्ति । एतेन एषाम् पुण्यप्रकर्षः प्रत्याय्यते । एते ते=कृत्स्नाम्=सर्वाम्, वसुमतीम्=पृथ्वीम्, स्वभुजबलजिताम्=निजबाहुपराक्रमस्वायत्तीकृताम्, प्राप्नुवन्तः=सन्तीति शेषः । एते ते छन्दम्=अभिलाषम्, अभिप्रायम्, मृगयता=अन्विष्यता, मृत्युना=कालेन, चिरम्=चिरकालपर्यन्तम्, अनवसिताः—असमापिताः, अर्थात् ते स्वेच्छामरणा आसन्, अतएव मृत्युः प्रतीक्षतेस्म इमे कदा मरणमभिलषन्ति । एवं चिरकालपर्यन्तम् तेन प्रतीक्षितव्यमासीत्, मृत्युरपि तत्र न प्रभवति । सुवदना वृत्तम् ॥ ७ ॥

भोः=हे, यदृच्छया=स्वैरगत्या, अनायासेनैव, खलु=निश्चयेन, मया=भरतेन, महत्=उत्कृष्टम्, फलम्=लाभः, आसादितम्=प्राप्तम् । अभिधीयताम् कथ्यताम्, अत्रभवान्=श्रीमान्, कः=पुरुषविशेषः इति ।

देवकुलिकः—अयं खलु=एष तावदिति अवधारणे, सन्निहितसर्वरत्नस्य=सन्निहितानि विश्वविजयोपाहृतानि, सर्वरत्नानि=सर्वप्रकाराणि प्रशस्तद्रव्याणि यस्मिन् तस्य तथाभूतस्य, विश्वजितो यज्ञस्य=तदाख्यस्य यागस्य, प्रवर्त्तयिता=आहर्ता, प्रज्ज्वलितधर्मप्रदीपः प्रज्वलितः=प्रकाशितः धर्मरूपः प्रदीपो यस्य सः; परमधार्मिक इत्यर्थः, दिलीप इति यावत् ।

स्वर्ग जाते थे ? क्या ये वे ही हैं, जो अपने बाहुबल से सम्पूर्ण भूमण्डल को जीतकर अपने अधिकार में ले आते थे ? और जिनकी मृत्यु अपनी इच्छा पर निर्भर करती थी ॥ ७ ॥

अच्छा तो अनायास ही हमने बड़ा फल पा लिया । कहिए ये महानुभाव कौन हैं ?

पुजारी—ये हैं महाराज दिलीप, जिन्होंने विश्वजित् याग में अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी थी और जिन्होंने धर्म के प्रदीप को प्रकाशित किया है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—नमोऽस्तु धर्मपरायणाय । अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ?

देवकुलिकः—अयं खलु तावत् संवेशनोत्थापनयोरनेकब्राह्मणजनसहस्रप्रयुक्त-पुण्याहशब्दरवो रघुः ।

भरतः—अहो बलवान् मृत्युरेतामपि रक्षामतिक्रान्तः । नमोऽस्तु ब्राह्मण-जनावेदितराज्यफलाय । अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ?

देवकुलिकः—अयं खलु तावत् प्रियावियोगनिर्वेदपरित्यक्तराज्यभारो नित्याव-भृथस्नानप्रशान्तरजा अजः ।

भरतः—नमोऽस्तु श्लाघनीयपश्चात्तापाय । (दशरथस्य प्रतिमामवलोक्य

भरतः—नमोऽस्तु, धर्मपरायणाय=धर्मैकनिरताय । अभिधीयताम्—कथ्यताम्, कस्तावदत्रभवान् ।

देवकुलिकः—अयम्=एषः, खलु=निश्चयेन, तावदिति अवधारणे । संवेश-नोत्थापनयोरनेकब्राह्मणजनसहस्रप्रयुक्तपुण्याहशब्दरवः=संवेशनम्=संविश्यतेऽस्मि-न्निति बाहुलकादधिकरणे ल्युट्, एवमुत्थीयते बुध्यतेऽस्मिन्नित्युत्थापनम्=जागरण-कालः, तयोः, अनेकैः ब्राह्मणजनसहस्रैः प्रयुक्तः कृतः पुण्याहशब्दः=पुण्याहमन्त्र-पाठः तस्य रवः वाचनध्वनिर्यस्य स तथाभूतः रघुः ।

भरतः—अहो=इत्याश्चर्यम् । बलवान्=शक्तिशाली मृत्युः एतामपि रक्षा-मतिक्रान्तः=ब्राह्मणजनसहस्रप्रयुक्तपुण्याहवाचनरूपामपि रक्षाम्, अतिक्रान्तः=उल्लङ्घितवान् । तृतीया प्रतिमाऽजस्येत्याह—अयं खल्विति ।

देवकुलिकः—प्रियावियोगनिर्वेदपरित्यक्तराज्यभारः=प्रियायाः=इन्दुमत्याः वियोगेन यो निर्वेदः नैस्पृह्यं, तेन परित्यक्तो राज्यभारः येन सः । नित्यावभृथ-स्नानप्रशान्तरजाः–नित्यैः=पौनःपुनिकैः, अवभृथस्नानैः=यज्ञदीक्षान्ताभिषेकैः प्रशान्तम् रजः दुःखम् यस्य सः, अजः=महाराजः अजः ।

भरतः—नमोस्त्वित्यादि । श्लाघनीयपश्चात्तापाय=श्लाघनीयः पश्चात्तापः

भरत—धर्मात्मा दिलीप को मेरा प्रणाम निवेदित करें, ये महानुभाव कौन हैं ?

पुजारी—ये हैं महाराज रघु, जिनके सोने और जगाने के समय हजारों वेदपाठी ब्राह्मण वेद-मंत्रों का पाठ करते थे ।

भरत—आह, प्रबल मौत इस घेरे को भी पार कर गयी । ब्राह्मणों की सेवा में समग्र सम्पत्ति अर्पित करने वाले महाराज रघु को मेरा प्रणाम । ये आगे कौन हैं ? कहिए ।

पुजारी—ये हैं महाराज अज, जिन्होंने प्रियतमा के वियोग से विरक्त होकर राजपाट छोड़ दिया था और यज्ञ में दीक्षान्त स्नानों से जिनका दुःख शान्त हो गया था ।

भरत—प्रशंसनीय पश्चात्ताप आप को नमस्कार । (दशरथ की प्रतिमा को देखते

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर्याकुलो भूत्वा) भोः ! बहुमानव्याक्षिप्तेन मनसा सुव्यक्तं नावधारितम् । अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ?

देवकुलिकः—अयं दिलीपः ।

भरतः—पितृपितामहो महाराजस्य । ततस्ततः ।

देवकुलिकः—अत्र भवान् रघुः ।

भरतः—पितामहो महाराजस्य । ततस्ततः ।

देवकुलिकः—अत्र भवानजः ।

भरतः—पिता तातस्य । किमिति किमिति ?

देवकुलिकः—अयं दिलीपः, अयं रघुः, अयमजः ।

प्रियाव्यासक्तिविषयोऽनुतापो यस्य तस्मै । अथ पृष्टोत्तरितपूर्वमप्यर्थम् दशरथ-प्रतिमावलोकनेन पर्याकुलतया पुनः पृच्छति—भो इत्यादि । बहुमानव्याक्षिप्तेन पुरुषगौरवादन्यत्रासक्तेन । अभिधीयताम्=पुनरुच्यताम् ।

देवकुलिकः—अयं दिलीपः=एष रघोः पिता दिलीपः ।

भरतः—महाराजस्य=दशरथस्य, पितृपितामहः । ततस्ततः=तत्पश्चात् ।

देवकुलिकः—अत्र भवान्=श्रीमान् रघुः=दिलीपसुतः ।

भरतः—पितामहः=पितुः पिता, महाराजस्य=दशरथस्य । ततस्ततः=तत्पश्चात् ।

देवकुलिकः—अत्र भवानजः ।

भरतः—पिता=जनकः, तातस्य=दशरथस्य । किमिति=इदं किमिति प्रश्नाशयः ।

देवकुलिकः—अयम्=एषः, दिलीपः=महाराजस्य प्रपितामहः, अयम्=एषः, रघुः=दशरथस्य पितामहः, अयम्=एषः, अजः=दशरथस्य पिता ।

हुए और घबड़ाकर) मेरा हृदय महापुरुषों की गौरव-चिन्ता में लग गया था, इसलिए ठीक से समझ नहीं सका, अतः फिर से आप बतायें—ये कौन हैं ?

पुजारी—यह दिलीप हैं ।

भरत—महाराज के प्रपितामह । इसके आगे ।

पुजारी—ये रघु हैं ।

भरत—महाराज के पितामह । आगे चलिए ।

पुजारी—ये हैं अज ।

भरत—पिताजी के पिता ? क्या ? आपने क्या कहा ?

पुजारी—ये दिलीप हैं, ये रघु हैं, ये अज हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—भवन्तं किञ्चित्पृच्छामि। धरमाणानामपि प्रतिमाः स्थाप्यन्ते?

देवकुलिकः—न खलुः अतिक्रान्तानामेव।

भरतः—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम्।

देवकुलिकः—तिष्ठ।

येन प्राणाश्च राज्यं च स्त्रीशुल्कार्थे विसर्जिताः।
इमां दशरथस्य त्वं प्रतिमां किं नु पृच्छसे? ॥ ८ ॥

भरतः—शङ्काकुलं हृदयं धैर्येणावष्टभ्य भरतो देवकुलिकं पृच्छति शङ्कापनोदा[य] भवन्तमिति। धरमाणानाम्=प्राणान् धरताम्, जीवितानाम् इति याव[त्] दशरथप्रतिमां विलोक्याज्ञाततन्मरणस्तन्मरणाशङ्की शङ्कापनोदाय भरत[स्य] प्रश्नोऽयम् यज्जीवितामपि मूर्त्तयः स्थाप्यन्ते प्रतिमागृहे।

देवकुलिकः—न=नहि, खलु=निश्चयेन, अतिक्रान्तानामेव=इहलीलां समा[प्य] लोकान्तरे गतानामेव।

भरतः—तेन=हेतुना, आपृच्छे=गमनानुमतिं याचे, 'आङि नु पृच्छ्यो[ः]' इत्यात्मनेपदम्।

देवकुलिकः—तिष्ठ=स्थीयताम्। गच्छन्तम् प्रतिरुध्य पृच्छति।

अन्वयः—येन स्त्रीशुल्कार्थे प्राणाः राज्यं च विसर्जिताः, (तस्य) दशरथ[स्य] इमाम् प्रतिमां त्वं किं नु पृच्छसे ॥ ८ ॥

व्याख्या—येन=राज्ञा दशरथेन, स्त्रीशुल्कार्थे=विवाहावसरे स्त्रियै दे[य]तया प्रतिज्ञातम्=द्रव्यम् नारीशुल्कम्, तदर्थे प्राणाः, राज्यं=राज्यकर्म च, विस[र्]जिताः=परित्यक्ताः, तस्य=महाराजदशरथस्य, इमाम्=पुरोवर्त्तमाना[म्] प्रतिमाम्, त्वम्=भरतः, किन्नु पृच्छसे=किमिति न जिज्ञाससे। जिज्ञास[्य]चरित्रत्वात्तथाभिधानम्। अत्र प्राणाः विसर्जिताः, राज्यञ्च विसर्जितम्=इत्य[ं] लिङ्गवचनविपरिणामेनान्वयः कार्यः। अन्यथैकशेषे नपुंसकबहुवचनप्रसक्ति[ः] स्यादिति। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ८ ॥

भरत—आप से कुछ पूछना चाहता हूँ। क्या जीवितों की भी मूर्त्तियाँ रक्खी जाती हैं?

पुजारी—बिल्कुल नहीं, केवल मरे हुए आदमी की।

भरत—तो अब आप से विदा माँगता हूँ।

पुजारी—ठहरिए—

जिन्होंने स्त्री शुल्क के लिए राज्य ही नहीं अपना जीवन अर्पित कर दिया—उन पुण्यात्मा महाराज दशरथ की प्रतिमा के सम्बन्ध में आप कुछ क्यों नहीं जानना चाहते हैं ॥ ८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—हा तात ! (मूर्च्छितः । पुनः प्रत्यागत्य)

हृदय ! भव सकामं यत्कृते शङ्कसे त्वं
श्रृणु पितृनिधनं तद् गच्छ धैर्यं च तावत् ।
स्पृशति तु यदि नीचो मामयं शुल्कशब्द-
स्त्वथ च भवति सत्यं तत्र देहो विशोध्यः ॥ ९ ॥

आर्य !

देवकुलिकः—आर्येति इक्ष्वाकुकुलालापः खल्वयम् । कच्चित् कैकेयीपुत्रो भरतो भवान् ननु ?

भरतः—हा तात=हा पितः । (मूर्च्छितः=संज्ञाहीनः सन् पतति, पुनः प्रत्यागत्य=संज्ञां प्राप्य) शोकाविष्टो भरतस्य हा तातेत्याद्युक्तिः क्रन्दने ।

अन्वयः—हे हृदय ! सकामं भव, त्वं यत्कृते शङ्कसे तत् पितृनिधनं श्रृणु, धैर्यञ्च गच्छ तावत्, तु नीचः अयं शुल्कशब्दः मां स्पृशति, अथ च सत्यं भवति तत्र देहः विशोध्यः ॥ ९ ॥

व्याख्या—हे हृदय ! सकामं भव=लब्धकामम् भव । सकामत्वम् च=स्वशंकितार्थाविसंवादादित्यभिप्रायेणाह—त्वम् यत्कृते=यदर्थे, शङ्कसे यदहं श्रोष्यामीति सदा तर्कयन् वर्त्तसे इत्यर्थः । तत् पितृनिधनम् तातमरणम्, श्रृणु, निश्शङ्कमिदानीमाकर्णय । धैर्यञ्च गच्छ तावत्=पितृविरहविक्लवताम् मा गच्छेत्यर्थः । तु=किन्तु, नीचः=गर्हितः, अयं शुल्क शब्द, मां स्पृशति मां विषयी कुर्याच्चेत् मद्राज्याभिषेचनम् शुल्कशब्दार्थत्वेन वक्तृरभिप्रेतम् चेदित्यर्थः, अथ च सत्यं भवति यदि अर्थात् वक्तृवचनं, तत्र=तर्हीत्यर्थः, देहः विशोध्यः अग्निपुटपाकादिना शुद्धिं नेतव्यः । मालिनी वृत्तम्=ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः—इति लक्षणात् ॥९॥

आर्यं=महानुभाव,

देवकुलिकः—आर्य—इत्येवं रूपं सामान्येऽपि जने सबहुमानमामन्त्रणं सम्बो-

---

भरत—हा पिता जी (मूर्छित होकर गिरता है, फिर होश में आकर)

हृदय ! अब तुम्हारी कामना पूर्ण हुई, जिसकी तुम्हें आशंका थी, अब पिता की मृत्यु को सुनो और धीरज धारण करो । यदि स्त्री-शुल्क में याचित वाक्य का उद्देश्य मैं बनाया गया होऊँगा, तब तो मुझे अपनी देह की शुद्धि करनी होगी अर्थात् अग्नि-परीक्षा देकर अपना निर्दोषत्व सिद्ध करना पड़ेगा ॥ ९ ॥

आर्य,

देवकुलिक—'आर्य' कहकर बातें करना तो इक्ष्वाकुवंशी लोगों की आदत है। क्या

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—अथ किम्, अथ किम् । दशरथपुत्रो भरतोऽस्मि, न कैकेय्याः ।

देवकुलिकः—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम् ।

भरतः—तिष्ठ । शेषमभिधीयताम् ।

देवकुलिकः—का गतिः ? श्रूयताम् । उपरतस्तत्रभवान् दशरथः । सीता-लक्ष्मणसहायस्य रामस्य वनगमनप्रयोजनं न जाने ।

भरतः—कथं कथमार्योऽपि वनं गतः । (द्विगुणं मोहमुपगतः)

देवकुलिकः—कुमार ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

धनम् । इक्ष्वाकुकुलस्य=इक्ष्वाकुवंशोत्पन्नस्य, आलापः=भाषणशैली, खल्वयम्=निश्चयेन एषः । कच्चित्=कच्चिदिति प्रश्ने, ननु=इति उत्प्रेक्षायाम्, कैकेयी-सुतः, भरतः=भरताख्यः, भवान्=श्रीमान् ।

भरतः—अथ किम्=अङ्गीकारेण इक्ष्वाकुकुलत्वमात्रे स्वीकृतिः प्रदत्ता न सर्वांशे, तदाह—दशरथस्य पुत्रो भरतोऽहम्, न तु कैकेय्याः पुत्र इति शेषः ।

देवकुलिकः—तेन कारणेन, भवन्तम्=श्रीमन्तम्, आपृच्छे=गन्तुमनुज्ञां याचे ।

भरतः—तिष्ठ=स्थीयताम्, शेषम्=अवशिष्टम्, अभिधीयताम्=कथ्यताम् ।

देवकुलिकः—का गतिः=न कोप्युपायः । श्रूयताम्=ज्ञायताम्, उपरत=मृतः, तत्रभवान्=श्रीमान्, दशरथः=महाराजः । सीतालक्ष्मणसहायस्य=सीता च लक्ष्मणश्च सहायौ सहचरौ यस्य, रामस्य=दशरथज्येष्ठसुतस्य, वनगमन-प्रयोजनम्=अरण्यगमनकारणम्, न=नहि, जाने ।

भरतः—रामस्य वनगमनप्रयोजनं विज्ञाय विमनायमानमाह—कथं कथम् । आर्योऽपि=रामोऽपि, वनम्=अरण्यम् गतः=यातः । (द्विगुणं मोहमुपगतः प्राप्तः)

देवकुलिकः—कुमार=हे राजकुमार, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

आप कैकेयीसुत कुमार भरत हैं ?

भरत—जी हाँ, दशरथ का बेटा भरत हूँ, कैकेयीसुत भरत नहीं ।

देवकुलिक—अच्छा तो श्रीमान् अब आप मुझे जाने की आज्ञा दें ।

भरत—ठहरिए, और कुछ कहिए ।

देवकुलिक—क्या कहा जाय ? सुनिए । महाराज दशरथ अब नहीं रहे । सीता और लक्ष्मण के साथ राम वन क्यों चले गये—मुझे इसका पता नहीं है ?

भरत—क्या कहा ? आर्य भी जंगल चले गये । (फिर मूर्छित होते हैं)

देवकुलिक—कुमार, धैर्य धारण करें, धैर्य ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—(समाश्वस्य)

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् ।
पिपासार्तोऽनुजानामि क्षीणतोयां नदीमिव ॥ १० ॥

आर्य ! विस्तरश्रवणं मे मनसः स्थैर्यमुत्पादयति । तत् सर्वमनवशेषमभिधीयताम् ।

देवकुलिकः—श्रूयतां, तत्रभवता राज्ञाभिषिच्यमाने तत्रभवति रामे भवतो जनन्याऽभिहितं किल ।

भरतः—(समाश्वस्य = आश्वासनं प्राप्य)

अन्वयः—पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् अटवीभूताम् अयोध्यां क्षीणतोयां नदीम् इव पिपासार्तः अनुधावामि ॥ १० ॥

व्याख्या—पित्रा = दशरथस्य परलोकप्रवासेन, भ्रात्रा = वनगतेन च वर्जिताम् = शून्याम्, अतएव, अटवीभूताम् = अरण्यतुल्याम् = अयोध्याम् = अयोध्यानगरीम्, क्षीणम् = शुष्कम्, तोयम् = जलम् यस्यास्तथाभूताम्, नदीम् = सरितम्, इव = यथा, पिपासया = पानीयाभिलाषेण, आर्त्तः = पीडितः सन्, अनु = पश्चात्, धावामि = गच्छामि । यथा पिपासाकुलस्य शुष्कजलां नदीं प्रत्यनुधावनं व्यर्थं कष्टकरं च, तथैव ममाप्ययोध्यागमनमिति भावः । क्षीणतोयां नदीं पिपासार्त इवेत्युपमालङ्कारोऽत्र । तदनुरोधात् पितृभ्रातृदर्शनोत्कण्ठितत्वलक्षणमुपमेयरूपं गम्यम् । अनुश्टुप् छन्दः ॥ १० ॥

आर्य = मान्य, विस्तरश्रवणम् = विस्तरेण पितृभ्रातृवृत्तान्तस्य श्रवणम् । मे = मम मनसः स्थैर्यम् = स्थिरताम्, उत्पादयति = सम्पादयति, तत् = तस्मात्, सर्वम् = सकलम्, अनवशेषम् = निःशेषम् । नास्ति अवशेषो यस्मात् तत् यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम्, साकल्येनत्यर्थः । अभिधीयताम् = कथ्यताम् ।

देवकुलिकः—श्रूयताम् = ज्ञायताम् । तत्रभवता राज्ञा = नृपेण, अभिषिच्यमाने = राज्यधुरेनियोज्यमाने । अत्र वर्त्तमानार्थकशानचा कैकेयीकर्तृकविघ्नस्य अभिषेक-

---

भरत—(होश में आकर) हाय, पिता और भाई से शून्य अयोध्या जंगल के समान है। वहाँ मैं ठीक उसी प्रकार जा रहा हूँ, जैसे कोई प्यासा आदमी सूखी नदी की ओर दौड़ता जा रहा हो ॥ १० ॥

आर्य, सविस्तर सुनने से मेरे मन को कुछ सहारा मिल रहा है। कृपया पूरी बातें कहें।

देवकुलिक—सुनिए, जब माननीय महाराज कुमार राम का अभिषेक कर रहे थे, उस समय आप की माता ने कहा—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—तिष्ठ ।

तं स्मृत्वा शुल्कदोषं भवतु मम सुतो राजेत्यभिहितं
तद्धैर्येणाश्वसन्त्या व्रज सुत ! वनमित्यार्योऽप्यभिहितः ।
तं दृष्ट्वा बद्धचीरं निधनमसदृशं राजा ननु गतः
पात्यन्ते धिक्प्रलापा ननु मयि सदृशाः शेषाः प्रकृतिभिः ॥ ११ ॥

प्रवृत्तिकालिकत्वमुक्तम्, तेन च तादृशव्यवहारस्य नितान्तमनौचित्यम्, तेनाधिक-खेदावहत्वं च व्यञ्जितम् । भवतः=तव, जनन्या=मात्रा, अत्रापि तस्या नाम्नोनु-पादानम् क्षोभस्य व्यञ्जनार्थम् । अभिहितम्=कथितम्, किल=इति निश्चये ।

भरतः—तिष्ठ=अलमितोऽग्रेऽभिधायेत्यर्थः ।

अन्वयः-तम् शुल्कदोषम् स्मृत्वा मम सुतः राजा भवतु इति तया अभिहितम्, तत् धैर्येण आश्वसन्त्या सुत, वनं व्रज इति आर्यः अपि अभिहितः, तं बद्धचीरम् दृष्ट्वा राजा असदृशम् निधनम् गतः ननु, प्रकृतिभिः शेषाः सदृशाः धिक्, प्रलापाः ननु मयि पात्यन्ते ॥ ११ ॥

व्याख्या—तम्=पूर्वोक्तम् शुल्कदोषम्=शुल्कमेव दोषम् अनर्थावहत्वात्, स्मृत्वा=ध्यात्वा, मम सुतः=मदीयपुत्रः, राजा=नृपः, भवतु=यातु, इति=इत्थम्, तया=कैकेय्या, अभिहितम्=कथितम् इति तर्कयामि । तस्मिन् राज्ञानुमते तस्य राज्ञो धैर्येण=स्वोक्तस्यार्थस्य राज्ञा स्वीकृतत्वे पुत्रकर्तृकराजत्वप्राप्तौ जातेन विश्वासेन, आश्वसन्त्या=साहसं प्राप्तवत्या, सुतं=पुत्रं वनम्=अरण्यम्, व्रज=गच्छ, इति=इत्थम् आर्यः=रामः, अपि, अभिहितः=आज्ञप्तः । तम्=रामम् बद्धचीरम्, बद्धानि=परिहितानि, चीराणि=बल्कलानि येन वनगमनार्थं तं वनम् व्रजन्तमित्यर्थः । विलोक्य=दृष्ट्वा, राजा=नृपदशरथः, असदृशम्=अयोग्यम्, अनवसरम्, निधनम्=मरणम्, गतः=प्राप्तः । नन्विति=निश्चये । प्रकृतिभिः=प्रजाजनैः, शेषाः=जननीकैकेयीभर्त्सनावशिष्टाः, धिक्प्रलापाः=धिग्वचनानि, सदृशाः=समुचिताः, मयि पात्यन्ते=निक्षिप्यन्ते । ननु=इति सम्भावनायाम् । सुवदना वृत्तम् ॥ ११ ॥

भरत—बस कीजिए,

उस अनर्थकारी विवाह-शुल्क की याद आने से कहा होगा कि 'मेरा बेटा राज्याधिरूढ़ हो ।' इस प्रार्थना के सफल हो जाने से उसका हार्दिक बल बढ़ गया होगा, और उसने दूसरी प्रार्थना की होगी कि राम वन को जाँय । वल्कलधारी राम को वन जाते देख राजा बेमौत मर गए होंगे । इन सारी बातों से दुःखी प्रजा इन सारे अनर्थों की जड़ मुझे मानकर धिक्कारती होगी । उनका धिक्कारना ठीक भी है ॥ ११ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(मोहमुपगतः)

(नेपथ्ये)

उत्सरतार्याः उत्सरत ।

उस्सरह अय्या ! उस्सरह !

देवकुलिकः—(विलोक्य) अये,

काले खल्वागता देव्यः पुत्रे मोहमुपागते ।
हस्तस्पर्शो हि मातॄणामजलस्य जलाञ्जलिः ॥ १२ ॥

(नेपथ्ये=वेशरचनागृहे)

अथ देव्यागमनाङ्गभूतंपथिजनोत्सारणसमुदाचारमाह—उस्सरहेत्यादि ।

देवकुलिकः—(विलोक्य=दृष्ट्वा) अये=आश्चर्यम् ।

अन्वयः—पुत्रे मोहमुपागते देव्यः काले आगताः खलु, मातॄणाम् हस्तस्पर्शः हि अजलस्य जलाञ्जलिः ॥ १२ ॥

व्याख्या—पुत्रे=भरते, मोहम्=निश्चेतनत्वम्, उपागते=प्राप्ते, देव्यः= कौशल्यादयो राजाङ्गनाः, काले=उचिते समये, आगताः=उपेताः, खलु=निश्चयेन । पुत्रसमाश्वसनावसरस्योपस्थितत्वादत्रासामधुनोपसत्तिः कालांतरोपसत्त्यपेक्षया समधिकोपयुक्तेत्याशयः। ननु सामान्यजनेनापि मूर्च्छितस्य भरतस्य वीजनादिनोपचारेण मूर्च्छाया निरसनीयत्वे यन्मातॄणामुपस्थितिर्नाधिकप्रयोजनेत्याशङ्कायामाह— हस्तेति । मातॄणाम् हस्तस्पर्शः मातृभिः क्रियमाणः पाणिकरणकः स्पर्शः अजलस्य=जलरहितस्य जलार्थिनः जलाञ्जलिः, स इव तृप्तिप्रदो मातृहस्तस्पर्श इति भावः । यथा पिपासाकुलः कश्चित् जलप्राप्त्या पुनः प्राणिति, तथैव मातृहस्तस्पर्शेन मोहमुपागतोऽपि चेतनतामुपयाति । पूर्ववाक्यार्थस्योत्तरवाक्यार्थेन समर्थनात् काव्यलिङ्गमलङ्कारः । हस्तस्पर्शजलाञ्जल्योश्चामवन् सम्बन्ध उपमायां पर्यवस्यन् निदर्शनालङ्कारताम् भजति–"अभवन् वस्तु सम्बन्ध उपमा परिकल्पकः—निदर्शना" इति तल्लक्षणात् । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १२ ॥

(मूर्छित हो जाते हैं)

(नेपथ्य में)

हटो, सज्जनो हट जाओ।

पुजारी—(देखकर) अहो, ज्यों ही भरत अचेत हुए ठीक समय पर देवियाँ आ पहुँचीं, क्योंकि बेटे के लिए माँ के हाथ का स्पर्श प्यासे के लिए जल की तरह है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(ततः प्रविशन्ति देव्यः सुमन्त्रश्च)

सुमन्त्रः—इत इतो भवत्यः ।

इदं गृहं तत् प्रतिमानृपस्य नः समुच्छ्रयो यस्य स हर्म्यदुर्लभः ।
अयन्त्रितैरप्रतिहारिकागतैर्विना प्रणामं पथिकैरुपास्यते ॥१३॥

(प्रविश्यावलोक्य) भवत्यः ! न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम् ।

अयं हि पतितः कोऽपि वयःस्थ इव पार्थिवः ।

(ततः=तत्पश्चात्, प्रविशन्ति=प्रवेशं कुर्वन्ति, देव्यः=कौशल्यादयः सुमन्त्रः च=पुनः)

सुमन्त्रः—इत इत्यादि=आगच्छन्त्विति शेषः । इदम् गृहम्—

अन्वयः—यस्य स हर्म्यदुर्लभः समुच्छ्रयः तद् इदं नः प्रतिमानृपस्य गृहम्, (यद्) अयन्त्रितैः अप्रतिहारिकागतैः पथिकैः प्रणामं विना उपास्यते ॥ १३ ॥

व्याख्या—यस्य=गृहस्य, सः=प्रसिद्धः, हर्म्यदुर्लभः=राजसदनातिशायी, समुच्छ्रयः=औन्नत्यम्, अस्तीति शेषः । तत् इदम्=पुरो दृश्यमानम्, नः= अस्माकम्, प्रतिमा नृपस्य=प्रतिमारूपेणावशिष्टस्य नृपस्य, गृहम्=सदनम्, अयन्त्रितै=अप्रतिषिद्धैः, अप्रतिहारिकागतैः=द्वाराधिकृतनैरपेक्ष्येण प्रविष्टैः, पथिकैः= अध्वगैः, प्रणामम् विना=नमस्कारमन्तरेण, उपास्यते=सेव्यते । साक्षान्नृपस्य गृहं तु नियन्त्रितैः प्रतिहारिद्वारागतैः अमात्यादिभिः प्रणामपूर्वं सेव्यत इति तत् सकाशात् प्रतिमानृपगृहस्य न्यूनतया व्यतिरेकालङ्कार उक्तः । वंशस्थवृत्तम् ॥ १३ ॥

(प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा, अवलोक्य=दृष्ट्वा) भवत्यः=मे पूज्याः । न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम्–प्रविशन्तीनाम् देवीनाम् निषेधः कृतः । सम्प्रति तत्कारणमाह- अयमिति ।

व्याख्या—हीति=हेतौ, यत इत्यर्थः । अयम्=पुरो दृश्यमानः, कोऽपि अज्ञातपरिचयः, वयस्थः=युवा, पार्थिवः=नृपः इव=यथा, पतितः अस्तीति शेषः ।

(देवियों और सुमन्त्र का प्रवेश)

सुमन्त्र—देवियों, आप सब इधर से आयें ।

यह है कि प्रतिमा रूप से अवस्थित महाराज का सदन जो ऊँचाई में राजमहलों से भी बड़ा है । यात्रीगण यहाँ बिना रोक-टोक के जाते-आते हैं तथा प्रणाम-रहित प्रार्थना करते हैं ॥ १३ ॥

(प्रवेशकर और देखकर) देवियों, आप अन्दर न आयें ।
यहाँ कोई युवा राजकुमार--महाराज दशरथ की जवानी की प्रतिमूर्ति की तरह मूर्च्छित पड़ा है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देवकुलिकः—

परशङ्कामलं कर्तुं गृह्यतां भरतो ह्ययम् ॥ १४ ॥

(निष्क्रान्तः)

देव्यः—(सहसोपगम्य) हा जात ! भरत ! (हा जाद ! भरद !)

भरतः—(किञ्चित् समाश्वस्य) आर्य !

सुमन्त्रः—जयतु महा (इत्यर्धोक्ते सविषादम्) अहो स्वरसादृश्यम् । मन्ये प्रतिमास्थो महाराजा व्याहरतीति ।

भरतः—अथ मातृणामिदानीं काऽवस्था ।

देवकुलिकः–भरतोऽयमिति शङ्कामपनुदन्नाह–परशङ्काम्–परः भरताद्भिन्नोयमिति शङ्काम् वितर्कं कर्त्तुं, अलं वृथा, परोऽयमिति मा शङ्किष्ठा इति भावः । नियमेन बोधयन्नाह अयम्=भूमौ पतितः भरतः गृह्यताम्=उपादीयताम् । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १४ ॥

(निष्क्रान्तः=बहिर्गतः)

देव्यः—(सहसोपगम्य=सहसा समीपं गत्वा) हा जात=हा पुत्र, भरत=कैकेयीसुत,

भरतः—(किञ्चित्=किमपि, समाश्वस्य=आश्वासनं प्राप्य) आर्य=मान्य ।

सुमन्त्रः—सुमन्त्रो भरतस्य 'आर्य' इति वचनेन दशरथोयमिति भ्रातरं सम्बोधयन्नाह जयतु=विजयताम् । महा—(इति=इत्थं, अर्धोक्ते=सविषादम्=विषादेन सह) अहो=आश्चर्यम्, स्वरसादृश्यम्=ध्वनिसाम्यम्, मन्ये प्रतिमास्थः=प्रतिमारूपो महाराजः=दशरथः कथयति ।

भरतः—अथ मातृणाम्=कौशल्यादीनाम्—काऽवस्था=का स्थितिरिति ।

पुजारी—इनमें अन्य की आशंका न करें, ये कुमार भरत हैं । इन्हें सम्भालें ॥ १४ ॥

(जाता है)

देवियाँ (शीघ्र पास जाकर) हा ! पुत्र भरत ।

भरत—(कुछ सचेत होकर) आर्य,

सुमन्त्र--जय हो महा--(आधा कहने पर) आश्चर्य, कितना स्वरसाम्य है । मुझे तो लगा महाराज की प्रतिमा ही सजीव होकर बोल उठी है ।

भरत--इस समय माताओं की क्या दशा है ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देव्यः—जात ! एषा नोऽवस्था। (अवगुण्ठनमपनयन्ति) जाद ! एसा णो अवत्था।

सुमन्त्रः—भवत्यः ! निगृह्यतामुत्कण्ठा।

भरतः—(सुमन्त्रं विलोक्य) सर्वसमुदाचारसन्निकर्षस्तु मां सूचयति। कच्चित् तात ! सुमन्त्रो भवान् ननु ?

सुमन्त्रः—कुमार; अथ किम्। सुमन्त्रोऽस्मि।

अन्वास्ययानश्चिरजीवदोषैः कृतघ्नभावेन विडम्ब्यमानः।
अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने जीवामि शून्यस्य रथस्य सूतः ॥१५॥

देव्यः—जात=पुत्र, एषा=पुरोवर्त्तमाना, नः—अस्माकम्, अवस्था= दशा· (अवगुण्ठनमपनयन्ति=अवगुण्ठनपटापनयनं स्वावस्थासाक्षात्कारार्थम्, अपनयन्ति)

सुमन्त्रः—भवत्यः=श्रीमत्यः, निगृह्यताम्=मनसि नियम्यताम्, उत्कण्ठा= शोकः।

भरतः—(सुमन्त्रम्=एतदाख्यसचिवम्, विलोक्य=दृष्ट्वा) सर्वसमुदाचार सन्निकर्षस्तु=सर्वस्मिन् सर्वविधे, समुदाचारे=अवगुण्ठनापनयनरूपे पुत्रविस्रब्ध- वृद्धमन्त्र्यतिरिक्तपुरुषसन्निकर्षपरिहरणीयेऽपि सन्निधिस्थितिस्तु मां सूचयति 'अमुको भवानि'ति अनुमापयति। सूचितमर्थं निश्चयाय पृच्छति—कच्चिदिति। कच्चिदिति प्रश्ने, ननु—इति तर्के।

सुमन्त्रः—कुमार=राजकुमार, अथ किम्, सुमन्त्र एवाऽस्मि।

अन्वयः—चिरजीवदोषैः अन्वास्यमानः, कृतघ्नभावेन विडम्ब्यमानः अहं हि तस्मिन् नृपतौ, विपन्ने शून्यस्य रथस्य सूतः जीवामि ॥ १५ ॥

व्याख्या—चिरजीवदोषैः=चिरजीविपुरुषसुलभैः दोषैः स्वप्रियजनविपद्दर्शना- दिरूपैः, अन्वास्यमानः=अनुगम्यमानः, कृतघ्नभावेन=कृतघ्नतया, विडम्ब्यमानः=

रानियाँ--बेटे हमारी यह दशा है। (घूँघट हटातीं है)

सुमन्त्र--देवियों, अपने आवेग को रोकें।

भरत--(सुमन्त्र को देखकर) सभी प्रकार के कृत्यों में राजरानियों के पास आप की उपस्थिति से पता चलता है कि आप सुमन्त्र जी हैं ?

सुमन्त्र--कुमार, हाँ मैं सुमन्त्र ही हूँ।

मेरी लम्बी आयु ने मुझमें अनेक बुराइयाँ ला दी है। कृतघ्नता ने मुझे विडम्बित किया। और अब मैं राजा की मृत्यु के बाद उनके सूने रथ का सारथि हूँ ॥ १५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—हा तात ! (उत्थाय) तात ! अभिवादनक्रममुपदेष्टुमिच्छामि मातॄणाम् ।

सुमन्त्रः—बाढम् । इयं तत्रभवतो रामस्य जननी देवी कौशल्या ।

भरतः—अम्ब ! अनपराद्धोऽहमभिवादये ।

कौशल्या—जात ! निःसन्तापो भव । (जाद ! [णिस्सन्दावो होहि ।]

भरतः—(आत्मगतम्) आक्रुष्ट इवास्म्यनेन । (प्रकाशम्) अनुगृहीतोऽस्मि । ततस्ततः ।

उपहस्यमानः, अहम्=सुमन्त्रः, हीति निश्चयेन, तस्मिन् नृपतौ=दशरथे, विपन्ने=मृते सति, शून्यस्य=स्वामिविहीनस्य, रथस्य=स्यन्दनस्य, सूतः=सारथिः, जीवामि=प्राणिमि । विपन्नं स्वामिनमननुविपद्य यज्जीवनं, सैव मे कृतघ्नतेत्यभिप्रायः । द्वितीयतृतीयचरणद्वये उपेन्द्रवज्रा, प्रथमे अन्तिमे, चेन्द्रवज्रा, तेनोपजातिः ॥१५॥

भरतः—हा तात=हा पितः (**उत्थाय**) तात=पूज्य, अभिवादनक्रमम्=बहुकालं प्रोष्यदृष्टासु मातृषु, का केति विशेषमजानन् कस्यै प्रथमम् प्रणाममुपनयेदिति व्यामोहेनेदृशः प्रश्नः ।

सुमन्त्रः—बाढम्=स्वीकृतम् । इयम्=एषा, तत्रभवतः=श्रीमतः रामस्य=तव ज्येष्ठस्य, जननी=माता देवी कौशल्या ।

भरतः—अम्ब=मातः, अनपराद्धः=अकृतापराधः एतेन कैकेय्या कृते कुकर्मणि स्वासम्मतिः प्रकाशिता । अहम्=भरतः, अभिवादये=अभिवादनं करोमि ।

कौशल्या—जात=पुत्र, निःसन्तापः=विगतहृदयज्वरः भव ।

भरतः—(**आत्मगतम्=स्वगतम्**) आक्रुष्ट इव=भर्त्सितः इव=यथा; अस्मि=भवामि । (**प्रकाशं=श्रावयित्वा**) अनुगृहीतोऽस्मि=अनुग्रहं प्राप्तोऽस्मि । ततस्ततः=तत्पश्चात् । अनेन कौशल्योदीरितः शुभाशीर्वादोप्युपालम्भवत् भरतस्य हृदयं व्यथयतीति भावः । एतेन भरतस्य स्वविषया जुगुप्सा तथा च संतापातिशयः प्रतीयते ।

भरत--हा तात, (**उठकर**) तात, अब मैं माताओं के प्रणाम करने का क्रम जानना चाहता हूँ ।

सुमन्त्र--अच्छा, ये हैं श्री राम की माता देवी कौशल्या ।

भरत--माँ, निरपराध भरत आप को प्रणाम करता है ।

कौशल्या--बेटा; तेरा संताप शान्त हो ।

भरत--(**स्वागत**) इससे मेरी भर्त्सना की जा रही है (**प्रकट**) बड़ी कृपा । और,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुमन्त्रः—इयं तत्रभवतो लक्ष्मणस्य जननी देवी सुमित्रा ।
भरतः—अम्ब ! लक्ष्मणेनातिसन्धितोऽहमभिवादये ।
सुमित्रा—जात ! यशोभागी भव । [जाद ! जसोभाई होहि ।]
भरतः—अम्ब ! इदं प्रयतिष्ये । अनुगृहीतोऽस्मि । ततस्ततः ।
सुमन्त्रः—इयं ते जननी ।
भरतः—(सरोषमुत्थाय) आः पापे !

मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं न शोभसे ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता ॥ १६ ॥

सुमन्त्रः—इयम् =एषा, तत्रभवतः=श्रीमतः, लक्ष्मणस्य, जननी=माता, देवी सुमित्रा–अस्तीति शेषः ।

भरतः—अम्ब=मातः, लक्ष्मणेन=तव सुतेन, अतिसन्धितः=रामानुगमनकर्तुः लक्ष्मणस्यातिलाभस्य मयि संविभागमकृत्वा स्वयं तद्ग्रहणेन वञ्चितः । अतिसंहितः इति पाठेऽपि अयमेवार्थः । अहम्=लक्ष्मणः, अभिवादये=प्रणमामि ।

सुमित्रा—जात=हे पुत्र, यशोभागी=यशस्वी भव ।

भरतः—अम्ब =मातः, प्रयतिष्ये=यशोलाभमुद्दिश्य यत्नं करिष्ये । एतेन भरतस्य राज्यविषयकोऽलोभः कर्त्तव्यनिर्धारणक्षमता च प्रकटिता ।

सुमन्त्रः—इयम्=एषा, ते=तव, जननी=माता ।

भरतः—(**सरोषम्=सक्रोधम्, उत्थाय**) आः पापे=पापकारिणि दुष्टे ।

अन्वयः— मम मातुः मातुः च मध्यस्था त्वं गङ्गायमुनयोः मध्ये प्रवेशिता कुनदी इव न शोभसे ।

व्याख्या—मम मातुः=कौशल्यायाः, मातुः=सुमित्रायाश्च, मध्ये=मध्यभागे, त्वम्=कैकेयी, न शोभसे=न शोभामावहसि, सदृशयोरेव सहवासस्य शोभाधायकत्वात् । गङ्गा च यमुना चेति तयोरत्यन्तपवित्रयोर्मध्ये प्रवेशिता कुनदी=कुत्सिता नदी, यथा न शोभते तथैवेति भावः । उपमालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥१६॥

सुमन्त्र--ये रहीं, लक्ष्मण की माता देवी सुमित्रा ।

भरत--माँ, राम की सेवा के लिए मुझे अवसर न देकर लक्ष्मण द्वारा वञ्चित मैं तुमको प्रणाम करता हूँ ।

सुमित्रा--बेटा, यशस्वी बनो ।

भरत--अम्ब, इसके लिए प्रयास करूँगा । आगे--

सुमन्त्र--ये हैं आप की जननी--

भरत—(**बड़े क्रोध से उठकर**) आः पापे !

मेरी माता कौशल्या और माता सुमित्रा के बीच बैठी तुम उसी तरह बुरी लगती हो जैसे गंगा और यमुना के बीच में प्रविष्ट कोई कुनदी ॥ १६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कैकेयी—जात ! किं मया कृतम् ? [जाद ! किं मए किदं ?]

भरतः—किं कृतमिति वदसि ?

वयमयशसा, चीरेणार्यो, नृपो गृहमृत्युना,
प्रततरुदितैः कृत्स्नाऽयोध्या, मृगैः सह लक्ष्मणः ।
दयिततनयाः शोकेनाम्बाः, स्नुषाऽध्वपरिश्रमै-
र्धिगिति वचसा चोग्रेणात्मा त्वया ननु योजिताः ॥ १७ ॥

कैकेयी—जात=हे सुत, मया=कैकेय्या, किं कृतम्=मया किं अकार्यम् कृतम् येनैवमुपालभस इति भावः ।

भरतः—किं कृतमिति वदसि=आत्मना कृतमजानन्तीव पृच्छसि—किं कृतमिति ।

अन्वयः—ननु त्वया वयम् अयशसा (योजिताः), आर्यः चीरेण (योजितः); नृपः गृहमृत्युना, कृत्स्ना अयोध्या प्रततरुदितैः, लक्ष्मणः मृगैः सह (योजितः) दयिततनयाः अम्बाः शोकेन, स्नुषा अध्वपरिश्रमैः आत्मा च उग्रेण धिग् इति वचसा योजिताः ।

व्याख्या—नन्विति सम्बोधने, त्वया=पापिन्या, वयम्=अहम्; अयशसा=अकीर्त्या, योजिताः=संयोजिताः, 'भरतो राज्यकामुको मात्रैवं कारितवान्' इत्येवं रूपया अकीर्त्या संयोजिताः । आर्यः=रामः, चीरेण=बल्कलेन योजितः =वनवासिवेषं ग्राहितः । नृपोः=दशरथः गृहमृत्युना योजितः=मुनिवृत्तिमाश्रित्य वने मर्त्तुमर्हो गृहमरणेन संयोजितः, कृत्स्ना=सर्वावयवयुक्ता, अयोध्या, प्रततरुदितैः=अविच्छिन्नप्रवृत्ताश्रुविमोचनैः योजिता । लक्ष्मणः=सुमित्रानन्दनः, मृगैः=हिरणैः, सह=सार्द्धम्, योजितः, अर्थात् वने मृगसहवासित्वं नीत इत्यर्थः । दयिताः=प्रियाः, तनयाः=पुत्रा यासां ताः अम्बाः सुमित्राकौशल्ये, शोकेन=भर्तृपुत्रवियोगदुःखेन योजिताः । स्नुषा=सीता देवी, अध्वपरिश्रमैः= मार्गसञ्चारायासैः, योजिता । आत्मा च उग्रेण=मर्मभेदिना, धिगिति वचसा

कैकेयी—बेटा मैंने क्या किया ?

भरत—कहती हो क्या किया ?

हमें अयश की गठरी से कलंकित कर दिया, आर्य राम को वल्कलधारी बना दिया, महाराज को मरने के लिए विवश किया, सारी अयोध्या को रुलाया, लखन को मृग का सहवासी बनाया, पुत्रप्रणयिनी माताओं को शोक-सागर में डुबाया । पुत्रवधू सीता को जंगल में भटकने को बाध्य किया और अपने को भी धिक्कार का पात्र बनाया । अर्थात् क्या नहीं किया ? ॥ १७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कौशल्या—जात ! सर्वसमुदाचारमध्यस्थः किं न वन्दसे मातरम् ? [जाद ! सव्वसमुदाआरमज्झत्थो किं ण वन्दसि मादरं ।]

भरतः—मातरमिति । अम्ब ! त्वमेव मे माता । अम्ब ! अभिवादये ।

कौशल्या—नहि, नहि ! इयं ते जननी । [णहि णहि इअं दे जणणी ।]

भरतः—आसीत् पुरा । न त्विदानीम् । पश्यतु भवती—

त्यक्त्वा स्नेहं शीलसङ्क्रान्तदोषैः पुत्रास्तावन्नन्वपुत्राः क्रियन्ते ।
लोकेऽपूर्वं स्थापयाम्येव धर्मं भर्तृद्रोहादस्तु माताऽप्यमाता ॥ १८ ॥

'धिक् कैकेयीम्' इति निन्दावचनेन योजितः । एतावत्याः अनर्थपरम्परायाः मूलं भूत्वापि किं मया कृतमिति स्वकर्त्तव्यप्रश्नप्रगल्भायास्तव धार्ष्ट्यमतितरामिति । एतेन भरतस्य कैकेयीं प्रति घृणाख्यो भावो व्यक्तः । प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां चैकक्रियाभिसम्बन्धनात्तुल्ययोगितालङ्कारः । हरिणी वृत्तम् ॥ १७ ॥

कौशल्या—जात=हे पुत्र, सर्वसमुदाचारमध्यस्थः=सकलसदाचारपालनप्रवणः मातरं=कैकेयीम्, किन्न वन्दसे=कुतो न प्रणमसि ! सर्वसमुदाचारपालको भूत्वा मातृवन्दनरूपात् सदाचारात् कुतश्च्यवस इति ।

भरतः—मातरमिति=सा मे मातैव नास्ति, त्वमेव मे माता=कौशल्या एव मे माता, अम्ब अभिवादये—अर्थात् त्वामेवाभिवादये ।

कौशल्या—नहि नहि, इयम्=एषा, ते=तव, जननी=माता ।

भरतः—अस्यां मे बहुमानः पूर्वमासीत् नतु सा जननी इदानीमस्तीत्याशयः। पश्यतु=अवलोकयतु, भवती=श्रीमती ।

अन्वयः—ननु शीलसंक्रान्तदोषैः तावत्पुत्राः स्नेहं त्यक्त्वा अपुत्राः क्रियन्ते। एष अहं लोके अपूर्वं धर्मं स्थापयामि, भर्तृद्रोहात् माता अपि अमाता अस्तु ॥१८॥

व्याख्या—ननु=इति प्रश्ने, शीलसंक्रान्तदोषैः=सहवासिपरिजनगतदुःख-

---

कौशल्या—पुत्र, सब तरहके शिष्टाचार को जानते हुए भी तुमने अपनी मां को प्रणाम क्यों नहीं किया ?

भरत—अपनी माता को, मेरी माता तो तुम्हीं न हो । तुम्हें भरत प्रणाम करता है ।

कौशल्या—नहीं नहीं, तुम्हारी मां तो ये हैं ।

भरत—हां, पहले तो थीं, अब नहीं हैं । तुम्हीं देखो न—

इसने दुष्ट परिजनों के सहवास में सत्य स्नेह को छोड़कर बेटों से नाता तोड़ लिया है। आज मैं लोक में एक नये धर्म की स्थापना करने जा रहा हूँ—जो स्त्री अपने स्वामी से द्रोह करे, वह पुत्रवती होने पर भी मां कहलाने की अधिकारिणी नहीं है ॥ १८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कैकेयी—जात ! महाराजस्य सत्यवचनं रक्षन्त्या मया तथोक्तम् । [जाद ! महाराअस्स सच्चवअणं रक्खन्तीए मय तह उत्तं ।]

भरतः—किमिति किमिति ?

कैकेयी—पुत्रको मे राजा भवत्विति । [पुत्तओ मे राजा होदु त्ति ।]

भरतः—अथ स इदानीमार्योऽपि भवत्याः कः ?

भावसंक्रमदोषैः, तावदादौ, पुत्राः सुताः अपि, स्नेहम् त्यक्त्वा = ममतामुत्सृज्य, अपुत्राः क्रियन्ते=अनया अपुत्रवदाचर्यन्ते, द्विष्टव्यवहारविषयताम् नीयन्त इत्यर्थः । अथवा अनर्गलव्यवहारेण पुत्रानर्हे कर्मणि प्रवर्त्यन्ते । किं तद् अपुत्रकर्म यत् कर्तुं त्वया व्यवसितमित्यत्राह—एषः अहम् = भरतः, लोके = जगति, अपूर्वम्=अन्यानुष्ठितम्, पूर्वमिति च्छेदे इदम् प्रथमादृतं, धर्मम् स्थापयामि = प्रवर्त्तयामि, भर्तृद्रोहात्=पुत्रद्रोहद्वारेण स्वभर्तृमरणरूपद्रोहाचरणात्, माता=जननी, अपि अमाता = मातृबहुमानाभाजनम् अस्तु = भवतु । अर्थात्—यथा तया मात्रा इदं प्रथमतया पुत्रे द्रोह आरब्धस्तथा मयापि पुत्रेण तस्यां मातरि मातृबहुमानत्यागः कृत इति । शालिनी छन्दः । अप्रस्तुतः अलंकारः ।। १८ ।।

कैकेयी—जात = पुत्र, महाराजस्य = नृपदशरथस्य, सत्यवचनम् = विवाहसमये दत्तं शुल्कप्रतिज्ञावाक्यम्, रक्षन्त्या = सत्यापयन्त्या, मया तथोक्तम् = यदि मया वरो न व्रियेत्, राजा मिथ्यावचनतां नीयेतेत्याशयः ।

भरतः—उक्तस्याकारं पृच्छति किमिति ।

कैकेयी—पुत्रकः = सुतः, मे = मम, राजा = नृपः, भवतु = यात्विति ।

भरतः—अथ = इति आक्षेपपूर्वके प्रश्ने, सः = असौ, इदानीम् = अधुना, आर्योऽपि = रामोऽपि, भवत्याः कः = भवत्याः आर्यः रामः कः कीदृशः सम्बन्धी । पुत्रो न भवति किमित्यर्थः । अर्थात् आर्यं राज्येऽभिषिच्यमाने तं प्रतिषिध्य मदर्थं राज्यं याचमानाया भवत्याः रामं प्रति पुत्रभावो न स्थित इति अनुचितमाचरितम् ।

कैकेयी—बेटा, मैंने तो महाराज की प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए ही वैसा कहा था ।

भरत—सो क्या ?

कैकेयी—यही कि मेरा बेटा राज्याधिकारी हो ।

भरत—क्या राम तुम्हारे बेटे नहीं है ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पितुर्मे औरसः पुत्रो न क्रमेणाभिषिच्यते ।
दयिता भ्रातरो न स्युः प्रकृतीनां न रोचते ? ॥ १९ ॥

कैकेयी—जात ! शुल्कलुब्धा ननु प्रष्टव्या ? [जाद ! सुक्कलुद्धा णणु पुच्छिदब्बा !]

भरतः—वल्कलैर्हृतराजश्रीः पदातिः सह भार्यया ।
वनवासं त्वयाऽऽज्ञप्तः शुल्केऽप्येतदुदाहृतम् ॥ २० ॥

अन्वयः—मे पितुः औरसः पुत्रः न क्रमेण अभिषिच्यते, भ्रातरः दयिता न स्युः, प्रकृतीनाम् न रोचते ॥ १९ ॥

व्याख्या—मे=मम, पितुः=नृपदशरथस्य, औरसः=स्वबीजोत्पन्नः, पुत्रः सुतः (रामोऽपि) न=नहि ? इति काकुः । क्रमेण नाभिषिच्यते=पुत्रस्य ज्येष्ठक्रमेण राज्याभिषेचनसमुदाचारः किं नास्मत्कुलेऽस्ति । भ्रातरः=अस्मदादयः, दयिताः= प्रियाः न स्युः, किम् न भवेयुः । प्रकृतीनाम्=अमात्यादीनाम्, न रोचते=आर्याभिषेचनं किं न प्रियम् ? सर्वथातिदारुणं त्वयाचरितमिति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ।

कैकेयी—जात=पुत्रक, शुल्कलुब्धा=शुल्के परिपणितमर्थम् याचमाना= प्रतिज्ञातस्यार्थस्यावश्यप्रदेयतया तं याचमानाहं न केनापि निन्दिताचरणदोषेण भर्त्सनीयेति भावः ।

अन्वयः—हृतराज्यश्रीः पदातिः बल्कलैः भार्यया सह त्वया वनवासम् आज्ञप्तः, एतदपि शुल्के उदाहृतमिति ॥ २० ॥

व्याख्या—हृतराजश्रीः=अपनीतराजलक्ष्मीकः, पदातिः=पादचारी, भर्यया सह=पत्न्या सह, अर्थात् आर्यः त्वया वनवासम् आज्ञप्तः=वने वसेत्यनुशिष्टः । शुल्के एतदपि सभार्यायस्य वनगमनमपि, उदाहृतम्=संभाषितम् किम् ? इह काकुः । कामं पुत्राभिषेचनमुदाहृतम् । आर्यवनगमनं तु अनुदाहृतपूर्वमेवेदानीमकाण्डे कल्पितवत्यसीति धिक् त्वां दुर्बुद्धिमिति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २० ॥

क्या राम महाराज के औरस पुत्र नहीं हैं ? क्या उनका अभिषेक ज्येष्ठ के क्रम से प्राप्त नहीं ? क्या हम में भ्रातृस्नेह की कमी है ? अथवा राम का राज्याभिषेक प्रजानुमोदित नहीं था । १९ ।।

कैकेयी—बेटा, विवाहशुल्क की लोभी मां से ऐसे प्रश्न नहीं पूछे जाते ।

भरत—राज्य लेकर और वल्कल पहनाकर सीता के साथ पैदल जो राम को वन में भेज दिया—कह दो, वह भी विवाह शुल्क में ही था ? ।। २० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कैकेयी—जात ! देशकाले निवेदयामि । [जाद ! देशकाले णिवेदेमि ।]

भरतः—अयशसि यदि लोभः कीर्तयित्वा किमस्मान्
किमु नृपफलतर्षः किं नरेन्द्रो न दद्यात् ।
अथ तु नृपतिमातेत्येष शब्दस्तवेष्टो
वदतु भवति ! सत्यं किं तवार्यो न पुत्रः ? ॥ २१ ॥

कष्टं कृतं भवत्या,
त्वया राज्यैषिण्या नृपतिरसुभिर्नैव गणितः
सुतं ज्येष्ठं च त्वं व्रज वनमिति प्रेषितवतो ।
न शीर्णं यद् दृष्ट्वा जनकतनयां वल्कलवती-
महो धात्रा सृष्टं भवति ! हृदयं वज्रकठिनम् ॥ २२ ॥

कैकेयी—जात = पुत्रक, देशकाले निवेदयामि = रामवनगमनाज्ञापनस्य कारणं समुचिते काले त्वां बोधयिष्यामीत्याशयः ।

व्याख्या—यदि अयशसि = =कीर्त्तिविपर्यये, लोभः=आकर्षणः चेत्तदा अस्मान् कीर्त्तयित्वा किम् ? अस्मन्नामकीर्तनेन किं प्रयोजनम् ? तेन विनैवा-यशसः सुलभत्वादित्यभिप्रायः । नृपफलतर्षः किमु=राजभावलभ्यभोग्यवस्तुतृष्णा किमु ? नरेन्द्रः=नृपतिः किं न दद्यात्=सर्वमीप्सितं ते दद्यादेवेत्यर्थः । अथ तव नृपतिमाता=राजजननी इत्येष शब्दः इष्टः अभिलषितश्चेत् भवति, आर्यः =रामः, तव=पुत्रः न भवति किम् ? सत्यं वदतु=सत्यभावेन रामस्य पुत्रत्वे तदन्यथाभावे वा स्वां भावनामाविष्करोतु । मालिनी वृत्तम् ॥ २१ ॥

कष्टम्=अविषह्यं पापम्, भवत्या कृतम्=विहितम्—

व्याख्या—भवति, राज्यैषिण्यां=राज्यकामुकया त्वया=कैकेय्या नृपतिः=

कैकेयी—उपयुक्त स्थान और अवसर मिलने पर ही बतलाऊँगी ।

भरत—यदि तुम्हें अपयश ही प्यारा था तो बीच में मेरा नाम क्यों तुमने लिया ? यदि राज्यैश्वर्य की कामना थी तो महाराज से तुम्हें क्या नही मिल सकता था ? यदि तुम्हें राजमाता कहलाने की ही अभिलाषा थी तो सच बता, क्या राम तुम्हारे पुत्र नही हैं ? उनके राजा होने से क्या तुम राजमाता नहीं बन सकती थी ? ॥ २१ ॥

तुमने बड़ा बुरा किया—

तुमने राज्य-लोभ के कारण महाराज के जीवन की भी चिन्ता नहीं की और 'वन जा' यह कहकर बड़े बेटे को जंगल भेजकर दम लिया । सीता को वल्कल पहने देखकर भी तुम्हारी छाती नहीं फटी, यह बहुत आश्चर्य की बात है । लगता है विधि ने तुम्हारे हृदय को वज्र से भी कठोर बनाया है ॥ २२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुमन्त्रः—कुमार ! एतौ ! वशिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिषेकं पुरस्कृत्य भवन्तं प्रत्युद्गतौ विज्ञापयतः—

गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः ।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः ।। २३ ।।

भरतः—अनुगच्छन्तु मां प्रकृतयः।

सुमन्त्रः—अभिषेकं विसृज्य क्व भवान् यास्यति ?

राजा, असुभिर्न गणितः = प्राणैः परित्यज्यमानो नापेक्षितः । त्वम्=कैकेयी, ज्येष्ठं सुतम्=रामम् च वनं व्रज=अरण्यं गच्छ इति, प्रेषितवती=अयोध्यानगरान्निर्वासितवती । जनकतनयाम्==जानकीम्, बल्कलवतीम्=चीराणि वसानाम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, यत् तव हृदयम्=चित्तम्, न शीर्णम् = द्विधा न विदलितम्, तत् तव हृदयम्=चित्तम्, धात्रा=ब्रह्मणा, वज्रकठिनम्=वज्रवत् कठिनम्, सृष्टम् निर्मितम् । अत्र हेतुनानुमितिकरणादनुमानालङ्कारः । शिखरिणी वृत्तम् ।। २२ ।।

सुमन्त्रः—कुमार=राजकुमार, एतौ वशिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिः=अमात्यादिभिर्द्रव्यप्रकृतिभिः । अभिषेकम्=राज्याभिषेकम्, पुरस्कृत्य = अग्रेकृत्वा, भवन्तम्=श्रीमन्तम्, प्रत्युद्गतौ=कृतप्रत्युद्गमनसत्कारौ विज्ञापयतः ।

व्याख्या—यथा गोपहीनाः = रक्षकरहिताः गावः, अपालिताः=अरक्षिताः रक्षकाभावात्, विलयम्=विनाशम्, यान्ति=प्राप्नुवन्ति, एवं हि=तथैव प्रजाः= प्रकृतयः, नृपतिहीनाः=राज्ञा विरहिताः, प्रजाः=जनाः, शासकाभावेन, विलयम्=विनाशम्, यान्ति=प्राप्नुवन्ति, वै=इति पादपूर्त्यर्थे। अत्र वाक्योपमालंकारः । अनुष्टुप् छन्दश्च ।। २३ ।।

भरतः—अनुगच्छन्तु=अनुसरन्तु, माम्=भरतम्, प्रकृतयः =प्रजाः ।

सुमन्त्रः—अभिषेकम्=राज्याभिषेकम्, विसृज्य=परित्यज्य, क्व=कुत्र, भवान्=श्रीमान्, यास्यति=गमिष्यति ।

सुमन्त्र—कुमार, भगवान् वशिष्ठ और वामदेव, प्रजावर्ग और अमात्यों के साथ आपके राज्याभिषेक के लिए आपको सूचित करते हैं। उनका कहना है—

जिस प्रकार गोपाल के बिना गायें विनष्ट हो जाती हैं, ठीक उसी तरह राजा के बिना प्रजा विनष्ट हो जाती है ।। २३ ।।

भरत—प्रजा मेरा अनुसरण करे।

सुमन्त्र—अभिषेक छोड़ कर आप कहां जायेंगे ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—अभिषेकमिति । इहात्रभवत्यै प्रदीयताम् ।

सुमन्त्रः—क्व भवान् यास्यति ?

भरतः—तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्तते लक्ष्मणप्रियः ।
नायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या यत्र राघवः ॥ २४ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति तृतीयोऽङ्कः ।

भरतः—अभिषेकमिति=भरतस्तु अभिषेकस्यानभीष्टतां प्रकटयन् साक्षेपमाह–अभिषेकम्, अत्र भवत्यै कैकेय्ये, प्रदीयताम् ।

सुमन्त्रः –पुनरप्याशयमजानानः सुमन्त्रः पृच्छति —भवान्=श्रीमान्, क्व=कुत्र, यास्यति=गमिष्यति ?

व्याख्या —यत्र=यस्मिन् स्थाने असौ लक्ष्मणः प्रियो यस्य सः, लक्ष्मण एव आर्यरामस्य प्रियः, यं वनं सहैव नीतवान्, तत्र तस्मिन्स्थाने, यास्यामि=गमिष्यामि । तम्=राघवं विना अयोध्या नायोध्या, सायोध्या यत्र राघवः वर्त्तते । तत्रैव यास्यामीति भावः । अत्र अपह्नुतिरलंकारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २४ ॥

(निष्क्रान्ताः=बहिर्गताः सर्वे)

इति प्रतिमाव्याख्यायाम् तृतीयोऽङ्कः ।

भरत—अभिषेक ! अभिषेक तो इन देवी जी को दीजिए।

सुमन्त्र—आप कहाँ जायेंगे ?

भरत—मैं वहीं जाऊँगा, जहाँ लक्ष्मणप्रिय राम हैं, उनके बिना अयोध्या, अयोध्या नहीं रही । राम जहाँ, अयोध्या वहीं ॥ २४ ॥

(सब का प्रस्थान)

तृतीय अङ्क समाप्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशतश्चेट्यौ)

विजया—हला नन्दिनिके ! भण भण । अद्य कौशल्यापुरोगैः सर्वैरन्तःपुरैः प्रतिमागेहं द्रष्टुं गतैस्तत्र किल भर्तृदारको भरतो दृष्टः ? अहं च मन्दभागा द्वारे स्थिता । [हला णन्दिणिए ! भणेहि भणेहि । अज्ज कोसल्लापुरोगेहि सव्वेहि अन्तेबुरेहि पडिमागेहं दट्ठुं गदेहि तहिं किल भट्टिदारओ भरदो दिट्ठो ? अहं च मन्दभाआ दुवारे ट्ठिदा ।]

नन्दिनिका—हला ! दृष्टोऽस्माभिः कोतूहलेन भर्तृदारको भरतः । [हला । दिट्ठो अम्हेहि कोदूहलेण भट्टिदारओ भरदो ।]

अथ चतुर्थोऽङ्कः प्रारभ्यते । पूर्वाङ्के 'तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्त्तते लक्ष्मणप्रियः' इति भरतस्यारण्यगमननिश्चयः प्रोक्तः । तदनुरोधेन तस्य वनगमनं वने रामसमागमनं चेह घटयिष्यते । तत्रादौ तद्वनप्रस्थानावेदनार्थं प्रवेशकं रचयंश्चेट्योः प्रवेशमाह—ततः प्रविशति इत्यादि ।

विजया—हला नन्दिनिके=सखि नन्दिनिके, हला इति सम्बोधनपदम् । भण-भण=अर्थात् प्रक्ष्यमाणमर्थम् कथय । अद्य=अस्मिन् दिने, कौशल्यापुरोगैः=कौशल्या पुरोगाः अग्रेसरा येषां तैः । सर्वैः=सकलैः, अन्तःपुरैः =राजप्रासादैः, प्रतिमागेहम्=मूर्त्तिसदनम्, द्रष्टुम्=अवलोकयितुम्, गतैः =यातैः, तत्र=तस्मिन्, किल=निश्चयेन, भर्तृदारकः=कुमारः, भरतः=कैकेयीसुतः, दृष्टः=अवलोकितः किम् ? दर्शनेन कीदृगवस्थ इति त्वया ज्ञातः किमित्यर्थः, इह काकुः । कुतस्त्वया स्वयं न दृष्टः इत्यत्राह—अहं चेति । अहं तु मन्दभागा=तद्दर्शनभाग्यहीना । द्वारे स्थिता द्वारप्रतिपालनपर्यायमनुतिष्ठन्ती द्वारं विहाय अन्यत्र भरतदर्शनाय गन्तुं न पारितवतीति ।

नन्दिनिका—हला=सखि, दृष्टाः=अवलोकितः, अस्माभिः=मया, कौतूहलेन=औत्सुक्येन, भर्तृदारकः=राजकुमारः, भरतः=कैकेयीसुतः ।

(दो दासियों का प्रवेश)

विजया—सखि नन्दिनिका, कहो कहो, सुना है कौशल्यादिक सारा रनिवास आज प्रतिमा-घर को देखने गया था । क्या वहाँ उन लोगों ने कुमार भरत को भी देखा है ? मैं मन्दभागिनी तो दरवाजे पर ही खड़ी रह गयी ।

नन्दिनिका—सखि, हमने तो बड़ी उत्सुक आँखों से कुमार भरत को देखा है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विजया—भट्टिनो कुमारेण किं भणिता। [भट्टिणी कुमारेण किं भणिदा ?]

नन्दिनिका—किं भणितम् ? अवलोकितुमपि नेच्छति कुमारः । [किं भणिदं ? आलोइदुं वि णेच्छदि कुमारो ।]

विजया—अहो अत्याहितम् । राज्यलुब्धया भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यविभ्रष्टं कुर्वत्यात्मनो वैधव्यमादिष्टम् । लोकोऽपि विनाशं गमितः । निर्घृणा खलु भट्टिनी ! पापकं कृतम् । [अहो अच्चाहिदम् रज्जलुद्धाए भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जविब्भट्ठं करन्तीए अत्तणो वेहव्वं आदिट्ठं । लोओ वि विणासं गमिओ । णिग्घिणा हु भट्टिणी । पापअं किदं ।]

नन्दिनिका—हला ! शृणु। प्रकृतिभिरानीतमभिषेकं विसृज्य रामतपोवनं गतः कुमारः । [हला ! सुणाहि । पइदीहि आणीदं अभिसेअं विसज्जिअ रामतवोवणं गदो कुमारो ।]

विजया—भट्टिनी=राज्ञी कैकेयी, कुमारेण=भरतेन, किं भणिता=किं कथिता ।

नन्दिनिका—किं भणितम्=इत्याक्षेपकथनम्, अर्थात् न किमपीत्यर्थः । अवलोकितुमपि=द्रष्टुमपि भट्टिनीं, न=नहि, इच्छति=वाञ्छति, कुमारः=कुमारो भरतः इति ।

विजया—अहो अत्याहितम्=महती विपत् । राज्यलुब्धया राज्ये लुब्धा तया, भर्तृदारकस्य=कुमारस्य, रामस्य=कौशल्यानन्दनस्य राज्यविभ्रष्टं=राज्यच्युतिम् कुर्वती, आत्मनः=स्वकीयम् वैधव्यम्, आदिष्टम्=उपनयितम्, लोकोऽपि =प्रजाजनोऽपि, विनाशम्=क्षयम, गमितम्=प्रापितम् । निर्घृणा=निष्करुणा, खलु=निश्चयेन, भट्टिनी=कैकेयी । पापकम्=पापम्, कृतम्=विहितम् ।

नन्दिनिका—हला=सखि, शृणु=श्रूयताम्, प्रकृतिभिः अमात्यादिभिः, आनीतम्=स्वयमुपहृतम्, अभिषेकम्=अभिषेकसंभारम्, विसृज्य=परित्यज्य, रामतपोवनम्=रामाधिष्ठितमरण्यम्, कुमारः=भरतः, गतः=प्राप्तः ।

विजया—क्या ? सखि, कुमारने रानी से क्या कहा ?

नन्दिनिका—क्या कहा ? अरी, वे तो उन्हें देखना तक नहीं चाहते थे ।

विजया—ओह ! बड़े दुःख की बात है, इस लुब्धा रानी ने राम को राज्यच्युत किया, स्वयं भी विधवा बनी, प्रजा को अनाथ किया। सचमुच इस रानी ने क्रूर कर्म किया है। इसने बहुत बुरा किया ।

नन्दिनिका—सखि, सुनो, सचिवों द्वारा प्रस्तुत राज्याभिषेक को ठुकराकर कुमार भरत ने राम के दर्शन के लिए तपोवन को प्रस्थान किया ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विजया—(सविषादम्) हम् ! एवं गतः कुमारः । नन्दिनिके ! एह्यावां भट्टिनीं पश्यावः । [हम् ! एवं कदो कुमारो । णन्दिणिए ! एहि, अम्हे भट्टिणिं पेक्खामो ।] (निष्क्रान्ते)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशति भरतो रथेन सुमन्त्रः सूतश्च)

भरतः—स्वर्गं गते नरपतौ सुकृतानुयात्रे
पौराश्रुपातसलिलैरनुगम्यमानः
द्रष्टुं प्रयाम्यकृपणेषु तपोवनेषु
रामाभिधानमपरं जगतः शशाङ्कम् ॥ १ ॥

विजया—(सविषादम्=सखेदम्) हम्=इत्याश्चर्ये, एवम्=अनेन प्रकारेण गतः=प्रयातः, कुमारः=भरतः । नन्दिनिके=हे सखि, एहि=आगम्यताम्, आवाम् भट्टिनीम्=राजमहिषीम्, पश्यावः=अवलोकयावः । (निष्क्रान्ते=बहिर्गते)

(प्रवेशकः)

(ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति=प्रवेशं करोति, भरतः=कैकेयीसुतः, रथेन=स्यन्दनेन, सुमन्त्रः=सारथिः, सूतश्च)

अन्वयः—सुकृतानुयात्रे नरपतौ स्वर्गम् गते पौराश्रुपातसलिलैः अनुगम्यमानः, अकृपणेषु तपोवनेषु, रामाभिधानम् अपरम् जगतः शशाङ्कम् प्रयामि ॥ १ ॥

व्याख्या—सुकृतानुयात्रे=पुण्यानुगे, नरपतौ=दशरथे, स्वर्गम्=दिवम् गते=प्राप्ते, पौराश्रुपातसलिलैः=पुरवासिनाम् वाष्पपातजलैः, अनुगम्यमानः, अहमिति शेषः, अकृपणेषु=उदारेषु (रमणीयेषु) तपोवनेषु, वसन्तमिति शेषः, रामाभिधानम्=रामनामानम्, अपरम्=प्रसिद्धचन्द्रादन्यम्, जगतः=संसारस्य, शशाङ्कम्=आह्लादकत्वाच्चन्द्रम्, द्रष्टुम्=अवलोकयितुम् प्रयामि=गच्छामि। रामेचन्द्रत्वारोपाद्रूपकम् । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १ ॥

विजया—(शोक से) हाय, कुमार की यह दशा ? नन्दिनिका आओ, हम सब रानी के पास चलें । (दोनों का प्रस्थान)

(प्रवेशक)

(रथ में बैठे भरत, सुमन्त्र और सारथि का प्रवेश)

भरत—राजा दशरथ अपने धर्म के साथ स्वर्ग सिधारे । मैं पुरवासियों के आँसुओं का संवल लेकर उदारचरित, तपोवनवासी राम को देखने जा रहा हूँ, जो संसार में द्वितीय चन्द्र हैं ॥ १ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुमन्त्रः—एष एष आयुष्मान् भरतः—

दैत्येन्द्रमानमथनस्य नृपस्य पुत्रो
यज्ञोपयुक्तविभवस्य नृपस्य पौत्रः ।
भ्राता पितुः प्रियकरस्य जगत्प्रियस्य
रामस्य रामसदृशेन पथा प्रयाति ॥ २ ॥

भरतः—भोस्तात !

सुमन्त्रः—कुमार ! अयमस्मि ।

भरतः—क्व तत्रभवान् ममार्यो रामः ? क्वासौ महाराजस्य प्रतिनिधिः । क्व

सुमन्त्रः—एष एव = सुमन्त्रो भरतस्य व्यवसितमभिनन्दयति—आयुष्मान् = चिरञ्जीवी भरतः कुमारः ।

व्याख्या—दैत्येन्द्रमानमथनस्य = असुरश्रेष्ठाहङ्कारमर्दिनः, नृपस्य=दशरथस्य, पुत्रः = सुतः, पुनः यज्ञोपयुक्तविभवस्य = यज्ञविनियुक्तधनसम्पदः, नृपस्य=राज्ञः, अजस्य पौत्रः । पितुः प्रियकरस्य = तातेप्सितकारिणः; जगत्प्रियकरस्य=संसारहितकारिणः, रामस्य = कौशल्यानन्दनस्य भ्राता = अनुजः, एषः भरतः, रामसदृशेन रामस्यानुगुणेन पथा = सदाचारमार्गेण, प्रयाति = गच्छतीति । रामसदृशेन यथा संचरणमेव दशरथपुत्रताया अजपौत्रतायाः रामभ्रातृतायाश्चानुरूपमिति भावः । विशेषणानां साभिप्रायतया परिकरोऽत्रालङ्कारः । वसन्तलिका वृत्तम् ।

भरतः—भोस्तात = हे तात ।

सुमन्त्रः—कुमार = राजकुमार, अयमस्मि = एषः अहमस्मि ।

भरतः—क्व = कुत्र , तत्रभवान् = पूज्यः, मम = मे, आर्यः = श्रेष्ठः रामः । औत्सुक्यातिशयेन प्रश्नः । क्वासौ=कुत्रास्ति, महाराजस्य = दशरथस्य, प्रतिनिधिः = प्रतिरूप इत्यर्थः, सदृशो वा पितरि मृते सति तस्य स्थानीयः तस्य

सुमन्त्र—ये हैं आयुष्मान् भरत—

बड़े बड़े असुरों के मानमर्दक महाराज दशरथ के पुत्र, अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को यज्ञ में लगा देनेवाले महाराज अज के पौत्र, पितृप्रिय राम के ही चरणचिह्नों पर भरत चल रहे हैं ॥ २ ॥

भरत—तात !

सुमन्त्र—कुमार, यहीं तो हूँ ।

भरत—कहाँ हैं मेरे पूज्य भाई राम ? कहाँ हैं वे महाराज के प्रिय प्रतिनिधि ? कहाँ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सन्निदर्शनं सारवताम् ? क्वासौ प्रत्यादेशो राज्यलुब्धायाः कैकेय्याः ? क्व तत् पात्रं यशसः ? क्वासौ नरपतेः पुत्रः ? क्वासौ सत्यमनुव्रतः ?

मम मातुः प्रियं कर्तुं येन लक्ष्मीर्विसर्जिता ।
तमहं द्रष्टुमिच्छामि दैवतं परमं मम ॥ ३ ॥

सुमन्त्रः—कुमार ! एतस्मिन्नाश्रमपदे—

अत्र रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च महायशाः ।
सत्यं शीलं च भक्तिश्च येषु विग्रहवत् स्थिता ॥ ४ ॥

सदृशो वेत्यर्थः । क्व=कुत्र, सारवताम=सारः=प्रशस्तगुणसम्पत्, तद्वताम् प्रशस्तमुदाहरणम्, सन्निदर्शनम्=समीचीनदृष्टान्तः । क्व=कुत्र, असौ=रामः, प्रत्यादेशः = तिरस्क्रिया राज्यप्राप्तये छलेन व्यवहरन्त्याः कैकेय्याः प्राप्तमपि राज्यम् तृणाय मन्यमानो रामो मूर्त्तिरिव तत्पराभवस्य भवतिस्मेति भावः। नरपतेः=महाराजदशरथस्य पुत्रः=योग्यः पुत्र इत्यर्थः । स्वपितृसदृश एवासावपि प्रजापालक इत्यर्थः । सत्यमनुव्रतः=अनुगतो व्रतमित्यनुव्रतः, सत्यं व्रतमनुगत इति गमकत्वात् समासः, सत्यव्रतधारीत्यर्थः ।

व्याख्या—मम=भरतस्य, मातुः=कैकेय्याः, प्रियम्=मनोनुकूलम्, कर्तुम् सम्पादयितुम्, येन=रामेण, लक्ष्मीः=राज्यलक्ष्मीः, विर्साजता=परित्यक्ता, अतएव मम=भरतस्य, परमम्=श्रेष्ठम्, दैवतम्=देववत्पूज्यत्वात् दैवतम्, रामम्= अग्रजम्, तम् द्रष्टुम्=विलोकयितुम्, अहम्=भरतः, इच्छामि=शीघ्रम् दिदृक्षामीत्यर्थः । दैवतमिति रूपकम्, अस्मिन् च पूर्ववाक्यार्थस्य हेतुत्वात्काव्यलिङ्गम् । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३ ।

सुमन्त्रः—कुमार=हे भग्त, एतस्मिन्==पुरोदृश्यमाने, आश्रमपदे= आश्रमप्रदेशे वसतीति शेषः ।

व्याख्या—अत्र=अस्मिन्नाश्रमप्रदेशे महायशाः=प्रचुरविमलकीर्त्तिः रामः,

---

हैं वे बलवानों के श्रेष्ठ आदर्श ? कहाँ, हैं राज्यलुब्धा कैकेयी के तिरस्कर्त्ता ? कहा हैं वे यशोधन ? कहाँ हैं वे महाराज के आदर्श पुत्र ? कहाँ हैं वे सत्यसंकल्प ?

मेरी माता को प्रसन्न करने के लिए जिन्होंने राज्यलक्ष्मी का त्याग किया, अपने उसी परमदेवता के दर्शन की मेरी कामना है ॥ ३ ॥

सुमन्त्र—राजकुमार, इसी आश्रम में—

अति यशस्वी, राम, सीता और लक्ष्मण रहते है । मानों ये तीनों सत्य, भक्ति और शील की प्रतिमूर्त्ति हों ॥ ४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—तेन हि स्थाप्यतां रथः ।
सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् (तथा करोति)
भरतः—(रथादवतीर्य) सूत ! एकान्ते विश्रामयाश्वान् ।
सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (निष्क्रान्तः)
भरतः—भोस्तात ! निवेद्यतां निवेद्यताम् ।
सुमन्त्रः—कुमार! किमिति निवेद्यते?
भरतः—राज्यलुब्धायाः कैकेय्याः पुत्रो भरतः प्राप्त इति ।

सीता लक्ष्मणश्च तिष्ठन्तीति शेषः । तान् विशिनष्टि येषु=रामसीतालक्ष्मणेषु, सत्यम्=ऋतम्, शीलम्=शीलते शोभते इति शीलम् सद्वृत्तम्, भक्तिश्च=गुरुजनविषयको भावश्च, विग्रहवत्=मूर्त्तिमत्, स्थितम् । रामे सत्यम्, सीतायाम् शीलम्, लक्ष्मणे भक्तिरित्यनेन क्रमेण तिष्ठतीति । अत्र विग्रहवत् स्थितमिति पदद्वयम् स्त्रीलिङ्गतया विपरिणमय्य भक्तौ सम्बन्धनीयम् । स्थिता इति पाठे स्त्रीशेष इति आर्षः । विग्रहवत् पदे च स्त्रीशेषाकरणं तदानीं न संगतम् । क्रमेणान्वयात् यथासंख्यालङ्कारः ॥ ४ ॥

भरतः—तेन=कारणेन, स्थाप्यताम्,=स्थिरीक्रियताम्, रथः=स्यन्दनः ।

सूतः—यद् आज्ञापयति=आदिशति कुमारः । (तथा करोति=रथं स्थापयति)

भरतः—(रथात्=स्यन्दनात्, अवतीर्य) सूत=सारथे, एकान्ते=निर्जने, अश्वान्=घोटकान् विश्रामय=मार्गश्रममपाकर्त्तुम् विश्रान्तान् कारय ।

सूतः—यत् आज्ञापयति=आदिशति, आयुष्मान्=चिरंजीवः । (निष्क्रान्तः=वहिर्गतः)

भरतः—भोः तात=हे तात, निवेद्यताम्=सूच्यताम् ।

सुमन्त्रः—कुमार=राजकुमार, किमिति निवेद्यते=सूच्यते ?

भरतः—राज्यलुब्धाया,, कैकेय्याः, पुत्रः=सुतः:, भरतः प्राप्त इति=समागत इति ।

भरत—तो फिर रोको रथ को ।
सूत—जो आज्ञा । **(रथ को रोक देता है)**
भरत—(रथ से उतर कर) सारथि, घोड़ों को एक ओर ले जाकर विश्राम करने दो ।
सूत—आपका जैसा आदेश । **(प्रस्थान)**
भरत—तात, उन्हें सूचित करें, सूचित करें ।
सुमन्त्र—कुमार, क्या सूचित किया जाय ?
भरत—राज्यलुब्धा कैकेयी का पुत्र भरत आया है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुमन्त्रः—कुमार ! अलं गुरुजनापवादमभिधातुम् ।

भरतः—सुष्ठु, न न्याय्यं परदोषमभिधातुम् । तेन हि उच्यताम्—'इक्ष्वाकुकुलन्यग्भूतो भरतो दर्शनमभिलषतीति ।

सुमन्त्रः—कुमार ! नाहमेवं वक्तुं समर्थः । अथ पुनर्भरतः प्राप्त इति ब्रूयाम् ?

भरतः—न न । नाम केवलमभिधीयमानमकृतप्रायश्चित्तमिव मे प्रतिभाति । किं ब्रह्मघ्नानामपि परेण निवेदनं क्रियते ? तस्माद् तिष्ठतु तातः । अहमेव निवेदयिष्ये । भोः भोः ! निवेद्यतां निवेद्यतां तत्रभवते पितृवचनकराय राघवाय—

सुमन्त्रः—कुमार, अलम्=व्यर्थम्, गुरुजनापवादम्=मातुः निन्दाम्, अभिधातुम्=कथयित्वेति सम्बन्धः ।

भरतः—सुष्ठु=सुन्दरम्, न न्याय्यम्=नोचितम्, परदोषम्=परकीयम् दोषम्, अभिधातुम्=आलोचितुम्, तेन=अनेन कारणेन, हि=यतः, उच्यताम्=कथ्यताम्, इक्ष्वाकुकुलन्यग्भूतः=इक्ष्वाकुवंशकलङ्कभूतः, भरतः=कैकेयीसुतः, दर्शनम्=अवलोकनम्, इच्छति=वाञ्छतीति ।

सुमन्त्रः—कुमार=हे भरत, न=नहि: अहम्=सुमन्त्र,, एवम्=इत्थम्, वक्तुम्=कथयितुम्, समर्थः उद्यतोऽस्मि । अथ=अनन्तरम्, पुनः=भूयः, भरतः=कैकेयीसुतः, प्राप्तः=समागतः, इति=इत्थम्, ब्रूयाम्=कथयामि ।

भरतः—न न=नहि नहि, नाम केवलम्=दोषदर्शकविशेषणशून्यम्, अभिधीयमानम् कथ्यमानम्, अकृतप्रायश्चित्तमिव=वस्तुसद्दोषविशेषितत्वेनाभिधीयमानं तु कृतप्रायश्चित्तं भवतीति भावः । मे=मम, प्रतिभाति=संभाव्यते । किम्=कथम्, ब्रह्मघ्नानामपि=ब्रह्महत्यासमानपापकलुषितानामपि परेण=अन्येन निवेदनम् क्रियते । तस्मात्=अतः, तिष्ठतु तातः=तातः स्थीयताम्, अहमेव=स्वयमेव, निवेदयिष्ये=कथयिष्ये=परेणात्मनो ब्रह्मघ्नतुल्यस्य निवेदनमयुक्तमित्याह—

सुमन्त्र—कुमार, गुरुजनों की निन्दा नहीं करनी चाहिए ।

भरत—आपने ठीक ही कहा, दूसरों की निन्दा करना उचित नहीं । सूचित करें कि इक्ष्वाकुवंश का कलंक भरत आपके दर्शनार्थी हैं ।

सुमन्त्र—कुमार, ऐसा मैं नहीं कर सकता । हाँ भरत आये हैं, यह निवेदन कर सकता हूँ ।

भरत—नहीं, नहीं । केवल नाम लेने से प्रायश्चित्त नहीं होता, ऐसा जान पड़ता है । क्या ब्रह्मघातियों की भी सूचना दूसरे देते हैं ? आप रहने दें । मैं स्वयं ही सूचित करूँगा । पिता के वचनों की रक्षा करने वाले महानुभाव रघुकुलतिलक को सूचित करें—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः ।
भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति ।। ५ ।।

(ततः प्रविशति रामः सीतालक्ष्मणाभ्याम्)

रामः—(आकर्ण्य सहर्षम्) सौमित्रे ! किं शृणोषि ? अयि विदेहराजपुत्रि ! त्वमपि शृणोषि ?

कस्यासौ सदृशतरः स्वरः पितुर्मे गाम्भीर्यात् परिभवतीव मेघनादम् ।
यः कुर्वन् मम हृदयस्य बन्धुशङ्कां सस्नेहः श्रुतिपथमिष्टतः प्रविष्टः ॥ ६ ॥

किमित्यादि । स्वयमेव निवेदयति–भोः भोः–निवेद्यताम्=सूच्यताम्, तत्रभवते= पूज्याय श्रीरामाय पितृवचनकराय=पितुराज्ञापालकाय, राघवाय—

व्याख्या:—निर्घृणः=दयारहितः, कृतघ्नः=कीर्त्तिविघाती, च=पुनः, प्राकृतः=नीचः, प्रियसाहसः=प्रियम् साहसम् दुष्करं कर्म यस्य, अन्यायं कृत्वा दर्शनाभिलाषप्रकटनं साहसमेव, एतावद्दोषगणसंकुलोऽपि भक्तिमान्=त्वद्विषय- केणैकेन भक्तिगुणेन युक्त इत्यर्थः, आगतः=समागत इति, कश्चित्=नामनिर्दे- शोऽनुचितः पापिन इति भावः, कथमिति प्रश्ने, तिष्ठतु=दर्शनायेति भावः । इति निवेद्यताम् इति पूर्वेण सम्बन्धः । विशेषणानि साभिप्रायाणीति परिकरालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ।। ५ ।।

(ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति=प्रवेशं करोति, रामः सीतालक्ष्मणाभ्यामिति)

रामः—(आकर्ण्य=श्रुत्वा, सहर्षम्=सानन्दम्) सौमित्रे=हे लक्ष्मण, किं शृणोसि ? अयि विदेहराजतनये=हे सीते त्वमपि शृणोषि=श्रवणं करोषि ?

व्याख्या—मे=मम, पितुः=जनकस्य, सदृशतरः=अत्यन्तसदृशः; कस्य= पुरुषविशेषस्य, स्वरः=वर्णनपद्धतिः, गाम्भीर्यात् हेतोः मेघस्य नादम् गर्जनम् परि- भवतीव=तिरस्करोतीव, यः स्वरः मम=भरतस्य, हृदयस्य=चित्तस्य, बन्धु- शङ्काम्=भ्रातृसन्देहम्, कुर्वन्=जनयन्, सस्नेहः=स्नेहमयः, इष्टतः=इष्टत्वेन

एक नृशंस, कृतघ्न, अधम और उद्दण्ड किन्तु शक्तिशाली व्यक्ति आया है। क्या वह दर्शन के लिए प्रतीक्षा करे या लौट जाये।

(लक्ष्मण सीता सहित राम का प्रवेश)

राम--(सुनकर सहर्ष) लक्ष्मण क्या सुन रहे हो, सीते, तुम भी सुन रही हो न ? पूज्य पिताजी के स्वर के सदृश आवाजवाला जो गंभीरता में मेघ को भी तिरस्कृत करती है। भला यह स्वर किसका होगा । यह स्वर मेरे हृदय में भ्रातृस्नेह उत्पन्न करता है तथा स्नेहिल रूप से कर्णगोचर हो रहा है ॥ ६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लक्ष्मणः—आर्य । ममापि खल्वेष स्वरसंयोगो बन्धुजनबहुमानमावहति । एष हि—

घनः स्पष्टो धीरः समदवृषभस्निग्धमधुरः
कलः कण्ठे वक्षस्यनुपहतसञ्चाररभसः ।
यथास्थानं प्राप्य स्फुटकरणनानाक्षरतया
चतुर्णां वर्णानामभयमिव दातुं व्यवसितः ॥ ७ ॥

हेतुना, श्रुत्योः=कर्णयोः पन्थानम्=मार्गम् श्रुतिपथम् आगतः=प्राप्तः । अयम् भावः—कस्यायं मत्तातपादस्वरसदृशो घनगर्जितानुकारी च शब्दो मम श्रोत्रमाप्याययन् वर्त्तते । यमुपश्रुत्य मम बन्धुना कृतोऽयं शब्दः इति मम मनः सन्दिग्धे इति । प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥ ६ ॥

लक्ष्मणः—आर्य=श्रेष्ठ, ममाऽपि=मम लक्ष्मणस्यापि, खलु=निश्चयेन, एष स्वरयोगः=स्वरसंबन्धः बन्धुजनोचितम् बहुमानम् आदरातिशयम् आवहति= करोति उत्पादयति, एष हीत्यस्य पद्येनाग्रिमेणान्वयः—

व्याख्या—घनः=मांसलः, स्पष्टः=अक्षरव्यक्तिमान्, धीरः=गम्भीरः, समदवृषभस्निग्धमधुरः=मत्तवृषभस्वर इव स्निग्धमधुरः=सरसरम्यः, कलः=अखरः, यथास्थानम् प्राप्य यस्याक्षरस्य यत् स्थानं तात्वादि तत्तत् स्थानमनतिक्रमेण संस्पृश्येत्यर्थः । स्फुटकरणनानाक्षरतया=स्फुटं सौष्ठवयुक्तम् करणम् बाह्याभ्यन्तरलक्षणप्रयत्ने येषां तानि स्फुरकरणानि नानाक्षराणि यस्मिन् स तथाभूतः तस्य भावस्तत्ता तया कण्ठे=गले, वक्षसि=हृदये, उरसि च अनुपहतसञ्चाररभसः= अप्रतिरुद्धप्रचारवेगः एष हि स्वरः, चतुर्णाम् ब्राह्मणादीनाम् अभयं दातुम् व्यवसितः उद्युक्त इव प्रतिभातीति भावः । स्वरस्य यथोक्तगुणयोगोक्त्या ततः प्रयोक्तुः चातुर्वर्ण्यरक्षाचातुर्यं समर्थ्यते । अत्र स्वरसंयोगस्याभयदानसंभावनात् उत्प्रेक्षालङ्कारः । शिखरिणी छन्दः ॥ ७ ॥

लक्ष्मण--आर्य, मेरे हृदय में भी यह आवाज बन्धुभाव उत्पन्न कर रही है--

यह स्वरसंयोग घन, स्पष्ट, गंभीर, मतवाले सांड़ की आवाज की तरह सरस, मधुर, अभिराम, यथा स्थान से वर्णोच्चारणवाला, गले और छाती में अप्रतिहत वेग से प्रभावशाली है, जिससे प्रतीत हो रहा है--जैसे चारों वर्णों को वह अभयदान देने के लिए उद्यत हो ॥ ७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—सर्वथा नायमबान्धवस्य स्वरसंयोगः क्लेदयतीव मे हृदयम् । वत्स ! लक्ष्मण ! दृश्यतां तावत् ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (परिक्रामति)

भरतः—अये, कथं न कश्चित् प्रतिवचनं प्रयच्छति ? किन्नु खलु विज्ञातोऽस्मि कैकेय्याः पुत्रो भरतः प्राप्त इति ?

लक्ष्मणः—(विलोक्य) अये अयमार्यो रामः ! न न । रूपसादृश्यम् ।

मुखमनुपमं त्वार्यस्याभं शशाङ्कमनोहरं—
मम पितृसमं पीनं वक्षः सुरारिशरक्षतम् ।

रामः—सर्वथा अबान्धवस्य=बन्धुभिन्नस्य, न=नहि, अयम् =एषः स्वर-योगः=ध्वनिः । अत्र हेतुम् प्रदर्शयति—क्लेदयतीव=आर्द्रीकरोतीव, स्वजन-स्वरस्यैव स्वभावः यद् हृदयम्=चित्तम् आवर्जयेदिति । वत्स लक्ष्मण = प्रिय लक्ष्मण, दृश्यताम्=अवलोकय तावदिति अवधारणे—

लक्ष्मणः—यत्=यथा, आज्ञापयति=आदिशति, आर्यः=श्रेष्ठः । (परिक्रामति)

भरतः—अये=इति विषादे, कथम्=केन कारणेन, कश्चित्=जनः, न= नहि प्रतिवचनम्=प्रत्युत्तरम्, प्रयच्छति=ददाति । किन्नु खलु = इति वितर्के, एतेनोपेक्षां मनसि कृत्वा स्वापराधं स्मरति, विज्ञातः=परिचितः, अहमस्मि यत् कैकेय्याः पुत्रो भरतः प्राप्त इति=समागत इति ।

लक्ष्मणः—(विलोक्य=दृष्ट्वा) अये=इति विस्मये । भरतम् रामसदृशरूपं विलोक्य रामभ्रान्त्या लक्ष्मण आह—अये इत । अयम् = पुरोदृश्यमानः, आर्यः= श्रेष्ठः, रामः । आत्मनो भ्रान्तृत्वं परिज्ञाय विशेषदर्शनान्निषेधति न नेति । रूप-सादृश्यम्=भ्रातृरूपस्य समानता अस्ति ।

व्याख्या—अस्य मुखम्=आननम्, अनुपमम्=अप्रतिमम्, आर्यस्य=श्रेष्ठजनस्य

राम—निश्चय ही यह आवाज किसी आत्मीयजन की है, क्योंकि इसे सुनकर मेरा हृदय पसीज रहा है । वत्स लक्ष्मण, देखो तो—

लक्ष्मण—जैसी आज्ञा (घूमता है)

भरत—ऐं, कोई उत्तर क्यों नहीं दे रहा है । संभव है, उन्हें यह मालूम हो गया हो कि कैकेयीसुत भरत है ।

लक्ष्मण—(भरत की ओर देखकर) ओह, ये तो आर्य राम है; नहीं नहीं केवल आकृति-साम्य है ।

चाँद की तरह सुन्दर मुखरा, आर्य राम के कमनीय मुख से कितना साम्य है । देवासुर संग्राम में देवों की सहायता के लिए असुरों के बाण-प्रहार से चिह्नित मेरे पूज्य जनक को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्युतिपरिवृतस्तेजोराशिर्जगत्प्रियदर्शनो-
नरपतिरयं देवेन्द्रो वा स्वयं मधुसूदनः ॥ ८ ॥

(सुमन्त्रं दृष्ट्वा) अयं तातः ?

सुमन्त्रः—अये कुमारो लक्ष्मणः ?

भरतः–एवं, गुरुरयम् । आर्य ? अभिवादये ।

लक्ष्मणः–एह्येहि । आयुष्मान् भव (सुमन्त्रं वीक्ष्य) तात ! कोऽत्रभवान् ?

सुमन्त्रः–कुमार !

रामस्य, आभं=मुखम् तस्य आभेवाभा यस्य तत् तथाभूतम्, शशाङ्कश्चन्द्रस्तद्वन्मनोहरम् अस्तीति शेषः। अस्य=पुरुषस्य वक्षः = हृदयम्, मम=लक्ष्मणस्य पितृसमम्=दशरथतुल्यम् पीनम्=विशालम्, यत्सुरारीणाम्=दैत्यानाम्, शरैः=बाणैः, क्षतम्=व्रणकिणितम् । देवसाहाय्यकरणावसरेषु असुरबाणपातवशात् उपजातव्रणकिणितम् । द्युतिपरिवृतः=दीप्तिसम्पन्नः, तेजसः = प्रभावस्य, राशिः=पुञ्जः, जगत्प्रियदर्शनः=धरणीलोचनरोचनः अयं पुरो दृश्यमानः, नरपतिः=राजविशेषः, वा=अथवा देवेन्द्रः=सुरपतिः, अथवा स्वयं मधुसूदनः=विष्णुर्वेति। अत्र देवेन्द्रो वा मधुसूदनो वेति संशयात् शुद्धसंदेहालङ्कारः। हरिणीवृत्तम् ॥ ८॥

(सुमन्त्रं दृष्ट्वा=सुमन्त्रमवलोक्य) अये=इत्याश्चर्ये, तात=इति सम्बोधने।

सुमन्त्रः–अये=इत्याश्चर्ये, कुमारलक्ष्मणः=सौमित्रेयः ।

भरतः–एवं=अनेन प्रकारेण, यदा अयं लक्ष्मणस्तदा गुरुः=श्रेष्ठः, मत्पूज्य इत्यर्थः । अभिवादये=प्रणमामि ।

लक्ष्मणः—एह्येहि=समागम्यताम् । आयुष्मान्=चिरञ्जीव भव । (सुमन्त्रं वीक्ष्य=सुमन्त्रं दृष्ट्वा) तात, कोऽत्र भवान्—आशीर्दत्वा तत्परिचयार्थं पृच्छति।

सुमन्त्रः—कुमार=कुमार इति कथयित्वा परिचयं ददाति—

छाती की तरह ही इसकी विशाल छाती है। चारों ओर बिखरी ज्योति से दीप्तिमान, तेजस्वी संसार की आँखों को प्यारी लगने वाली आकृति क्या स्वयं महाराज की है? या देवराज इन्द्र है? अथवा स्वयं भगवान् विष्णु है ॥ ८ ॥

(सुमन्त्र को देखकर) ओह, ये तो तात हैं ।

सुमन्त्र—ओह, क्या राजकुमार लक्ष्मण है ।

भरत—हाँ ये तो बड़े भाई ही हैं । आर्य अभिवादन करता हूँ ।

लक्ष्मण—आओ, आओ, चिरञ्जीवी रहो । (सुमन्त्र की ओर देखकर) तात, ये कौन हैं ।

सुमन्त्र—कुमार—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रघोश्चतुर्थोऽयमजात् तृतीयः पितुः प्रकाशस्य तव द्वितीयः ।
यस्यानुजस्त्वं स्वकुलस्य केतोस्तस्यानुजोऽयं भरतः कुमारः ॥ ९ ॥

लक्ष्मणः—एह्येहीक्ष्वाकुकुमार ! वत्स ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

असुरसमरदक्षैर्वज्रसंघृष्टचापैरनुपमबलवीर्यैः स्वैः कुलैस्तुल्यवीर्यः ।
रघुरिव स नरेन्द्रो यज्ञविश्रान्तकोशो भव जगति गुणानां भाजनं भ्राजितानाम् ॥१०॥

व्याख्या—अयम्=पुरो दृश्यमानः, रघोश्चतुर्थः=वंशक्रमगणनायां चतुर्थत्वेन परिगणनीयः अर्थात् अजात् तृतीयः, प्रकाशस्य=लोकविख्यातस्य तव=भवतः पितुः = दशरथस्य, द्वितीयः, यस्य=जनस्य, स्वकुलस्य=आत्मवंशस्य, केतोः=जयपताकारूपस्य, त्वम्=भवान्, अनुजः=कनिष्ठो भ्राता, तस्य=रामस्यानुजोऽयम् कुमारो भरतोऽस्तीति भावः । उपजातिश्छन्दः ॥ ९ ॥

लक्ष्मणः—एह्येहि=समागम्यताम्, इक्ष्वाकुकुमार=इक्ष्वाकुवंशोद्भवराजकुमार, वत्स, प्रिय, स्वस्ति=कल्याणम् भवतु, आयुष्मान् भव=चिरञ्जीवेति ।

व्याख्या—असुरैः=दैत्यैः, सह=सार्द्धम्, समरे=युद्धे, दक्षैः=समर्थैः, वज्रेण=इन्द्रायुधेन सह संघृष्टम्=जातस्पर्धम्, चापं=धनुर्येषां तैः अर्थात् असुरदमनकरणीये मत्पूर्वपुरुषाणाम् धनुरिन्द्रायुधेन सहाहमहमिकां दधारेति लक्ष्मणस्याभिमानः । अनुपमम्=अप्रतिमम्, बलम्=शारीरिकम्, वीर्यम्=उत्साहसादिकम् मानसिकं येषां तैः, स्वैः=स्वकीयैः कुलैः=वंश्यैः, तुल्यं वीर्यम्=पराक्रमः यस्य तादृशः सन् सः=प्रसिद्धः, यज्ञविश्रान्तकोशः=यज्ञे=विश्वजिद्यागे विश्रान्तो निरवशेषविनियुक्तः कोशो धनसंचयो येन स तथाभूतः । नरेन्द्रः=नृपतिः, रघुरिव, जगति=लोके, भ्राजितानाम्=बहुमतानाम्, गुणानाम्=शौर्यौदार्यादीनाम्, भ्राजितानाम्=शोभनानाम्, भाजनम्=आश्रयः, भव=एधि, इत्याशीः । विशेषणानि साभिप्रायाणीति परिकरालङ्कारः । मालिनीवृत्तम् ॥ १० ॥

ये हैं महाराज रघु से चतुर्थ, अज से तृतीय, जगत्प्रसिद्ध तुम्हारे पिता दशरथ से द्वितीय और जिस कुलश्रेष्ठ राम के अनुज तुम हो, उन्हीं के अनुज ये कुमार भरत हैं ॥ ९ ॥

लक्ष्मण—आओ, आओ हे इक्ष्वाकुवंशभूषण, कुमार, वत्स, तुम्हारा कल्याण हो, तुम चिरजीवी रहो ।

दैत्यों के साथ संग्राम में प्रवीण, वज्र से भी स्पर्धा करनेवाले धनुष को धारण करनेवाले अनुपम बलवीर्यशाली अपने पूर्वजों की तरह बनो । अपने समस्त ऐश्वर्य को यज्ञ में अर्पित कर देने वाले महाराज रघु की भाँति संसार में दीप्यमान गुणों के भाजन बनो ॥ १० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

लक्ष्मणः—कुमार ! इह तिष्ठ । त्वदागमनमार्याय निवेदयामि ।

भरतः—आर्य ! अचिरमिदानीमभिवादयितुमिच्छामि । शीघ्रं निवेद्यताम् ।

लक्ष्मणः—बाढम् । (उपेत्य) जयत्वार्यः । आर्य ।

अयं ते दयितो भ्राता भरतो भ्रातृवत्सलः ।
संक्रान्तं यत्र ते रूपमादर्शं इव तिष्ठति ॥ ११ ॥

रामः—वत्स लक्ष्मण ! किमेवं भरतः प्राप्तः ?

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि=कृपान्वितोऽस्मि ।

लक्ष्मणः—कुमार=राजकुमार, इह=अत्र, तिष्ठ=स्थीयताम् । त्वदागमनं=भरतागमनम्, आर्याय=रामाय, निवेदयामि=कथयामि ।

भरतः—आर्य=श्रेष्ठ, अचिरम्=शीघ्रम्, इदानीम्=अधुना, अभिवादयितुम् =प्रणमितुम् इच्छामि=वाञ्छामि । रामदर्शनाय समुत्सुको भरतः शीघ्रतार्थं लक्ष्मणं प्रार्थयते । शीघ्रम्=त्वरितम्, निवेद्यताम=कथ्यताम् ।

लक्ष्मणः—बाढम्=अस्त्वेवम् (उपेत्य=समीपं गत्वा) जयतु=विजयताम्, आर्यः=श्रेष्ठः ।

व्याख्या—अयम्=पुरो दृश्यमानः, ते=तव, दयितः=प्रियः, भ्राता= अनुजः भरतः=कैकेयीनन्दनः, भ्रातृवत्सलः=त्वयि स्नेहवान्, यत्र = यस्मिन् भरते, ते=तव रूपम्, आदर्शे=दर्पणे, इव—यथा, संक्रान्तम्=प्रतिफलितम् । दर्पणे यथा कस्यापि पुरुषविशेषस्याकृतिः प्रतिफलति तथैव तव रूपम् भरते संक्रान्तमिति भावः । उपमालंकारः, अनुष्टुप् छन्दः ।। ११ ।।

रामः—वत्स=तात, लक्ष्मण=सुमित्रानन्दन, किमेवम्, भरतः=कैकेयी नन्दनः, प्राप्तः=समागतः ?

भरत—मैं अनुगृहीत हुआ ।

लक्ष्मण—कुमार, तुम यहाँ प्रतीक्षा करो—मैं तुम्हारे आने की सूचना आर्य को दे दूं।

भरत—आर्य, मैं अब शीघ्र ही उनका दर्शनाभिलाषी हूँ । उन्हें मेरा आगमन शीघ्र सूचित करें ।

लक्ष्मण—ठीक है । (समीप आकर) आर्य की जय हो ।

आर्य, आपके प्रिय अनुज भरत आये हैं, जिनमें दर्पण की तरह आपकी आकृति प्रतिबिम्बित है ॥ ११ ॥

राम—कुमार, क्या सचमुच भरत आये हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लक्ष्मणः—आर्य ! अथ किम् ।

रामः—मैथिलि ! भरतावलोकनार्थं विशालीक्रियतां ते चक्षुः ।

सीता—आर्यपुत्र ! किं भरत आगतः ? [अय्यउत्त ! किं भरदो आअदो ?]

रामः—मैथिलि ! अथ किम् ?

अद्य खल्ववगच्छामि पित्रा मे दुष्करं कृतम् ।
कीदृशस्तनयस्नेहो भ्रातृस्नेहोऽयमीदृशः ॥ १२ ॥

लक्ष्मणः—आर्य ! किं प्रविशतु कुमारः ?

लक्ष्मणः—आर्य=हे आर्य, अथ किम्=अस्त्वेवम् ।

रामः—मैथिलि=सीते, भरतावलोकनार्थम्=कैकेयीसुतदर्शनार्थम् विशालीक्रियताम्=विस्फार्यताम्, ते=तव, चक्षुः=नेत्रम् ।

सीता—आर्यपुत्र=भर्तः, किमिति प्रश्ने, भरतः=कैकेयीनन्दनः, आगतः=समागत इति ?

रामः—मैथिलि=सीते, अथ किम्=अस्त्वेवम्, समागत एव ।

व्याख्या—अद्य=अस्मिन्नवसरे, खलु=निश्चयेन, अवगच्छामि=निश्चिनोमि, यत् मे=मम, पित्रा=दशरथेन, दुष्करम्=प्राणत्यागादिकर्म, कृतम्=अनुष्ठितम्, यतः अयम्=साक्षात् क्रियमाणः, भ्रातृस्नेहः=भरतस्य मद्विषयः स्नेहः, ईदृशः=स्वहस्तगतराज्यपरित्यागपूर्वकवनगतभ्रात्रनुगमनरूपकार्यप्रयोजकः प्रत्यक्षतो दृष्टः । ततः=तत्पश्चात्, तनयस्नेहः=तनयविषयकः स्नेहः, कीदृशः=कथम्भूतः भवेदिति शेषः । एवञ्च भ्रातृस्नेहप्रत्ययेनानेन नोन्नेयमहिमा पुत्रस्नेह इत्यभिप्रायः ॥ १२ ॥

लक्ष्मणः—आर्य=मान्य, किमिति प्रश्ने, प्रविशतु कुमारः=भरतः ।

लक्ष्मण—आर्य, और क्या ?

राम—सीते, भरत को भर आँख देखो ।

सीता—आर्यपुत्र, क्या सचमुच भरत जी आये हैं ?

राम—हाँ मैथिलि, हाँ, भरत जी आये हैं ।

आज मैं समझ रहा हूँ कि पिताजी ने कितना कष्ट सहा होगा । जब भ्रातृस्नेह इस प्रकार का है, तो पुत्रस्नेह भला कैसा होगा ? ॥ १२ ॥

लक्ष्मणः—आर्य, क्या कुमार भीतर आवें ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—वत्स ! लक्ष्मण ! इदमपि तावदात्माभिप्रायमनुवर्तयितुमिच्छसि। गच्छ, सत्कृत्य शीघ्रं प्रवेश्यतां कुमारः ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

रामः—अथवा तिष्ठ त्वम् ।

इयं स्वयं गच्छतु मानहेतोर्मातेव भावं तनये निवेश्य ।
तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा हर्षास्रमासारमिवोत्सृजन्ती ॥ १३ ॥

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । (उत्थाय परिक्रम्य भरतमवलोक्य) हं!

रामः—वत्स=अनुज, लक्ष्मण=सुमित्रानन्दन, इदमपि तावत् अनपेक्षणीयं मदभिप्रायं स्वेच्छानुष्ठेयं प्रियभ्रातृप्रवेशनमपि, आत्माभिप्रायम् अनुवर्त्तयितुम् इच्छसि मदभिप्रायानुसारि कर्त्तुमिच्छसि । गच्छ=गम्यताम्, सत्कृत्य=सत्कारं कृत्वा, शीघ्रं=त्वरितम्, प्रवेश्यताम्=आनीयताम्, कुमारः=भरतः ।

लक्ष्मणः—यत् आज्ञापयति=आदिशति, आर्यः=मान्यः ।

रामः—अथवा=वा, त्वम्=भवान्, तिष्ठ=विरम ।

व्याख्या—भरतागमनोपजातानन्दवाष्पपरिप्लुतलोचनतया वात्सल्यं पुत्रसाधारणम् भरते प्रकाशयन्तीम् सीताम् पश्यन् ब्रवीति—इयं तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा=हिमपूर्णे नीलकमलदले इव नेत्रे यस्याः सा, आसारमिव=धारासम्पातमिव, हर्षास्रम्=आनन्दाश्रु उत्सृजन्तीं=विसृजन्ती तनये=पुत्रे, माता=जननी इव भावं स्नेहं, वात्सल्यं=वत्सलतां. निवेश्य=पुरस्कृत्य,=एषा, सीता=जानकी, स्वयं मानहेतोः=सत्कारार्थे, गच्छतु=यातु । यथा माता पुत्रागमनं निशम्य हर्षाश्रुपरिप्लुताक्षी स्वयमागत्य स्नेहेन तं संभावयति तथा भरतस्यागतस्य सत्कारार्थम् सीता स्वयं मानहेतोः यातु ॥ १३ ॥

सीता—यत्, आर्यपुत्रः=स्वामी, आज्ञापयति=आदिशति (उत्थाय=

राम—लक्ष्मण ! क्या इसमें भी तुम मेरी अनुमति की आवश्यकता समझते हो! जाओ, शीघ्र ससम्मान भरत को भीतर ले आओ ।

लक्ष्मण—आर्य की जैसी आज्ञा ।

राम—अथवा ठहरो तुम,

ओस की बूँदों से भरे नील-कमल की तरह आँखों वाली, जिन आँखों से स्वतः प्रेमाश्रु की धारा वर्षा की झड़ी की तरह बह रही है—भरत के प्रति वात्सल्यभाव प्रकट करने वाली ये सीता माँ की तरह सस्नेह भरत का सत्कार कर उन्हें भीतर ले आयें ॥ १३ ॥

सीता—स्वामी की जैसी आज्ञा **(उठकर आगे बढ़कर और भरत को देखकर)**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ततस्तांबेलामिदानीं निष्कान्त आर्यपुत्रः। नहि नहि। रूपसादृश्यम्। [जं अय्यउत्तो- आणवेदि। तदो तं वेलं दाणि णिक्कन्तो अय्यउत्तो। णहि णहि। रूवसादिस्सं।]

सुमन्त्रः—अये वधूः ?

भरतः—अये, इयमत्रभवती जनकराजपुत्री ?

इदं तत् स्त्रीमयं तेजो जातं क्षेत्रोदराद्धलात्।
जनकस्य नृपेन्द्रस्य तपसः सन्निदर्शनम्॥ १४॥

आर्ये ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि।

उत्थितो भूत्वा, परिक्रम्य=परिक्रमणं कृत्वा, भरतम्=कैकेयीनन्दनम्, अवलोक्य= दृष्ट्वा) ततः=तत्पश्चात्, हम्=इति आश्चर्ये, ताम् बेलाम्=समयम्, इदानीम् अधुना, निष्क्रान्तः=बर्हिनिर्गतः, एतावत्येवसमये आर्यपुत्रो बहिरागतः इत्याश्चर्य- मिति भावः। नहि नहि रूपसादृश्यम्—सूक्ष्मेक्षिकया रामभ्रान्ति विहायाहेति— भरतरामयोः रूपसादृश्यम् येन रामभ्रमो मे जातः स्वाभाविकः अस्तीत्यर्थः।

सुमन्त्रः--अये=आश्चर्यम्। अथवा अये इति हर्षे विषादे वा, हर्षकारणम् सीतीदर्शनमेव, विषादहेतुस्तस्यारण्यवासः। बधूः=सीता।

भरतः—अये=इत्याश्चर्ये। सीतां दृष्ट्वा परिचित्याह भरतः। इयम्= एषा, अत्रभवती=पूज्या, जनकराजपुत्री=जानकी।

व्याख्या—हलात्=सीरात् हेतोः, क्षेत्रोदरात्=क्षेत्रं कर्षणीयाभूमिस्तदुदरात् जातम्=उत्पन्नम्, इदम्=तत्, प्रसिद्धं, स्त्रीमयम्=स्त्रीरूपम्, तेजः=ओजः, यत् नृपेन्द्रस्य=राजेन्द्रस्य, जनकस्य=मिथिलेश्वरस्य, तपसः निदर्शनम्=नितरां दर्शयति अनुमापयति हेतुमिति निदर्शनम् फलमिति॥ १४॥

आर्ये=श्रेष्ठे, अभिवादये, भरतोऽहमस्मि=कैकेयीसुतोऽहम्।

अरे मुझसे पहले ही भीतर से आर्यपुत्र बाहर कैसे आ गये ? नहीं, नहीं, यह तो दोनों के रूप की समानता है।

सुमन्त्र--अहो ! ये तो बहूजी हैं।

भरत—ओह ये तो पूज्या जनकतनया हैं।

यह वही दीप्ति पूर्ण नारीरूप तेज है, जो खेत जोतते समय पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था और जो राजर्षि जनक के तप का ज्वलन्त उदाहरण है॥ १४॥

आर्ये, मैं भरत आपको प्रणाम करता हूँ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—(आत्मगतम्) नहि रूपमेव। स्वरयोगोऽपि स एव (प्रकाशम्) वत्स ! चिरं जीव। [णहि रूवं एव्व। सरजोओ वि सो एव्व। वच्छ ! चिरं जीव।]

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि।

सीता—एहि वत्स ! भ्रातृमनोरथं पूरय। [एहि वच्छ ! भादुमणोरहं पूरहि।]

सुमन्त्रः—प्रविशतु कुमारः।

भरतः—तात, इदानीं किं करिष्यसि ?

सुमन्त्रः—अहं पश्चात् प्रवेक्ष्यामि स्वर्गं याते नराधिपे।
विदितार्थस्य रामस्य ममैतत् पूर्वदर्शनम् ॥ १५ ॥

सीता—(आत्मगतम्=स्वगतम्) नहि रूपमेव=भरतस्य वचनं श्रुत्वा जानकी कथयति न केवलं रूपमेव समानम् प्रत्युत स्वरयोगोऽपि=ध्वनिरपि, स एव= समानमेव। प्रकाशम्=(श्रावयित्वा) वत्स=प्रिय, चिरञ्जीव=आयुष्मान् भव।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि=आप्यायितोऽहम्।

सीता—एहि वत्स=समागम्यताम् भ्रातृमनोरथम्=भ्रातुः रामस्य, मनोरथम्=अभिलाषम् अर्थात् त्वत् समागमविषयम्, पूरय=सफलय।

सुमन्त्रः—प्रविशतु=प्रवेशम् करोतु, कुमारः=भरतः।

भरतः—इदानीम्=अधुना, किं करिष्यसि=मया सह वा पश्चाद्वा प्रवेक्ष्यसीत्यर्थः।

व्याख्या—अहम्=भरतः, पश्चात्=त्वद्दर्शनोत्तरकाले प्रवेक्ष्यामि, यतः नराधिपे=नराणाम्=मनुष्याणाम्, अधिपे=स्वामिनि, स्वर्गं याते सति=मृते सति, विदितार्थस्य=विदितः ज्ञातः, अर्थः=वृत्तान्तो येन तस्य, अर्थात् विज्ञाततातस्वर्गगमनवृत्तान्तस्य रामस्य, मम=सुमन्त्रसम्बन्धि एतत् पूर्वदर्शनम् प्रथमदर्शनम्।

सीता—(अपने आप) केवल आकृति ही नहीं, आवाज भी मिलती-जुलती है। (प्रकट) वत्स, चिरञ्जीव।

भरत—आपका अनुगृहीत हुआ।

सीता—आओ वत्स, अपने भाई के मनोरथ को पूरा करो।

सुमन्त्र—कुमार, आप भीतर चलें।

भरत—तात, आप इस समय क्या करेंगे ? (मेरे साथ चलेंगे अथवा नहीं ?)

सुमन्त्र—मैं पीछे आऊँगा, क्योंकि महाराज की मृत्यु की सूचना जब से राम को मिली है, इसके बाद उनसे यह मेरी पहली भेंट है ॥ १५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—एवमस्तु । (राममुपगम्य) आर्य ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।

रामः—(सहर्षम्) एह्येहि इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव !

वक्षः प्रसारय कपाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ॥ १६ ॥

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

सुमन्त्रः—(उपेत्य) जयत्वायुष्मान् ।

अतो मद्दर्शने रामस्य पितृशोक उद्दीप्तः स्यादिति सा दुःखस्था प्रियभ्रातृसमागमानन्दपरिपन्थिनी त्वत्समकालप्रविष्टेव मया सद्य एव समुत्पाद्येत । अनुभूयमाने तु पूर्वप्रविष्टत्वात्समागमानन्दे सा पश्चात् भवन्त्यपि नैवोर्जिता भवेदित्याशयः ॥ १५ ॥

भरतः—एवमस्तु==एवम्भवतु (राममुपगम्य=रामस्य समीपं गत्वा) आर्य=मान्य, अभिवादये=अभिवादनं करोमि, भरतः=कैकेयीसुतः अहमस्मि ।

रामः—(सहर्षम्=हर्षेण सह) एह्येहि=समागच्छ, इक्ष्वाकुकुमार=भरत, स्वस्ति=इति कल्याणाय, आयुष्मान् भव=चिरञ्जीव ।

व्याख्या—कपाटपुटम्=कपाटसम्पुटम्, प्रमाणम्=विस्तीर्णम् यस्य तत् विशालकपाटवदायतम्, वक्षः=उरोदेशम्, प्रसारय=विस्तृतं कुरु, ततः सविपुलेन=अतिलम्बेन, भुजद्वयेन=बाहुयुगलेन, माम्=रामम्, आलिङ्ग=परिष्वजस्व । शरदिन्दुश्चन्द्रस्तद्वदाननम् मुखम् उन्नामय=उन्नतं कुरु, तथा च सति सकलभागेषु दृष्टिर्मम व्याप्रियेताधिकमानन्दं च विन्देतेति । व्यसनदग्धम्=पितृमरणनिमित्तकेन दुःखेनोपहतम् अर्थात् तवाननदर्शनेन मे संतापो व्यपगमिष्यति इत्याशयः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १६ ॥

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि=भोः, कृपान्वितोहम् भरतः ।

सुमन्त्रः—(उपेत्य = समीपं गत्वा) जयतु=सर्वतोभावेन विजयताम्, आयुष्मान्=चिरञ्जीव ।

भरत—ऐसा ही सही । **(राम के पास जाकर)** मैं भरत आपको प्रणाम करता हूँ ।

राम—(हर्ष से) आओ इक्ष्वाकुकुमार, तुम्हारा कल्याण हो, चिरञ्जीवी बनो ।

किवाड़ की तरह अपनी चौड़ी छाती फैलाकर, अपनी विशाल भुजाओं से मेरा आलिङ्गन करो । शरदिन्दु की तरह आह्लादक अपने मुख को ऊपर उठाओ और शोक की ज्वाला में दग्ध मेरे हृदय को शीतल करो ॥ १६ ॥

भरत—मैं आपका अनुगृहीत हूँ ।

सुमन्त्र--(आकर) जय हो आयुष्मान् की ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—हा तात !

गत्वा पूर्वं स्वसैन्यैरभिसरिसमये खं समानैर्विमानै-
विख्यातो यो विमर्दे स स इति बहुशः सासुराणां सुराणाम् ।
स श्रीमांस्त्यक्तदेहो दयितमपि विना स्नेहवन्तं भवन्तं–
स्वर्गस्थः साम्प्रतं किं रमयति पितृभिः स्वैर्नरेन्द्रैर्नरेन्द्रः ॥ १७ ॥

सुमन्त्रः—(सशोकम्)

नरपतिनिधनं भवत्प्रवासं भरतविषादमनाथतां कुलस्य ।
बहुविधमनुभूय दुष्प्रसह्यं गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ॥ १८ ॥

रामः—हा, तात=तातपदेन सुमन्त्रामन्त्रणम् ।

अन्वयः—यः पूर्वं सासुराणाम् सुराणाम् विमर्दे अभिसरिसमये स्वसैन्यैः समानैः विमानैः खम् गत्वा स स इति बहुशः विख्यातः । सः श्रीमान् त्यक्तदेहः नरेन्द्रः दयितम् अपि स्नेहवन्तम् भवन्तं विना स्वर्गस्थः साम्प्रतम् पितृभिः स्वैः नरेन्द्रैः रमयति किम् ?

व्याख्या—यः=व्यक्तिविशेषः, पूर्वम्=पुरा, सासुराणाम्=असुरसहितानां सुराणाम्=देवानाम्, विमर्दे=युद्धे, अर्थात् देवासुरसंग्रामे, अभिसरिसमये=देव साहाय्यार्थगमनकाले, स्वसैन्यैः=आत्मसैनिकैः, समानैः=तुल्यैः, विमानैः= व्योमयानैः, खम्=आकाशम्, गत्वा=उत्प्लुत्य, सः सः इति=सोऽयं दशरथ इति, बहुशः=अनेकशः, विख्यातः=प्रख्यातः । सः=असौ, श्रीमान्=भवान्, त्यक्तदेहः=विमुक्तकायः, नरेन्द्रः=नृपेन्द्रः, दयितम्=प्रीतिविषयम्, स्नेहवन्तम्= अनुरागशालिनम्, भवन्तम् = श्रीमन्तम्, विना = अन्तरा, स्वर्गस्थः सन्, साम्प्रतम्=अधुना, पितृभिः=पितृभूतैः, स्वैः=आत्मपूर्वपुरुषैः नरेन्द्रैः=नृपेन्द्रैः, रमयति किम्=अर्थादात्मानम् । न कथमपि इति प्रश्नकाकुलभ्योऽर्थः । अत्र शौर्यातिशयरूपसमृद्धिवर्णनादुदात्तालङ्कारः । स्रग्धरा छन्दः ॥ १७ ॥

सुमन्त्रः—(सशोकम्=सखेदम्) ।

अन्वय—नरपतिनिधनम्, भवत्प्रवासम्, भरतविषादम्, कुलस्य अनाथताम्,

---

राम—हा तात, आप पहले देवासुर संग्रामों में देवों की सहायता के लिए स्वर्ग जाते थे, उस यात्रा में आपके विमान देव विमानों के सदृश होते थे । उस युद्ध में महाराज की विजय पर लोग आदर सम्मान प्रकट करते थे, वही आप अपने प्रीतिपात्रों के बिना स्वर्ग में भी क्या आनन्द पाते होंगे ? ॥ १७ ॥

सुमन्त्र—(शोक से) महाराज की मृत्यु, आपका वनवास, भरत की तकलीफ,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—रुदन्तमार्यपुत्रं पुनरपि रोदयति तातः । [रोदन्तं अय्य उत्तं पुणो वि रोदावीअदि तादो ।]

रामः—मैथिलि ! एष पर्यवस्थापयाम्यात्मानम् । वत्स ! लक्ष्मण ! आपस्तावत् ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

भरतः—आर्य ! न खलु न्याय्यम् । क्रमेण शुश्रूषयिष्ये । अहमेव यास्यामि । (कलशं गृहीत्वा निष्क्रम्य प्रविश्य) इमा आपः ।

बहुविधम्, दुष्प्रसह्यम्, अनुभूय, मे आयुषा गुणेन बहु अपराद्धम् इव ।। १८ ।।

व्याख्या—नरपतिनिधनम्=राज्ञो देहावसानम्, भवत्प्रवासम्=भवताम् त्रयाणाम् वनयात्राम्, भरतविषादम्=भरतस्य भवत्प्रवासादिनिमित्तम् खेदम्, कुलस्य=रघुवंशस्य अनाथताम्=अशरणताम्, बहुविधम्=नानारूपम् दुष्प्रसह्यम्=कृच्छ्रसोढव्यम् कष्टम्; अनुभूय=अनुभवं कृत्वा, मे=मम, आयुषा=जीवितेन, गुणेन=चिरानुभूतनानाप्रकारप्रमोदरूपेण, बहु अपराद्धमिव=अनल्प उपघातः कृत एवेत्यर्थः । यद्यहं चिरजीवितां नाध्यगमिष्यं तदैतानि दुःखानि नान्वभविष्यमिति भावः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ।। १८ ।।

सीता—रुदन्तम्=क्रन्दन्तम्, आर्यपुत्रम्=रामम्, पुनरपि=भूयोऽपि, रोदयति, तातः=सुमन्त्रः ।

रामः—मैथलि=सीते, एष पर्यवस्थापयामि=प्रकृतिस्थं करोमि, आत्मानम्=स्वशरीरम् । वत्स लक्ष्मण=प्रिय सौमित्रेय, आपस्तावत्=जलमानीयतामिति शेषः ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयति=यदादिशति, आर्यः=श्रीमान् ।

भरतः—आर्य=इति रामपरामर्शकम् । न्याय्यम्=समुचितम्, खलु=निश्चयेन, न=नहि, क्रमेण=अवरजत्वक्रमेण, शुश्रूषयिष्ये=परिचरिष्यामि । अहमेव=

वंश की अनाथता प्रभृति अनेक प्रकार के कष्टों को दिखाकर हमारी लम्बी उम्र ने गुणों के साथ दोष ही अधिक दिये ॥ १८ ॥

सीता—तात, रोते हुए स्वामी को आप और भी रुला रहे है ।

राम—सीते, देखो अब मैं नहीं रोता । लक्ष्मण ! थोड़ा पानी तो लाओ ।

लक्ष्मण—जाता हूँ श्रीमान् ।

भरत—नहीं नहीं श्रीमान्, यह उचित नहीं होता । सेवा तो हम क्रम से ही करेंगे । पानी तो मैं ही लाऊँगा **(घड़ा लेकर बाहर जाते हैं और फिर पानी के साथ लौटकर)** यह है जल, आर्य ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—(आचम्य) मैथिलि ! विशीर्यते खलु लक्ष्मणस्य व्यापारः ।

सीता—आर्यपुत्र ! नन्वेतेनापि शुश्रूषयितव्यः । [अय्यउत्त ! णं एदिणा पि सुस्सूसइदव्वो ।]

रामः—सुष्ठु खल्विह लक्ष्मणः शुश्रूषयतु । तत्रस्थो मां भरतः शुश्रूषयतु ।

भरतः—प्रसीदत्वार्यं !

इह स्थास्यामि देहेन तत्र स्थास्यामि कर्मणा ।
नाम्नैव भवतो राज्यं कृतरक्षं भविष्यति ॥ १९ ॥

भरत एव, यास्यामि=जलाय गमिष्यामि, (कलशम्=घटम् गृहीत्वा=नीत्वा, निष्क्रम्य=बहिर्गत्वा, प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा) इमाः=एताः, आपः=जलानि ।

रामः—(आचम्य=आचमनम् कृत्वा) मैथिलि=सीते, विशीर्यते=विच्छिद्यते, खलु=निश्चयेन, लक्ष्मणस्य=सुमित्रानन्दनस्य, व्यापारः=कर्त्तव्याधिकार इति । अद्यावधि वने लक्ष्मणस्यैव जलाहरणादि कार्यमासीत्, अधुना भरतस्तत्र व्याप्रियत इति तद्विच्छेदः ।

सीता—आर्यपुत्र=स्वामी, एतेनापि=भरतेनापि, ननु शुश्रूषयितव्यः अर्थात् भवान् ।

रामः—सुष्ठु=साधु, खलु=निश्चयेन, इह=वने, लक्ष्मणः=सुमित्रानन्दनः, शुश्रूषयतु=सेवां करोतु, तत्रस्थः=नगरस्थः सन्, माम्=रामम्, भरतः=कैकेयीनन्दनः, शुश्रूषयतु=मत्कर्मानुतिष्ठतु । तदयं शुश्रूषाविभागोऽतिरमणीय इति भावः ।

भरतः—प्रसीदत्वार्यः=प्रसन्नो भव श्रीमान् ।

व्याख्या—इह=अत्र, देहेन = शरीरेण, स्थास्यामि=भवन्तम् सेवमानं वत्स्यामि, तत्र=अयोध्यायाम्, कर्मणा=राज्यपालनात्मकेन कर्त्तव्येन, स्थास्यामि=वत्स्यामि । कथमेतेन प्रकारेण राज्यपालनं भविष्यतीति आह—भवतो नाम्नैव=रामस्य राज्यमिति भवन्नामधेयान्वयमात्रेणास्मदायासलेशम् विनैवेत्यर्थः । कृतरक्षम्=सुरक्षितम् भविष्यति । एवञ्चात्र मयि स्थिते न कस्यापि किमपि हीयत इति मा मामत्र स्थातुमिच्छन्तम् प्रतिषेधीदिति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥१९॥

राम—(आचमन करके) मैथिलि, लक्ष्मण का काम अब छिन रहा है ।

सीता—आर्यपुत्र, इन्हें भी तो सेवा करने का अधिकार है ही ।

राम—यह तो ठीक है, लक्ष्मण यहाँ सेवा करें और भरत वहाँ (अयोध्या में) ।

भरत—आर्य क्षमा करें—

देह से मुझे यहाँ रहने दिया जाय, वहाँ केवल मेरा प्रबन्ध रहेगा । रक्षा तो केवल आप के नाममात्र से हो जायेगी ॥ १९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—वत्स ! कैकेयीमातः ! मा मैवम्।

पितुर्नियोगादहमागतो वनं न वत्स ! दर्पान्न भयान्न विभ्रमात्।
कुलं च नः सत्यधनं ब्रवीमि ते कथं भवान् नीचपथे प्रवर्तते ॥ २० ॥

सुमन्त्रः—अथेदानीमभिषेकोदकं क्व तिष्ठतु ?

रामः—यत्र मे मात्राऽभिहितं, तत्रैव तावत् तिष्ठतु।

रामः—वत्स=प्रिय, कैकेयोमातः=कैकेयीमाता यस्य तत्सम्बुद्धिः। 'मातजमातृकमातृषु' (६-१-१४) इति वार्त्तिके बहुव्रीहौ ष्यङः सम्प्रसारणविकल्पविधायके मातृकमातृशब्दयोर्निर्देशात् कपो विकल्पः। मैवम्=अनेन प्रकारेण मा भाषिष्ठा इति।

अन्वयः—वत्स अहं पितुः नियोगात् वनम् आगतः। दर्पात् न, भयात् न, विभ्रमात् न। ते ब्रवीमिनः कुलम् च सत्यधनम्, भवान् नीचपथे कथम् प्रवर्त्तते।

व्याख्या—वत्स=तात, अहम् = रामः, पितुः=दशरथस्य, नियोगात्=शासनात्, वनम्=अरण्यम्, आगतः=समागतः, दर्पात्=अभिमानात्, न=नहि, भयात्=बलवतः पितुर्भयात्, न=नहि, विभ्रमात्=बुद्धिनाशात् न=नहि। नः=अस्माकम्ः कुलम्=वंशः, च=पुनः, सत्यधनम्=सत्यमेव धनम् यस्य तत् तथा भूतम्। ते=तुभ्यम्, ब्रवीमि=तदिदम् वस्तुतत्त्वं त्वया ज्ञातपूर्वमपि अवधानविशेषदानार्थं पुनर्बोधयामि। एवं स्थिते भवान्=त्वम् नीचपथे=राज्यस्वीकरणलक्षण-पितृनियोग-परित्यागरूपे, कथं प्रवर्त्तते। अस्मिन् श्लोके काव्यलिङ्गमलङ्कारः। वंशस्थवृत्तञ्च ॥ २० ॥

सुमन्त्रः—अथेति प्रश्ने, इदानीम्=अधुना, अभिषेकोदकम्=अभिषेकार्थमानीतम् जलम्, क्व=कस्य शिरसि, तिष्ठतु=निधातव्यम् ?

रामः—यत्र=यस्मिन् स्थाने, मे=मम, मात्रा=जनन्या, अभिहितम् कथितम् तत्रैव, अर्थात् भरते।

(भरतः रामस्य सरलवचनमाक्षेपं मन्यमानो व्यथितचित्तो वदति।)

राम--वत्स भरत, ऐसा मत कहो--

मैं पिता की आज्ञा से वन आया हूँ, भरत ! न तो मैं अभिमान से यहाँ आया हूँ, और न भय अथवा चित्त-विभ्रम से। रघुकुल सत्य के लिए प्रसिद्ध है, इसे तुम भी जानते हो फिर तुम क्यों निम्नपथगामी बनना चाहते हो भाई ॥ २० ॥

सुमन्त्र--तो अब बताइए, अभिषेक किसका होना चाहिए ?

राम—माँ की आज्ञा जिसके लिए है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—प्रसीदत्वार्यः। आर्य ! अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम्।

अपि सुगुण ! ममापि त्वत्प्रसूतिः प्रसूतिः।
स खलु निभृतधीमांस्ते पिता मे पिता च।
सुपुरुष ! पुरुषाणां मातृदोषो न दोषो
वरद ! भरतमार्तं पश्य तावद्यथावत् ॥ २० ॥

सीता—आर्यपुत्र ! अतिकरुणं मन्त्रयते भरतः। किमिदानीमार्यपुत्रेण चिन्त्यते। [अय्यउत्त ! अधिकरुणं मन्तेअइ भरदो। किं दाणिं अय्यउत्तेण चिन्तीअदि।]

भरतः—प्रसीदत्वार्यः=प्रसन्नो भवतु भवान्। अलम्=व्यर्थम्, इदानीम्=अधुना, व्रणे प्रहर्त्तुम्=क्लेशिते क्लेशयितुम्। अत्रालमित्यस्य योगे तुमुनः प्रयोगोऽपाणिनीयः।

व्याख्या—हे सुगुण=शोभनगुणनिलय, त्वत् प्रसूतिः=त्वदुत्पत्तिवंशो ममापिप्रसूतिः=अपि ममापि प्रभवश्चेत् अर्थात् यस्मिन् वंशे भवानुत्पन्नस्तस्मिन्नेवाहमपि, तथा च यदि भवान् धर्ममार्गमनुचरन् राज्यं न स्वीकरोति, तर्हि तस्मादेवाहमपीति भावः। सः=असौ, खलु=निश्चयेन, निभृतधीमान्=अचञ्चलप्रशस्तबुद्धिः, ते=तव रामस्य, पिता=जनकः, मे=भरतस्यापि पिता=जनकः इत्यर्थः। चकारो भिन्नक्रमोऽप्यर्थकः। ममापि पितेत्यर्थः। सुपुरुषः=शोभनः पुरुषः सुपुरुषस्तत्सम्बुद्धौ हे सुपुरुष, पुरुषाणाम्=नरणाम्, मातृदोषः=जननीकृतोऽपराधः, न दोषः=नापराधः, हे वरद=ईप्सितार्थदायिन्! आर्त्तम्=पीडायोगिनम्, भरतम्=कैकेयीसुतम्, यथावत्=यथार्थम् पश्य=अवलोकय, न पुनरुपेक्षस्वेत्यर्थः। अस्मिन् श्लोके परिकरालङ्कारः। मालिनी वृत्तम् ॥ २१ ॥

सीता—आर्यपुत्र=स्वामिन्, अतिकरुणम्=अतिदीनम्, भरतः=कैकेयीसुतः, मन्त्रयते=विचारयति। किमिदानीम्=अधुना किम्, आर्यपुत्रेण=रामेण, चिन्त्यते=विचार्यते ? भरतचिकीर्षितानुष्ठानमद्याप्यननुजानन् किं विचारयसीत्यर्थः।

भरत--आर्य क्षमा करें, घाव पर नमक न छिड़कें।

हे गुणज्ञ, मेरा जन्म भी उसी कुल में है, जिसकी शोभा आप हैं। मेरे पिता भी वही हैं जिनके आप वंशधर हैं। हे सुपुरुष, माँ के अपराध से बेटे को अपराधी समझना क्या उचित है ? हे वरद्, दुःखी भरत की ओर दयादृष्टि से देखें ॥ २१ ॥

सीता--आर्यपुत्र ! भरत की सकरुण बातें सुनकर भी आप क्या सोच रहे हैं ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—मैथिलि !

तं चिन्तयामि नृपतिं सुरलोकयातं–
येनायमात्मजविशिष्टगुणो न दृष्टः ।
ईदृग्विधं गुणनिधिं समवाप्य लोके–
धिग् भो ! विधेर्यदि बलं पुरुषोत्तमेषु ॥ २२ ॥

वत्स ! कैकेयीमातः !

यत्सत्यं परितोषितोऽस्मि भवता निष्कल्मषात्मा भवां-
स्त्वद्वाक्यस्य वशानुगोऽस्मि भवतः ख्यातैर्गुणैर्निर्जितः ।
किन्त्वेतन्नृपतेर्वचस्तदनृतं कर्तुं न युक्तं त्वया
किञ्चोत्पाद्य भवद्विधं भवतु ते मिथ्याभिधायी पिता ॥ २३ ॥

रामः—मैथिलि=सीते !

अन्वयः—सुरलोकयातम् तम् नृपतिम् चिन्तयामि, येन अयम् आत्मजविशिष्टगुणः न दृष्टः । लोके ईदृग्विधं गुणनिधिम् समवाप्य, पुरुषोत्तमेषु यदि विधेः बलम्, तर्हि) भो धिक् ॥ २२ ॥

व्याख्या—सुरलोकयातम्=स्वर्गंगतम्, तम् नृपतिम् तातमहाराजम्, चिन्तयामि=शोचामि येन=नृपतिना, अयम्=एषः, आत्मजविशिष्टगुणः=स्वपुत्रेषु चतुर्षु मध्ये विशिष्टगुणः, न दृष्टः=विशिष्टगुणवत्वेन रूपेण न प्रत्यक्षितः । लोके=संसारे, ईदृग्विधम्=एवम् प्रकारकम् गुणनिधिम्=गुणाकरम् पुत्रम्, समवाप्य=लब्ध्वा, पुरुषोत्तमेषु=पुरुषश्रेष्ठेषु पितृषु, विधेः बलम्=दैवशक्तिः अनर्थपर्यवसायिनी, यदि क्रमेतेति शेषः, धिग् भोः=तदिदम् अतिनिन्दितमित्यर्थः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २२ ॥

वत्स=अनुज, कैकेयीमातः=भरत ।

अन्वयः—भवता यत्सत्यं परितोषितः अस्मि, भवान् निष्कल्मषात्मा, ख्यातैः

राम—सीते,

मैं सुरधाम को प्रस्थित अपने उस पिताजी को सोचता हूँ, जिन्होंने अपने अनुपम इस पुत्र-रत्न को पहचाना नहीं । ऐसे गुणागार बेटे के रहते पिताजी की मृत्यु हो गयी, विधि की इस विडम्बना को धिक्कार है ॥ २२ ॥

वत्स कैकेयीनन्दन,

तुमने मुझे सचमुच प्रसन्न कर दिया, तुम्हारी अन्तरात्मा अतिपवित्र है । तुम्हारी बात को मैं मानता हूँ । तुम्हारे प्रख्यातगुणों ने मुझे जीत लिया है, ये सारी बातें ठीक हैं पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—यावद् भविष्यति भवन्नियमावसानं–
तावद् भवेयमिह ते नृप ! पादमूले ।
रामः—मैवं, नृपः स्वसुकृतैरनुयातु सिद्धि
मे शापितो, न परिरक्षसि चेत् स्वराज्यम् ।। २४ ।।

भवतः गुणैः निर्जितः, त्वद्वाक्यस्य वशानुगः अस्मि । किन्तु एतत् नृपतेः वचः तत् त्वया अनृतम् कर्त्तुम् न युक्तम्, किञ्च भवद्विधम् उत्पाद्य ते पिता मिथ्याभिधायी भवतु (किम्) ।। २३ ।।

व्याख्या—भवता=त्वया, यत्सत्यम्=वस्तुतः, परितोषितः=परितोषम् प्रापितः, अस्मि=भवामि, भवान्=त्वम्, निष्कल्मषात्मा=निष्पापबुद्धिः, ख्यातैः =लोकेऽसाधारणतया प्रसिद्धिभाग्भिः, भवतः=त्वत्तः, गुणैः=सौजन्यसारल्यादिभिः, निर्जितः,=अधः कृतः । त्वद्वाक्यस्य=त्वदीयवचनस्य, वशानुगः=वश्यः, सन्ननुगामी अस्मि = भवामि । किन्तु=किञ्च, एतत् = 'राज्ये त्वमभिषेक्तव्य' इतीदम्, नृपतेः = राज्ञः वचः=वचनम्, तत् = पूर्वोक्तम् वचनम्, त्वया= भवता, अनृतम्=असत्यम् कर्त्तुम्=विधातुम्, न=नहि, युक्तम्=उचितम् । किञ्च भवद्विधम्=त्वत्सदृशम् पुत्रम् उत्पाद्य = जनयित्वा, ते=तव, पिता= जनकः, मिथ्याभिधायी=अनृतवादी भवतु, काक्वा भवतु किमित्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ।। २३ ।।

व्याख्या—यावत्=यावन्तं कालं व्याप्य, भवतः=श्रीमतः, नियमस्य=वनवासव्रतस्य, अवसानम्=समाप्तिः भविष्यति, तावत्=तावत्कालपर्यन्तम्, इह=वने, नृप=राजन्, ते=तव, पादमूले=त्वदाश्रितः, भवेयम्=वर्त्तेयेति । अत्र स्थित्वा त्वत्परामर्शेन राज्यकार्यं सम्पद्येत इति भावः । पद्यस्योत्तरार्द्धभागः रामस्योक्तिः।

अन्वयः—मैवम् नृपः स्वसुकृतः सिद्धि यातु चेत् स्वराज्यम् न परिरक्षसि, मे शापितः, असि ।। २४ ।।

व्याख्या—मैवम्=मा एवम् वादीरिति शेषः, नृपः=तातपादः, स्वसुकृतैः=

पिताजी की आज्ञा है—भरत राजा बनें, क्या तुम इसे झुठला दोगे ? पिताजी को असत्यवादी बनाओगे ? ।। १३ ।।

भरत—जबतक आपका यह वनवास व्रत पूरा होगा, महाराज, मैं आपकी सेवा में यहीं रहूँगा ।

राम—ऐसा हठ मत करो भरत, महाराज को अपने पुण्य से सिद्धि भोगने दो । तुम्हें मेरी शपथ, यदि तुम अपना राज्य न सँभालो ।। २४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—हन्त अनुत्तरमभिहितम् । भवतु समयतस्ते राज्यं परिपालयामि ।

रामः—वत्स ! कः समयः ?

भरतः—मम हस्ते निक्षिप्तं तव राज्यं चतुर्दशवर्षान्ते प्रतिग्रहीतुमिच्छामि ।

रामः—एवमस्तु ।

भरतः—आर्य ! श्रुतम् । आर्ये ! श्रुतम् । तात ! श्रुतम् ।

सर्वे—वयमपि श्रोतारः ।

स्वसत्यवादित्वादिजनितपुण्यैः, सिद्धिम् यातु=लभताम्, चेत्स्वस्य=पितृप्रदत्तत्वात्तवैव राज्यमित्यभिप्रेत्यैतत्, राज्यम् न परिरक्षसि=पालयसि तर्हि मे=मत्सम्बन्धेन, शापितोऽसि=अभिशप्तो भविष्यसि । अस्मिन् श्लोके वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २४ ॥

भरतः—हन्त=इति खेदे, अनुत्तरम्=अविद्यमानप्रतिवचनम्, अभिहितम्=कथितम् । भवतु=एवमस्तु, समयतः=संविदा, ते=तव, राज्यम् परिपालयामि=पालनं करोमि ।

रामः—वत्स=अनुज, कः समय, तवेष्ट इति शेषः । अर्थात् इष्टं समयं ब्रूहि तमनुवर्त्तिष्य इत्यर्थः ।

भरतः—मम=भरतस्य, हस्ते=करे, निक्षिप्तम्=न्यासत्वेनार्पितम्, तव=भवतः, राज्यम्, चतुर्दशवर्षान्ते=चतुर्दशानाम् वर्षाणाम् वनवासयापनीयानामवसाने प्रतिग्रहीतुम्=प्रतिग्राहयितुम्, इच्छामि=वाञ्छामि ।

रामः—एवमस्तु=स्वीकृतोऽस्तु ।

भरतः—आर्य श्रुतम् इति—रामकृतसमयाङ्गीकारस्यान्यथाभावमुद्भाव्य सीतालक्ष्मणसुमन्त्रान् साक्षिणः प्रत्यवस्थापयितुम् इत्थमुच्यते ।

सर्वे—वयमपि श्रोतारः=साक्षिणः ।

भरत—हाय हाय ! आपने तो मुझे बिल्कुल ही अनुत्तर सा कर दिया । अच्छा मैं एक शर्त पर आपका राज्यभार सँभालूँगा ।

राम—बोलो, तुम्हारी क्या शर्त है ?

भरत—मैं चाहता हूँ कि चौदह वर्षों के बाद आप अपना राज्य वापस ले लें और तब तक मैं धरोहर स्वरूप आपके उस राज्य का मात्र रक्षक बना रहूँ ।

राम—मुझे तुम्हारी शर्त स्वीकार है ।

भरत—आर्य, सुना आपने ? आर्ये, आपने भी सुना ? तात, और आपने भी तो सुन ही लिया ।

सभी—हम सब साक्षी हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—आर्य ! अन्यमपि वरं हर्तुमिच्छामि ।

रामः—वत्स ! किमिच्छसि किमहं ददामि ? किमहमनुष्ठास्यामि ?

भरतः—पादोपभुक्ते तव पादुके मे एते प्रयच्छ प्रणताय मूर्ध्ना ।
यावद्भवानेष्यति कार्यसिद्धिं तावद्भविष्याम्यनयोर्विधेयः ॥ २५ ॥

रामः—(स्वगतम्) हन्त भोः !
सुचिरेणापि कालेन यशः किञ्चिन्मयार्जितम् ।
अचिरेणैव कालेन भरतेनाद्य सञ्चितम् ॥ २६ ॥

भरतः—आर्य=श्रीमन्, अन्यमपि=अपरमपि, वरम्=वरदानम्, हर्तुम्=प्राप्तुम् इच्छामि=वाञ्छामि ।

रामः—वत्स=हे भ्रातः, किमिच्छसि=वाञ्छसीति प्रेमातिशयं सूचयति। किमहं ददामि ? किमहमनुष्ठास्यामि ? अत्राशयः, किं प्रदाय, किमनुष्ठाय वा तोषयेयमिति प्रश्नेन त्वत्कृते मम किमपि अदेयमननुष्ठेयं वा नास्ति, तदर्हसि यथारुचि प्रार्थयितुमिति प्रघट्टकार्थः ।

व्याख्या—मूर्ध्ना=शिरसा, प्रणताय=प्रणमते, मे=मह्यम्, एते पादोपभुक्ते=चरणाभ्याम् व्यवहृते, पादुके=काष्ठनिर्मितपादत्राणे, प्रयच्छ=देहि। किमर्थम् पादुकायाचनमिदमित्याह—यावत्=यदवधि, भवान् कार्यसिद्धिम् एष्यति=स्वकार्यमवसाय्यागमिष्यति तावत्=तावत्कालपर्यन्तम्, अनयोः पादुकयोर्विधेयः आज्ञाकारी भविष्यामीति । तदनन्तरम् तुभ्यं राज्यं प्रत्यर्पयिष्यामीति भावः । इन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ २५ ॥

रामः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) हन्त भोः=कष्टम् ।

व्याख्या—मया=रामेण, सुचिरेणाऽपि कालेन=समयेन, किञ्चिदेव=स्वल्पमेव, यशः=कीर्त्तिः, अर्जितम्=सम्पादितम् । भरतेनाद्य मामित्थामत्मवशी

भरत—एक वरदान और चाहता हूँ, आर्य ।

राम—बोलो वत्स, तुम्हें क्या दूं ? क्या चाहते हो ? क्या करने को कहते हो ?

भरत—आर्य, अपने चरणों में नत इस दास को अपना खड़ाऊँ दे दें, मैं तब तक उन्हीं, पादुकाओं का वशवर्त्ती रह कर आपका राज्य-भार तब तक सँभालूँगा, जब तक आप अपना कार्य सिद्ध कर लौटेंगे ॥ २५ ॥

राम—(स्वागत) अहा !

मैंने वहुत दिनों जितना यश सञ्चित किया था, भरत ने उतना यश मात्र अति अल्प समय में ही अर्जित कर लिया है ॥ २६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—आर्यपुत्र ! ननु दीयते खलु प्रथमयाचनं भरताय। [अय्यउत्त ! णं दीयदि खु पुडमजाअणं भरदस्स।]

रामः—तथास्तु। वत्स ! गृह्यताम्।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। (गृहीत्वा) आर्य ! अत्राभिषेकोदकमावर्जयितुमिच्छामि।

रामः—तात ! यदिष्टं भरतस्य तत् सर्वं क्रियताम्।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्।

भरतः—(आत्मगतम्) हन्त भोः !

कुर्वता अचिरेण कालेन=अतिशीघ्रतया, सञ्चितम्=अर्जितम्। यादृशस्य पितृभक्तरूपस्य यशसोऽर्जनाय मया चिरकालम् परिश्रान्तम्, अद्य तादृशमेव ततोऽपि वोत्कृष्टं भ्रातृभक्तत्वात्मकम् यशो भरतेन अचिरेणैव कालेन अर्जितमित्यहो भरतस्य महापुरुषत्वमिति भावः। अत्र व्यतिरेकालङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः॥ २६॥

सीता—आर्यपुत्र=स्वामिन्, प्रथमयाचनम् प्राथम्येन याच्यमानं पादुकारूपं वस्तु भरताय=कैकेयीसुताय ननु दीयते।

रामः—तथास्तु=एवमस्तु, वत्स=भ्रातः, गृह्यताम्=नीयताम्।

भरतः—अनुगृहीतः=कृपान्वितः, अस्मि=भवामि। (गृहीत्वा=ग्रहणं कृत्वा) आर्य=श्रद्धेय, अत्र=पादुकयोः अभिषेकोदकम्=आवर्जयितुम्=क्षेप्तुम्; इच्छामि वाञ्छामीति।

रामः—तात=हे पूज्य, भरतस्य=कैकेयीसुतस्य, यदिष्टम्=यदीप्सितम्; तत् सर्वम्=सकलम्, क्रियताम्=विधीयताम्।

सुमन्त्रः—यत्=यथा, आज्ञापयति=आदिशति, आयुष्मान्=चिरञ्जीवः।

भरतः—(आत्मगतम्) हन्त भोः=कष्टम्।

सीता—आर्यपुत्र, कुमार भरत की प्रथम मांग तो पूरी करेंगे।

राम—अवश्य, कुमार ये लो।

भरत—बड़ी कृपा (खड़ाऊँ लेकर) आर्य इन पर अभिषेक का जल चढ़ाने की मेरी इच्छा है।

राम—तात, भरत जैसा चाहें किया जाय।

सुमन्त्र—आयुष्मान् ! आपकी जैसी आज्ञा।

भरत—(अपने आप) बड़े आनन्द की बात है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रद्धेयः स्वजनस्य पौररुचितो लोकस्य दृष्टिक्षमः
स्वर्गस्थस्य नराधिपस्य दयितः शीलान्वितोऽहं सुतः ।
भ्रातॄणां गुणशालिनां बहुमतः कीर्त्तेर्महद् भाजनं
संवादेषु कथाश्रयो गुणवतां लब्धप्रियाणां प्रियः ॥ २७ ॥

रामः—वत्स ! कैकेयीमातः ! राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम् । तस्मादद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः ।

सीता—हम्, अद्यैव गमिष्यति कुमारो भरतः । [हं, अज्ज एव्व गमिस्सदि कुमारो भरदो ।]

व्याख्या—अहम्=भरतः, स्वजनस्य=निजबन्धुजनस्य, श्रद्धेयः= विश्वास-भाजनम्, जात इति शेषः, पौररुचितः=पौराणाम्=नागराणां रुचितः=इष्टः जात इतीहापि शेषः । एवमुत्तरत्रापि । लोकस्य दृष्टिक्षमः=दर्शनयोग्यः निष्पापत्वात्, स्वर्गस्थस्य नराधिपस्य राज्ञः, दयितः=प्रियः,सुतश्च=पुत्रश्च सञ्जातः । तद्वचनं सत्यापयित्वा रघुवंशीयज्येष्ठाभिषेकं च सम्पाद्येति भावः । शीलेन=सद्वृत्तेन, अन्वितः युक्तः । गुणशालिनां=गुणवताम्, भ्रातॄणाम् बहुमतः=बहुमानविषयः, कीर्त्तेः महत्=प्रकृष्टं भाजनम्=पात्रम् जातोऽस्मि । गुणवताम् संवादेषु=परस्परालापेषु, कथाश्रयः=प्रस्तावविषयः; लब्धप्रियाणाम् =अधिगतकामानां प्रियः=पूर्णकामतया तत्साजात्यात्तत्प्रीतिपात्रमित्यर्थः । एतत् सर्वम् रामकृपाया एव फलमन्यथा तु जनाः कैकेयीकृतापराधसम्बन्धेन मामतिजघन्यं जानीयुरिति भावः । शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ।

रामः—वत्स=भ्रात, कैकेयीमातः=भरत, राज्यं नाम मुहूर्त्तमपि नोपेक्षणीयम्=राज्यपरिचालने स्वल्पतरोऽपि प्रमादो न विधेय इति भावः । तस्मात् तेन कारणेन, अद्यैव विजयाय=राज्यकार्यनिर्वहणाय, प्रतिनिवर्त्तताम्=गम्यताम् कुमारः=कुमारो भरतः ।

सीता—हम्=इति खेदे, अद्यैव गमिष्यति=यास्यति, कुमारो भरतः= कैकेयीमातः ।

अब मैं बन्धु-बान्धवों का विश्वासपात्र बना । नगरवासियों का प्रेमपात्र, संसार की ओर आँख उठाकर देखने योग्य, स्वर्गीय महाराज का सुचरित पुत्र, भाइयों का प्रिय यश-भाजन, गुणीजनों के पारस्परिक वार्त्ता का विषय तथा सफल मनोरथ प्रजाका प्रिय बना हूँ ॥ २७ ॥

राम—प्रिय भरत, राज्य-संरक्षण-निमित्त अब तुम्हें आज ही लौट जाना है ।

सीता—हाय हाय, क्या कुमार भरत आज ही लौट जायेंगे ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—अलमतिस्नेहेन । अद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः ।

भरतः—आर्य ! अद्यैवाहं गमिष्यामि ।

आशावन्तः पुरे पौराः स्थास्यन्ति त्वद्दिदृक्षया ।
तेषां प्रीतिं करिष्यामि त्वत्प्रसादस्य दर्शनात् ॥ २८ ॥

सुमन्त्रः—आयुष्मान् ! मयेदानीं किं कर्तव्यम् ?

रामः—तात ! महाराजवत् परिपाल्यतांकु मारः।

रामः—रामः सीतायाः खेदम् परिहरन्नाह—अलम्=व्यर्थम्, अतिस्नेहेन=अधिकेन स्नेहेन न किमपि सेत्स्यति । अद्यैव=अस्मिन्नेव दिने विजयाय=राज्य-कार्यपरिचालनाय च प्रतिनिवर्त्तताम्=परावर्त्यताम्, कुमारः=भरतः ।

भरतः—आर्य=कुलश्रेष्ठ, अद्यैव=अस्मिन्नेव दिने, अहम्=भरतः, गमिष्यामि=प्रतिनिवर्त्तिष्ये ।

व्याख्या—पुरे=नगरे, पौराः=नागरिकाः, आशावन्तः = त्वद्दर्शनविषयकाशाशालिनः, त्वद्दिदृक्षया=त्वद्दर्शनेच्छया 'वनात् त्वां प्रसाद्यायोध्यामानेष्यामि' इति मत्प्रतिज्ञोत्पादितयेत्यर्थम्, स्थास्यन्ति=स्थिता भवेयुः । त्वत्प्रसादस्य=त्वत्प्रसादभूतयोः पादुकयोः दर्शनात् तेषाम् प्रीतिम् करिष्यामि । त्वय्यनिवृत्तेऽपि वनवासानन्तरम् तव राज्यस्वीकृत्या पादुकादर्शनेनैव कृतार्थाः पौराः सन्तोषमेष्यन्तीति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २८ ॥

सुमन्त्रः—आयुष्मन्=चिरञ्जीविन्, मया=सुमन्त्रेण, इदानीम्=अधुना, किं कर्त्तव्यम्=किं करणीयम् ।

रामः—तात, महाराजवत् = पितृतुल्यम्, परिपाल्यताम् = रक्ष्यताम्, कुमारः=भरतः ।

राम—अधिक प्रेम प्रदर्शित मत करो । राज्य की रक्षा के लिए कुमार को आज ही लौटना है ।

भरत—आर्य ! आज ही जाऊँगा ।
नगर जन आपके दर्शनों के लिए आशा लगाये अधीर हो राह देखते होंगे । मैं जाकर आपकी चरण-प्रादुका उन्हें दिखाऊँगा, इससे उन्हें सन्तोष होगा ॥ २८ ॥

सुमन्त्र—आयुष्मन्, अब मुझे क्या करना है ।

राम—तात, महाराज के समान ही कुमार का संरक्षण करें ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुमन्त्रः—यदि जीवामि, तावत् प्रयतिष्ये।

रामः—वत्स! कैकेयीमातः! आरुह्यतां ममाग्रतो रथः।

भरतः—यदाज्ञापयत्यार्यः।

(रथमारोहतः)

रामः—मैथिलि इतस्तावत्। वत्स! लक्ष्मण! इतस्तावत्। आश्रमपदद्वारमात्रमपि भरतस्यानुयात्रं भविष्यावः।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति चतुर्थोऽङ्कः

❀ ❀ ❀

सुमन्त्रः—यदि=इति संभावनायाम्, जीवामि=जीवितो भविष्यामि तावत् प्रयतिष्ये=प्रयत्नं करिष्यामि।

रामः—वत्स=प्रिय, कैकेयीमात = भरत! आरुह्यताम्=आरोहणम् क्रियताम्। ममाग्रतः=मम सम्मुखे, रथः=स्यन्दनम्।

भरतः—यत्=यथा, आज्ञापयति=आदिशति, आर्यः=श्रेष्ठः।

(रथमारोहतः=स्यन्दनोपरि आरूढौ भवतः)

रामः—मैथिलि=सीते, इतस्तावत्, वत्सलक्ष्मण=प्रियसुमित्रानन्दन, इतस्तावत्=इतः आगम्यताम्। आश्रमपदद्वारमात्रमपि=आश्रमद्वारपर्यन्तं भरतस्य=कैकेयीनन्दनस्य, अनुयात्रम् भविष्यामः=अनुगमिष्यामः। एतेन आदरो व्यञ्जितः।

इति व्याख्यायाम् चतुर्थोऽङ्कः।

❀ ❀ ❀

सुमन्त्र—यदि जीवित रहा तो प्रयास करूँगा।

राम—प्रिय भरत, अब मेरे सामने ही रथ पर चढ़ो।

भरत—जो आज्ञा,

(दोनों रथ में बैठते हैं)

राम—सीते! लक्ष्मण! इधर आओ, चलो, आश्रम के द्वारतक भरत का अनुगमन करें।

(सभी जाते हैं)

चौथा अङ्क समाप्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ पंचमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति सीता तापसी च)

सीता—आर्ये ! उपहारसुमन आकीर्णः सम्मार्जित आश्रमः। आश्रमपद-विभवेनानुष्ठितो देवसमुदाचारः। तद् यावदार्यपुत्रो नागच्छति, तावदिमान् बालवृक्षानुदकप्रदानेनानुक्रोशयिष्यामि। [अय्ये ! उवहारसुमणाइण्णो सम्मज्जिदो अस्समो। अस्समपदविभवेण अणुट्ठिओ देवसमुदाआरो। ता जाव अय्यउत्तो ण आअच्छदि, दाव इमाणं बालरुक्खाणं उदअप्पदाणेण अणुक्कोसइस्सं।]

तापसी—अविघ्नमस्य भवतु। [अविग्घं से होदु।]

(ततः प्रविशति रामः)

रामः—(सशोकम्)।

अथ पञ्चमोऽङ्कः प्रारभ्यते। मायाभिक्षुणा रावणेन काञ्चनमृगमायया सीताया अपहरणम्, जटायुना रावणप्रतिरोधनम् चात्रप्रतिपाद्यते। तत्र तावत् सीतायास्तापसीसहितायाः प्रवेशमाह—ततः प्रविशतीत्यादि।

सीता—आर्ये=श्रेष्ठे, उपहारसुमन आकीर्णः=देवनिर्माल्यपुष्पाकीर्णः सम्मार्जितः पुष्पाद्यपनयेन संशोध्य स्फीतताम् गमितः, आश्रमः=कुटीरः। आश्रमपद-विभवेन=आश्रमस्थानसुलभेन पुष्पाद्युपकरणसम्पदा, अनुष्ठितः=विहितः, देव-समुदाचारः=देवपूजा। तावदिमान् पुरतः स्थितान् बालवृक्षान्=लघुपादपान्, उदकप्रदानेन=जलसेचनेन, अनुक्रोशयिष्यामि=अनुग्रहीष्यामि, यावत् आर्यपुत्रः= =श्रीरामः, नागच्छति=न समायाति।

तापसी—अविघ्नम्=विघ्नाभावः, अस्य=अनुक्रोशनकर्मणः, भवतु=आशीरर्थे लोट्। अनेन सीताहरणं रावणेन करिष्यमाणम् सूचितम्।

(ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति=प्रवेशं करोति रामः)

रामः—(सशोकम्=सखेदम्)

(सीता और तापसी का प्रवेश)

सीता—आर्ये, आश्रम में बिखरे हुए पूजा के फूलों को साफ कर दिया। आश्रम-सुलभ फल पुष्पादि उपकरणों से देवपूजा भी हमने कर ली है। तो जब तक आर्यपुत्र नहीं आ जाते, मैं इन छोटे पौधे को सींच लूँ।

तापसी—तुम्हारा काम निर्विघ्न हो।

(राम का प्रवेश)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्यक्त्वा तां गुरुणा मया च रहितां रम्यामयोध्यां पुरी-
मुद्यम्यापि ममाभिषेकमखिलं मत्सन्निधावागतः
रक्षार्थं भरतः पुनर्गुणनिधिस्तत्रैव सम्प्रेषितः
कष्टं भोः! नृपतेर्धुरं सुमहतीमेकः समुत्कर्षति ॥ १ ॥

(विमृश्य)ईदृशमेवैतत्। यावदिदानीमीदृशशोकविनोदनार्थमवस्थाकुटुम्बिनीं मैथिलीं पश्यामि। तत् क्व नु खलु गता वैदेही ? (परिक्रम्यावलोक्य) अये इमानि खलु प्रत्यग्राभिषिक्तानि वृक्षमूलानि अदूरगतां मैथिलीं सूचयन्ति। तथाहि—

व्याख्या—गुरुणा=तातचरणेन, मया=रामेण, च=पुनः रहिताम्=शून्याम्, ताम्, रम्याम्=मनोहराम्, अयोध्यापुरीम्, त्यक्त्वा=परित्यज्य, अखिलम्=सम्पूर्णमपि मम=रामस्य, अभिषेकम्=राज्यसंस्कारविधिम्, उद्यम्य=सप्रयत्नं सम्पाद्य, मत्सन्निधौ=मम समीपे, इह=वने, आगतः=सम्प्राप्तः, सः=असौ, भरतः=कैकेयीसुतः, गुणानाम्=भ्रातृप्रेमत्यागादीनाम्, निधिः=आकरः तत्रैव शून्यायामयोध्यायामेव, रक्षार्थम् राज्यपरिपालनाय, सम्प्रेषितः=परावर्त्तितः सन्, एकः=केवलः, सुमहतीम्=अतिशयगुर्वीम् नृपतेर्धुरम्=राज्यभारम्, समुत्कर्षति=समुद्वहति इति कष्टं भोः। शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १ ॥

(विमृश्य=विचार्य) ईदृशम्=कष्टमयम् एतत्=राज्यकार्यम् यावदिदानीम्=अधुना, इदृशशोकविनोदार्थम्=भरतवियोगजन्यकष्टदूरीकरणार्थम् अवस्थाकुटुम्बिनीम्=सर्वावस्थासहायाम्, मैथिलीम्=जानकीम्, पश्यामि=अवलोकयामि। तत्=अतः क्व नु खलु गता=कुत्रावस्थिता, वैदेही=जानकी। (परिक्रम्य=भ्रमणं कृत्वा, अवलोक्य=दृष्ट्वा) अये=इति हर्षे, इमानि=एतानि खलु प्रत्यग्राभिषिक्तानि=अचिरसिक्तानि, वृक्षमूलानि=पादपमूलानि, अदूरगताम्=समीपवर्त्तिनीम्, मैथिलीम्=जानकीम् सूचयन्ति। तथा हि—

राम—(शोक पूर्वक) पिताजी और मुझ से रहित उस रम्य अयोध्या को छोड़कर, अभिषेक की सारी सामग्री साथ लेकर कुमार भरत मेरे पास आया और मैंने उलटे पैर उसे राज्यपालन हेतु वहीं भेज दिया। बड़े कष्ट की बात है कि पिताजी के गुरुत्तर राज्य का भार वह अकेले ढो रहा है ॥ १ ॥

(कुछ सोच कर) यह राजकाज ऐसा ही होता है। अच्छा इन विषादों से मुक्ति के लिए सहचरी सीता को देखूँ **(घूमकर और देखकर)** ये तत्काल सींचे गये पौधों के थाल बता रहे हैं कि अभी ही वैदेही कहीं गयी है। क्योंकि—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भ्रमति सलिलं वृक्षावर्ते सफेनमवस्थितं
तृषितपतितानैते क्लिष्टं पिबन्ति जलं खगाः ।
स्थलमभिपतन्त्यार्द्राः कीटा बिले जलपूरिते
नववलयिनो वृक्षा मूले जलक्षयरेखया ॥ २ ॥

(विलोक्य)अये इयं वैदेही । भोः ! कष्टम् ।

योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि सः नैति खेदं कलशं वहन्त्याः ।
कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभिः कठिनीकरोति ॥ ३ ॥

अन्वयः—सलिलं वृक्षावर्त्ते अवस्थितम् सफेनम् भ्रमति । तृषितपतिताः एते खगाः क्लिष्टम् जलम् न पिबन्ति । बिले जलपूरिते आर्द्राः कीटाः स्थलम् पतन्ति । वृक्षाः मूले जलक्षयरेखया नववलयिनः (सन्ति) ॥ २ ॥

व्याख्या—सलिलम्=जलम्, वृक्षावर्त्ते=पादपालवाले, अवस्थितम्=भूम्यन्तरप्रविष्टम्, सफेनम्=फेनसहितम्, भ्रमति=चलति । तृषिताः=पिपासिताः, पतिताः=जलमवलोक्य पादपतलसमागताः, एते खगाः=विहङ्गमाः, क्लिष्टम्=कलुषम्, जलम्=सलिलम्, न=नहि, पिबन्ति । बिले=गर्त्ते, जलपूरिते=सलिलपूर्णे, आर्द्राः=जलक्लिन्नाः कीटाः, स्थलम्=शुष्कप्रदेशम्, अभिपतन्ति=जलप्लावनमसहमानाः धरांशमन्यमुपसर्पन्तीति भावः । वृक्षाः=द्रुमाः, मूले=मूलभागे, जलक्षयरेखया=सलिलक्षयनिमित्तया रेखया, नववलयिनः=वलयाकारनूतनरेखावन्तः दृश्यन्त इति भावः । हरिणी वृत्तम् ॥ २ ॥

(विलोक्य=दृष्ट्वा) अये=आश्चर्यम्, इयम्=एषा, वैदेही=जानकी, भोः कष्टम्=खेदम् ।

व्याख्या–यः अस्याः=सीतायाः करः=बाहुः दर्पणेऽपि=स्वमुखालंकरणार्थे लघुमुकुरधारणेऽपि श्राम्यति=आयासमनुभवति, सः=असौ, कलशम्=जलपूर्णम् घटम्, वहन्त्या=वृक्षसिञ्चनाय धारयन्त्या, खेदम्=श्रमम्, न=नहि, एति=प्राप्नोति । कष्टम्=

पेड़ों के थालों में पड़े फेनिल जल अभी भी घूम रहे हैं और प्यासे पक्षी पास आकर भी इस मैले पानी को पी नहीं रहे हैं। जल से भींगे कीड़े बिलों से बाहर भागे आ रहे है। और पेड़ों की जड़ में कई वलयाकार रेखाएँ पड़ गयी हैं ॥ २ ॥

(देखकर) अरे, यही तो सीता है, अहा ।

हाय, इसका हाथ कभी दर्पण उठाने में थक जाता था, वही हाथ अब घड़ा उठाने में भी नही थकता। वनवास ने लताओं के साथ नारी की कोमलता को भी कठोरता में बदल दिया है ॥ ३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(उपेत्य) मैथिलि ! अपि तपो वर्धते ?

सीता—हम्, आर्यपुत्रः । जयत्वार्यपुत्रः । [हं अय्यउत्तो ! जेदु अय्यउत्तो ।]

रामः—मैथिलि ! यदि ते नास्ति धर्मविघ्नः, आस्यताम् ।

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । (उपविशति) [जं अय्यउत्तो आण उवेदि ।]

रामः—मैथिलि ! प्रतिवचनार्थिनीमिव त्वां पश्यामि । किमिदम् ?

सीता—शोकशून्यहृदयस्येवार्यपुत्रस्य मुखरागः किमेतत् ? [ओअसुण्णहिअअस्स विअ अय्यउत्तस्स मुहराओ किं एदं ?]

रामः—मैथिलि ! स्थाने खलु कृता चिन्ता ।

खेदावहम्, यत्, वनम्=अरण्यम्, लताभिःवने जाताभिः वल्लीभिः, समं=सहैव यद्वा समम्=समानम्, स्त्रीजनसौकुमार्यम्=ललनास्वभावसुलभमार्दवम्, कठिनीकरोति=सर्वविधायाससहनशीलम् विदधातीत्यर्थः । उपजातिवृत्तम् ॥ ३ ॥

(उपेत्य=समीपं गत्वा) मैथिलि=सीते, **अपि तपो वर्धते ?**=वृक्षोदकप्रदानलक्षणं कायायाससाध्यम् अपि वर्धते=अपि निर्विघ्नं निर्वर्तते ।

सीता—हम् इति । आर्यपुत्रः=स्वामी, जयतु=सर्वतोभावेन विजयताम् । आर्यपुत्रः=स्वामी ।

रामः—मैथिलि=सीते, यदि=स्यात्, ते=तव, नास्ति धर्मविघ्नः=अनुष्ठानावसरातिपातः, आस्यताम्=विश्रम्यताम् ।

सीता—यत् आर्यपुत्रः=स्वामी आदिशति । (उपविशति=समीपे तिष्ठति)

रामः—मैथिलि=सीते, प्रतिवचनार्थिनीम्=किमपि पिपृच्छिषन्तीम्, इव=यथा, त्वां=भवतीं, पश्यामि=अवलोकयामि ।

सीता—शोकशून्यहृदयस्य=शोकेन हेतुना शून्यम्=निर्विषयम् हृदयम् यस्य तस्य तथाभूतस्ययैव । मुखरागः=आननवर्णः, किमिदम्=किमेतदिति प्रश्नाशयः ।

रामः—मैथिलि=सीते, स्थाने=उचिते विषये खलु=निश्चयेन, चिन्ता कृता ।

(पास जाकर) सीते, तप तो बढ़ रहा है न ।

सीता—जय हो आर्यपुत्र की ।

राम—सीते, यदि तुम्हें किसी प्रकार का धर्म-विघ्न न हो तो बैठ जाओ ।

सीता—जो आज्ञा । **(बैठ जाती है)**

राम—सीते, लगता है, जैसे तुम कुछ पूछना चाह रही हो ? क्या बात है ?

सीता—स्वामी, आपके चेहरे का रंग उड़ा सा लगता है । क्या बात है ?

राम—मैथिलि, तुम्हारा सोचना बिलकुल ही ठीक है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कृतान्तशल्याभिहते शरीरे तथैव तावद्धृदयव्रणो मे ।
नानाफलाः शोकशराभिघातास्तथैव तत्रैव पुनः पतन्ति ॥ ४ ॥

सीता—आर्यपुत्रस्य क इव सन्तापः ? [अय्यउत्तस्स को विअ सन्दावो ?]

रामः—श्वस्तत्र भवतस्तातस्यानुसंवत्सरश्राद्धविधिः । कल्पविशेषेण निर्वपनक्रियामिच्छन्ति पितरः । तत् कथं निर्वर्तयिष्यामीत्येतच्चिन्त्यते । अथवा—

गच्छन्ति तुष्टिं खलु येन केन त एव जानन्ति हि तां दशां मे ।
इच्छामि पूजां च तथापि कर्तुं तातस्य रामस्य च सानुरूपाम् ॥ ५ ॥

व्याख्या—कृतान्तस्य=यमस्य, शल्यैः=शल्यवद्व्यथाहेतुना कालेनाभिहते मे =मम, शरीरे=देहे, हृदयव्रणः=पितृवियोगशोकलक्षणो मानसिकः खेदः, तथैव तावद् यथापूर्वावस्थ एव न तु प्रशाम्यदवस्थ एवेत्यर्थः । तथा हि नानाफलानि राज्यभ्रंशवनवासपितृमरणादीनि येषां ते अनेकविधदुःखकारिणः, यद्वा फलं बाणाग्रम्, नानाफलाः=अनेकबाणाग्रसमुत्थाः, शराणाम्=बाणानाम्, अभिघाताः=प्रहारा तत्रैवः, तस्मिन्नेव स्थाने तथैव=तद्वदेव, पुनः पतन्ति =पुनरायानि ॥ ४ ॥

सीता—आर्यपुत्रस्य=श्रीरामचन्द्रस्य, क इव=कीदृक् सन्तापः=शोकः ?

रामः—श्वः=आगामिनि दिने, तत्रभवतः=श्रीमतः, तातस्य=पितुः, अनुसंवत्सरश्राद्धविधिः=प्रात्यब्दिकश्राद्धविधिः=प्रात्यब्दिकश्राद्धकर्म । कल्पविशेषेण=विशिष्टवस्तुदानेन, निवपनक्रियाम्=पिण्डदानादिक्रियाम्, इच्छन्ति=वाञ्छन्ति पितरः, तत्=तस्मात्, कथम्=केन प्रकारेण, निर्वर्तयिष्यामीति=विधास्यामीति, चिन्त्यते=विचार्यते । अथवा—

व्याख्या—येन केन=स्वदशानुरूपेण, खलु निश्चयेन, पितरः तुष्टिम्=तृप्तिम्, गच्छन्ति=यान्ति, लिङर्थेऽत्र लट् । हि=यतः, ते=पितरः, मे=मम, ताम्=यस्यां दशायामहमस्मि, जानन्त्येव=अवबोधयन्त्येव, एवकारोऽत्र भिन्नक्रमः । तथापि=पुनरपि, तातस्य=पितुः, रामस्य च नाम्ना निर्देशः स्वस्य पितृभक्तत्वं

काल के बाणों से बिंधे मेरे हृदय के घाव अभी भरे नहीं है । फिर अनेक-मुख-शोक-शल्यों से दैव ने उसी घाव पर पुनः प्रहार करना शुरू कर दिया है ॥ ४ ॥

सीता—आर्यपुत्र को आखिर किस बात की चिन्ता है ?

राम—कल पिताजी का वार्षिक श्राद्धदिवस है । ऐसे अवसर पर पितृगण उत्तम पिण्डकी प्रत्याशा रखते हैं । इसे कैसे पूरा करूगाँ—यही सोच रहा हूँ ।

अथवा—वे जिस भाँति तृप्त होते हों, होवें । उन्हें हमारी स्थिति का ज्ञान तो है ही, तथापि मैं पिताजी की प्रतिष्ठा तथा अपने सामर्थ्य के अनुरूप श्राद्ध करना चाहता हूँ ॥ ५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—आर्यपुत्र ! निर्वर्तयिष्यति श्राद्धं भरत ऋद्धया, अवस्थानुरूपं फलोदकेनाप्यार्यपुत्र। एतत् तातस्य बहुमततरं भविष्यति। [अय्यउत्त ! णिव्वत्तइस्सदि सद्धं भरदो रिद्धीए, अवत्थानुरूवं फलोदएण वि अय्यउत्तो। एवं तादस्स बहुमदअरं भविस्सदि।

राम:—मैथिलि।

फलानि दृष्ट्वा दर्भेषु स्वहस्तरचितानि नः।
स्मारितो वनवासं च तातस्तत्रापि रोदिति॥ ६॥

(ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो रावण:)

रावण:—एष भोः !

नियतमनियतात्मा रूपमेतद् गृहीत्वा खरवधकृतवैरं राघवं वञ्चयित्वा।
स्वरपदपरिहीणां हव्यधारामिवाहं जनकनृपसुतां तां हर्तुकाम: प्रयामि॥ ७॥

लक्षयति—सानुरूपाम्=अनुगता रूपमित्यनुरूपाम् योग्यां पूजाम्=श्राद्धक्रियाम् कर्त्तुमिच्छामि। उपजातिश्छन्दः॥ ५॥

सीता—आर्यपुत्र=स्वामिन्, निर्वर्तयिष्यति=निर्वाहम् करिष्यति, श्राद्धम्=श्राद्धकर्म ऋद्धया=विभवेन, भरतः=कुमारो भरतः। अवस्थानुरूपम्=स्थित्यनुकूलम्, फलोदकेन=फलेम जलेन चेत्यर्थः। एतत्=एतदेव तातस्य=पितुः, वहुमततरम्=प्रियतरम् भविष्यति।

राम:—मैथिलि=सीते,

व्याख्या—दर्भेषु=कुशेषु, न तु सौवर्णादिपात्रेषु, नः=अस्माकम् स्वहस्तरचितानि निजकरन्यस्तानि फलानि, नतु महार्घवस्तूनि दृष्ट्वा तातो वनवासम् अस्माकमरण्यवासम् स्मारितस्तत्र स्वर्गेऽपि रोदिति=रोदिष्यतीति भावः॥ ६॥

(ततः तत्पश्चात् प्रविशति=प्रवेशं करोति, परिव्राजकवेषः साधुरूपेण रावणः)

व्याख्या—अनियतात्मा==अजितेन्द्रियः अहम्, एतद् रूपम्=परिव्राजक-

---

सीता—आर्यपुत्र, वैभव के साथ पिताजी का श्राद्ध तो कुमार भरत करेंगे ही, आप अपनी स्थिति के अनुकूल फल-जल से श्राद्ध कर लें। पिताजी इसे ही पर्याप्त समझेंगे।

राम—सीते, कुशों पर हमारे हाथों से विन्यस्त फलों को देखकर स्वर्ग में भी पिताजी रो देंगे॥ ६॥

(सन्यासी के वेष में रावण का प्रवेश)

रावण—अरे यह—राम ने खर का वध करके मेरे साथ दुश्मनी ठानी है। उसे ठगने के लिए आज मैं अविरक्त होकर भी विरक्त बना हूँ। मैं सीता का उसी प्रकार हरण करूँगा, जैसे स्वरपद से अशुद्ध मन्त्रोच्चारण होम की आज्य-धारा को हर लेती है॥ ७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(परिक्रम्याधो विलोक्य) इदं रामस्याश्रमपदद्वारम् । यावदवतरामि । (अवतरति) यावदहमप्यतिथिसमुदाचारमनुष्ठास्यामि । अहमतिथिः । कोऽत्र भोः?

रामः—(श्रुत्वा) स्वागतमतिथये ।

रावणः—साधु विशेषितं खलु रूपं स्वरेण ।

रामः—(विलोक्य) अये भगवान् : भगवन् ! अभिवादये ।

रावणः—स्वस्ति ।

वेषम् गृहीत्वा नियतम् जितेन्द्रियम्, राघवम् रामम्, काञ्चनमृगमायया अन्यत्र गमयित्वा, तां राघवविरहिताम्, जनकनृपसुताम्=सीताम्, स्वरपदपरिहीणाम्=स्वरपदविभागरहिताम्, स्वरपददुष्टमन्त्रोच्चारणपूर्वम् देवेभ्यो दीयमानामित्यर्थः, हव्यधारामिव=हविराज्यं तस्य धारामिव, हर्त्तुकामः सन् प्रयामि । हव्यधारा हि मन्त्रदोषे रक्षसाऽपि ह्रियते । हव्यधारामिवेत्युपमालङ्कारः । मालिनी छन्दः ।।७।।

(परिक्रम्य=भ्रमित्वा, अधः विलोक्य=दृष्ट्वा) इदम्=एतत्, रामस्य=श्रीरामचन्द्रस्य, आश्रमपदद्वारम् उटजप्रवेशमार्गः । यावदवतरामि=अधोवतीर्णो भवामि, (अवतरति=अधः आगच्छति) यावत् अहमपि=रावणोऽपि अतिथि-समुदाचारम्=अतिथिजनोचितव्यवहारम्, अनुष्ठास्यामि=विधास्यामि, अहमतिथिः आगत इति शेषः । कोऽत्र भोः=अत्र अस्मिन् स्थाने कः = अस्ति ? अर्थात् सत्कर्त्तुम् सन्निहित इत्यर्थः ।

रामः—(श्रुत्वा=श्रवणं कृत्वा) स्वागतम् अतिथये=अतिथये स्वागतमस्तु ।

रावणः—साधु=स्वभावसुन्दरम्, रूपम्=आकृतिः, स्वरेण=श्रवणावर्जकेन शब्देन विशेषितम्=रमणीयतरं कृतम् ।

रामः—(विलोक्त=दृष्ट्वा) अये=आश्चर्यम्, भगवान्=संन्यासिविशेषः । भगवन्=श्रीमन् अभिवादये ।

रावणः—स्वस्ति=कल्याणाय ।

(आगे बढ़कर और नीचे देखकर) यही राम के आश्रम का द्वार है । अच्छा तो उतरता हूँ । (नीचे आ जाता है) अब मैं अतिथि का रूप धारण करता हूँ । मैं अतिथि आया हूँ, कौन यहाँ है ?

राम—(सुनकर) अतिथि का स्वागत है ।

रावण—इसके स्वर ने इसके स्वरूप को और चमका दिया है ।

राम—(देखकर) अहा; भगवान् हैं । भगवन्, प्रणाम ।

रावण—कल्याण हो ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—भगवन् । एतदासनमास्यताम् ।

रावणः—(आत्मगतम्) कथमाज्ञप्त इवास्म्यनेन । (प्रकाशम्) बाढम् (उपविशति) ।

रामः—मैथिलि ! पाद्यमानय भगवते ।

सीताः– यदार्यपुत्र आज्ञापयति । (निष्क्रम्य, प्रविश्य) इमा आपः। [जं अय्यउत्तो आणवेदि । इमा आवो ।]

रामः—शुश्रूषय भगवन्तम् ।

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । [जं अय्यउत्तो आणवेदि ।]

रावणः—(मायाप्रकाशनपर्याकुलो भूत्वा) भवतु भवतु ।

रामः—भगवन्=श्रीमन्, एतदासनम्=इदमासनम्, आस्यताम्=अलंक्रियताम्।

रावणः—(आत्मगतम्=स्वगतम्) कथम्=केन प्रकारेण, आज्ञप्त इवास्म्यनेन । अस्मिन् कथने कियन्तमाज्ञाभावम् व्यञ्जयति, तद्वक्ष्यति आज्ञप्त इवेति। (प्रकाशम्) बाढम्=शोभनम् (उपविशति) ।

रामः—मैथिलि=सीते, पाद्यम्=पादार्थमुदकम्, भगवते=श्रीमते, आनय।

सीता—आर्यपुत्रः=स्वामी, यत्=यथा, आज्ञापयति=आदिशति (निष्क्रम्य= बहिर्गत्वा, प्रविश्य=प्रवेशम् कृत्वा) इमा आपः=एतद् जलम् ।

रामः—शुश्रूषय=पादप्रक्षालनेनोपचर, भगवन्तम्=श्रीमन्तम् ।

सीता—आर्यपुत्रः यत्=यथा, आज्ञापयति=आदिशति ।

रावणः—(मायाप्रकाशनपर्याकुलो भूत्वा=सीतया हि स्वपादे स्पृश्यमाणे अजितेन्द्रियस्यात्मनो रोमाञ्चोद्गमादिना माया प्रकटी भवेदिति शङ्काकुलो भूत्वा) भवतु-भवतु=शुश्रूषणं मा प्रवर्त्तंतामिति ।

राम—श्रीमन्, ये है आसन, आप विराजें तो ।

रावण—(अपने आप) लगता है जैसे यह मुझे आदेश दे रहा है । (प्रगट) अच्छा । (बैठ जाता हैं)

राम—सीते महात्माजी के पैर धोने के लिए पानी तो लाओ ।

सीता—जैसी आज्ञा । (बाहर से जल लाकर) यह है पानी ।

राम—महात्मा की सेवा करो सीता ।

सीता—स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य है ।

रावण—(भेद खुलने के भय से घबड़ाकर) रहने दो, रहने दो ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इयमेका पृथिव्यां हि मानुषीणामरुन्धती ।
यस्या भर्तेति नारीभिः सत्कृतः कथ्यते भवान् ॥ ८ ॥

रामः—तेन हि आनय, अहमेव शुश्रूषयिष्ये ।

रावणः—अयि, छायां परिहृत्य शरीरं न लङ्घयामि । वाचानुवृत्तिः खल्वतिथिसत्कारः । पूजितोऽस्मि । आस्यताम् ।

रामः—बाढम् । (उपविशति)

व्याख्या—इयम्=एषा, हीति निश्चयेन, पृथिव्याम्=भूपृष्ठे, मानुषीणाम्=मानवीनाम्, एका=अद्वितीया, अरुन्धती=अरुन्धतीतुल्या । अरुन्धती नाम वशिष्ठधर्मपत्नी स्वपातिव्रत्यप्रभावेण सप्तर्षिमध्ये वसति, इह तत्प्रयोगः पतिव्रतासामान्यपरः । यस्याः=सीतायाः, भर्त्ता=स्वामीति हेतोः भवान्=त्वम्, नारीभिः सत्कृतः=पूजितः सन् कथ्यते=वर्ण्यते । इह पूर्वार्द्धेन पातिव्रत्यप्रयुक्तो महिमा सीतायाः आविष्कृतः, उत्तरार्द्धेन रामपत्नीत्वप्रयुक्तः । भवानपि तस्याः पातिव्रत्यप्रभावेण लोके पूज्यतेऽतः पतिव्रताप्रधानभूतया सीतया क्रियमाणम् पादस्पर्शम् नानुमन्य इति भावः ॥ ८ ॥

रामः—तेन=यद्येवं तर्हि आनय=देहि, अहमेव=रामः स्वयमेव, शुश्रूषयिष्ये=सेवयिष्ये ।

रावणः—अयि=आश्चर्यम्, छायाम्=छायावत् स्थिताम् ते भार्याम् परित्यज्य= अवरुद्धया च, शरीम् न लङ्घयामि, अर्थात् योऽहम् भवच्छरीस्य नित्यानुगामितया छायातुल्याम् सीतामपि शुश्रूषार्थं स्पर्शदूषणलक्षणाल्लङ्घनात् परिहरामि, स कथम् भवच्छरीरमेव साक्षाल्लङ्घयमित्यभिप्रायः । वाचानुवृत्तिः=अतिथिसत्कारोचितम् भाषणम् अर्थात् सूनृतया गिराभिभाषणमेवातिथिपूजा, न तु तदतिरिक्ता काचिदिति । पूजितोऽस्मि=सम्मानितोऽस्मि, आस्यताम् ।

रामः—बाढम्=अङ्गीकरोमि (उपविशति=आसने तिष्ठति)

यह सीता पृथ्वी पर स्त्रियों के बीच अकेली अरून्धती है । इस जानकी के पति होने के कारण आप भी नारियों के बीच पूजनीय हैं ॥ ८ ॥

राम—लाओ, तो मैं स्वयं तुम्हारी सेवा करूँ ।

रावण—नहीं-नहीं जब छाया रूपी सीता की सेवा का हमने परिहार किया तो साक्षात् शरीर रूपी आपको मैं सेवा कैसे करने दूँ । प्रेमपूर्वक संभाषण ही असली अतिथि-सत्कार है । बैठिये तो आप ।

राम—अच्छी बात है (बैठ जाते हैं)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रावणः—(आत्मगतम्) यावदहमपि ब्राह्मणसमुदाचारमनुष्ठास्यामि। (प्रकाशम्) भोः ! काश्यपगोत्रोऽस्मि। साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च।

रामः—कथं कथं श्राद्धकल्पमिति।

रावणः—सर्वाः श्रुतीरतिक्रम्य श्राद्धकल्पे स्पृहा दर्शिता। किमेतत् ?

रामः—भगवन् ! भ्रष्टायां पितृमत्तायामागम इदानीमेषः।

रावणः—(आत्मगतम्=स्वगतम्) यावदहमपि=रावणोऽपि, ब्राह्मणसमुदाचारम्=विप्राचरणम्, अनुष्ठास्यामि करिष्यामि। (प्रकाशम्) काश्यपगोत्रोऽस्मि=काश्यपगोत्रोत्पन्नोऽस्मि, साङ्गोपाङ्गम्=अङ्गैः षड्भिः शिक्षाव्याकरणच्छन्दोनिरुक्तज्यौतिषकल्परूपैः, उपाङ्गैः, पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्ररूपैश्चतुर्भिश्च सहितम् वेदमधीये। मानवीयम्=मनुना प्रवर्त्तितम् धर्मशास्त्रम्=धर्मानुशासनम्, माहेश्वरम्=महेश्वरप्रोक्तम्, योगशास्त्रम्=पातञ्जलोपजीव्यम् योगविद्यारहस्यम्, बार्हस्पस्यमर्थशास्त्रम्=बृहस्पतिना प्रोक्तम् अर्थनीतिप्रतिपादनप्रधानम् राजनीतिशास्त्रम्, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रम्=मेधातिथिर्नाम ऋषिः तत्प्रोक्तम् तर्कशास्त्रविशेषम् गौतमाद्युपजीव्यम्, च पुनः, प्राचेतसम् श्राद्धकल्पम्=वरुणप्रोक्तम् श्राद्धविधानम्।

रामः—कथम् कथमित्यत्र आदरातिशयद्योतिका द्विरुक्तिः। श्राद्धकल्पम्=श्राद्धप्रक्रियामिति।

रावणः—सर्वाः=सकलाः, श्रुतीः=वेदान्, श्रुतिशब्दो वेदपरोपीहानन्तरोक्तसर्वशास्त्रोपलक्षणम्, अतिक्रम्य=परित्यज्य, श्राद्धकल्पे=श्राद्धप्रक्रियाशास्त्रे, स्पृहा=उत्कटेच्छा, दर्शिता=प्रकटिता। किमेतत्=कस्मात्कारणादेतत्।

रामः—भगवन्=श्रीमन्, भ्रष्टायाम्=समाप्तायाम्=पितृमत्तायाम्=जीवत्पितृकतायाम्, आगम इति=शास्त्रम्, इदानीम्=अधुना, एषः=एषः एव शास्त्रमिति अर्थात् प्रमीतपितृकस्य मम श्राद्धकल्प एवोपयोगावहः न अन्यः कल्पः।

रावण—(अपने आप) तो अब मैं ब्राह्मणों की तरह व्यवहार करूँ। (प्रकट में) काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण। मैंने साङ्गोपाङ्ग वेद, मनु का धर्मशास्त्र, महेश्वर का योगशास्त्र, मेधातिथि का न्यायशास्त्र तथा प्रचेता का श्राद्धकल्प विधिवत पढ़ा है।

राम—क्या कहा ? श्राद्धकल्प ?

रावण—आपने सभी शास्त्रों को छोड़कर श्राद्धकल्प के लिए विशेष उत्कण्ठा प्रकट की है, यह क्या बात है ?

राम—श्रीमन्, पितृहीन होने के कारण मेरे लिए इस समय इसी का ज्ञान अपेक्षित है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रावणः—अलं प्ररिहृत्य । पृच्छतु भवान् ।

रामः—भगवन् ! निर्वपनक्रियाकाले केन पितॄँस्तर्पयामि ?

रावणः—सर्वं श्रद्धया दत्तं श्राद्धम् ।

रामः—भगवन् ! अनादरतः परित्यक्तं भवति । विशेषार्थं पृच्छामि ।

रावणः—श्रूयताम् । विरूढेषु दर्भाः, ओषधीषु तिलाः, कलायं शाकेषु; मत्स्येषु महाशफरा, पक्षिषु वार्ध्रीणसः, पशुषु गौः खड्गो वा, इत्येते मानुषाणां विहिताः ।

रावणः—अलं परिहृत्य=प्रष्टव्यम् पृच्छ, नात्र सङ्कोचः कार्यः । अर्थात् परिहृत्यालं श्राद्धकल्पविषयम् प्रष्टव्यमर्थम् मा परिहर ।

रामः—भगवन् =श्रीमन्, निर्वपनक्रियाकाले=श्राद्धक्रियासमये, केन=वस्तुविशेषेण, पितॄन् तर्पयामि=प्रीणयामि ।

रावणः—सर्वम्=सकलम्, श्रद्धया=भक्त्या, दत्तम्=प्रदत्तम्, श्राद्धम्=श्राद्धक्रिया ।

रामः—भगवन्=श्रीमन्, अनादरतः=अश्रद्धया दत्तम् परित्यक्तं भवति=परित्यागमात्रम् तत् । विशेषार्थम् पृच्छामि=श्रद्धापूर्वकम् दीयमानेषु पदार्थेष्वपि अस्ति कश्चित् विशेष इति भावः ।

रावणः—श्रूयताम्=अवधार्यताम्, विरूढेषु=तृणजातिषु, दर्भाः=कुशाः; ओषधीषु=ओषधयः फलपाकान्ता इति रूपासु तिलाः, कलायं शाकेषु=कालशाकः, पक्षिषु=खगेषु, वार्ध्रीणसः=पक्षिविशेषः–"नीलग्रीवो रक्तशीर्षः कृष्णपादः सितच्छदः वार्ध्रीणसः पक्षीशः ।" पशुषु गौः वा अथवा, खड्गः=गण्डकः पशुभेदः । इत्येते मानुषाणाम् नराणाम्, विहिताः ।

रावण—निःसंकोच भाव से आप इसके सम्बन्ध में पूछिये ।

राम—भगवन्, पिण्डदान के समय किस वस्तु से पितरों को सन्तुष्ट करूँ ?

रावण—जो कुछ भी श्रद्धा से दिया जाय, वह श्राद्ध कहलाता है ।

राम—अश्रद्धा से दी गयी वस्तु का तो परित्याग कर ही दिया जाता है, मेरा प्रश्न विशेष वस्तु के विषय में है ।

रावण—तो सुनिये, घासों में कुश, ओषधियों में तिल, शाकों में मटर, मछलियों में मगरमच्छ, चिड़ियों में वार्ध्रीणस, पशुओं में गाय व गैंडा—ये सारी वस्तुएँ सामान्य जन के लिए विहित हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—भगवन् ! वाशब्देनावगतमन्यदप्यस्तीति ।

रावणः—अस्ति प्रभावसम्पाद्यम् ।

रामः—भगवन् ! एष एव मे निश्चयः ।

उभयस्यास्ति सान्निध्यं यद्येतत् साधयिष्यति ।
धनुर्वा तपसि श्रान्ते श्रान्ते धनुषि वा तपः ॥ ९ ॥

रावणः—सन्ति । हिमवति प्रतिवसन्ति ।

रामः—हिमवतीति । ततस्ततः ।

रावणः—हिमवतः सप्तमे शृङ्गे प्रत्यक्षस्थाणुशिरःपतितगङ्गाम्बुपायिनो वैदूर्य-

---

रामः—भगवन्=श्रीमन्, वा शब्देन=अनुक्तसमुच्चयार्थकतयात्र प्रयुक्तेन वा-पदेन,अवगतम् = बुद्धम् अन्यदप्यस्तीति=किमप्यतिरिक्तोप्यस्तीति जिज्ञासा ।

रावणः—अस्ति प्रभावसम्पाद्यम्=प्रायेण तेजोविशेष सम्पाद्यम्=प्रभाव-सम्पाद्यम् ।

रामः—एष एव मे निश्चयः=यत्प्रभावसम्पादितेन द्रव्येण पितॄन् तर्पयामि ।

व्याख्या—उभयस्य=साधकद्वयस्य सान्निध्यम्=मयि सन्निधित्वम् अस्ति, एतत्=उभयम् यदि साधयिष्यति–प्रभावसम्पाद्यं सम्पादयिष्यति चेत् सम्पादयत्वित्यर्थः । किं तदुभयमित्याह–तपसि श्रान्ते अतिमात्रविनियुक्ते सति, धनुर्वा= अर्थात् प्रभावसंपाद्यम् सम्पादयिष्यति, धनुषि श्रान्ते अतिमात्रविनियुक्ते सति तपो वा प्रभावसंपाद्यं साधयिष्यतीति भावः । शेषम् समानम् ॥ ९ ॥

रावणः—सन्ति=प्रभावसम्पाद्यानि द्रव्याणि विद्यन्ते, क्वेत्याह–हिमवति= हिमालये, प्रतिवसन्ति = निवसन्ति ।

रामः—हिमवति इति=हिमालयेऽस्ति, ततः=तत्पश्चात् ।

रावणः—हिमवतः=हिमालयस्य, सप्तमे शृङ्गे=ऊर्ध्वोन्मुखम् शिखरम् शृङ्गं

राम—महाराज, अथवा से कुछ और वस्तु अवशिष्ट लगती है, कुछ और हैं क्या ?

रावण—हाँ, है किन्तु, उसे कोई प्रतापी व्यक्ति ही प्राप्त कर सकता है ।

राम—उसे प्राप्त करना ही मेरा निश्चय है ।

इस कार्य को पूरा करने के लिए दोनों साधन मेरे पास हैं । अगर तप असफल हुआ तो बल और बल असफल हुआ तो तप ॥ ९ ॥

रावण—है तो, पर हिमालय पर रहता है ।

राम—हिमालय पर, तब फिर श्रीमान् ।

रावण—हिमालय की सातवीं चोटी पर महादेव के माथे से गिरनेवाली गंगा का जल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्यामपृष्ठाः पवनसमजवाः काञ्चनपार्श्वा नाम मृगाः यैर्वैखानसवालखिल्यनैमिषी-
यादयो महर्षयश्चिन्तितमात्रोपस्थितविपन्नैः श्राद्धान्यभिवर्धयन्ति ।
तैस्तर्पिताः सुतफलं पितरो लभन्ते, हित्वा जरां खमुपयान्ति हि दीप्यमानाः ।
तुल्यं सुरैः समुपयान्ति विमानवासमावर्तिभिश्च विषयैर्न बलाद् ध्रियन्ते ॥१०॥

रामः—मैथिलि !

आपृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमांश्च विन्ध्यं वनं तव सखीर्दयिता लताश्च ।
वत्स्यामि तेषु हिमवद्गिरिकाननेषु, दीप्तैरिवौषधिवनैरुपरञ्जितेषु ॥ ११ ॥

व्यपदिशन्ति, तत्र, प्रत्यक्षस्य=साक्षाद् वर्त्तमानस्य, स्थाणोः=शिवस्य शिरसः पतितम्=स्खलितम्, गङ्गायाः=भागीरथ्याः, अम्बु=जलम् तत् पातुम् शीलमेषामिति तथा । वैदूर्यम्=रत्नविशेषः, तद्वत् श्यामम्=कृष्णवर्णम् पृष्ठं येषाम् । पवनेन=वायुना समो जवो वेगो येषां ते । काञ्चनपार्श्वाः=स्वर्णवर्ण-पार्श्वतया तदाख्यया प्रसिद्धाः । यैः काञ्चनपार्श्वमृगैः=वैखानसाः=वान-प्रस्थाः । वालखिल्यास्तदाख्या नैमिषीयाः=निमिषारण्यवासिनः महर्षयः=ऋषयः, चिन्तितमात्रा उपस्थिताश्च ते विपन्नाश्च मृताश्च तैः । श्राद्धानि अभि-वर्धयन्ति=महत्त्वपूर्णानि कुर्वन्ति । यतः—

व्याख्या—तैः काञ्चनपार्श्वमृगैः, तर्पिताः=सन्तुष्टाः पितरः, सुतफलम्=पुत्र-जन्मप्रयोजनम् लभन्ते । हीति=निश्चयेन, दीप्यमानाः=तेजसा भ्राजमानाः, जराम्=वृद्धत्वम् हित्वा=परित्यज्य, खम्=स्वर्गम्, उपयान्ति=गच्छन्ति, सुरैस्तुल्यं सदृशम्, विमानवासम्=व्योमयानवासम्, समुपयान्ति=लभन्ते । च=पुनः, आवर्त्तिभिः=जन्ममरणभ्रमकारिभिः विषयैः बलात् न ध्रियन्ते=न आकृष्यन्ते । सांसारिकविषयलोभान्मुच्यन्त इत्यर्थः ।। १० ।।

रामः—मैथिलि=सीते !

व्याख्या—पुत्रकृतकान्=कृत्रिमपुत्रान्, हरिणान्=मृगान्, आपृच्छ=गमन-

---

पीनेवाला, वैदूर्यमणि की तरह श्याम पृष्ठ, वायु के समान शीघ्रगामी काञ्चनपार्श्व नामक मृग रहा करता है । वैखानस, वालखिल्य, नैमिषीय ऋषिगण ध्यान मात्र से ही उसे बुलाकर श्राद्धकर्म करते हैं ।

उनसे तर्पित होकर ही पितर पुत्रवान् होने की सार्थकता महसूस करते हैं । साथ ही बुढ़ौती का परित्याग कर सीधे स्वर्ग चले जाते हैं । वहाँ वे देवों के साथ विमान में रहते हैं और आवागमन की वासना से बलपूर्वक खींचे नहीं जाते ॥ १० ॥

राम—सीते, अपने कृत्रिम पुत्र हिरण और वृक्षों से, विन्ध्यवन से, अपनी प्रियसखियों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । [जं अय्यउत्तो आणवेदि ।]

रावणः—कौशल्यामातः ! अलमतिमनोरथेन, न ते मानुषैर्दृश्यन्ते ।

रामः—भगवन् ! किं हिमवति प्रतिवसन्ति ?

रावणः—अथ किम् ?

रामः—तेन हि पश्यतु भवान् ।

सौवर्णान् वा मृगांस्तान् मे हिमवान् दर्शयिष्यति ।
भिन्नो मद्बाणवेगेन क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यति ।। १२ ।।

कालिकामन्त्रणया सम्भावय, च=पुनः द्रुमान्=वृक्षान्, विन्ध्यम्=विन्ध्याख्यपर्वतम् वनम् = काननम्, तव = भवतः, दयिताः = प्रियाः, सखीः=प्रियवयस्यः, लताः= =वल्लरीश्च आपृच्छेत्यन्वयः, दीप्तैरिव = ज्वलद्भिरिव ओषधिवनैरुपरञ्जितेषु = ज्योतिष्मल्लताप्रकाशितेषु = काञ्चनमृगशालिषु, हिमवद्गिरिकाननेषु=हिमालयस्य वनेषु वत्स्यामि=निवासं करिष्यामि ।। ११ ।।

सीता—यत् = यथा, आर्यपुत्रः = स्वामी, आज्ञापयति=आदिशति ।

रावणः—कौशल्यामातः = कौशल्यामाता यस्य संबुद्धिः हे राम ! अलम् = व्यर्थम्, अतिमनोरथेन = मानुषयोग्याम् सीमामतिक्रम्य प्रवृत्तेनाभिलाषेण । न= नहि, ते=मृगाः, मानुषैः = मानवैः दृश्यन्ते ।

रामः—भगवन् = श्रीमन्, किमिति प्रश्ने । हिमवति = हिमालये, प्रतिवसन्ति = निवासं कुर्वन्ति ।

रावणः—अथ किम् = अस्त्विति स्वीकारोक्तिः ।

रामः—तेन हि पश्यतु भवान्=भवान् पश्यतु यदहं सौवर्णमृगविषये उद्योगं कर्त्तुं व्यवसितस्तज्जानीहीति ।

व्याख्या—हिमवान् = हिमालयः, तान् = मृगान्, सौवर्णान्=काञ्चन-

और लताओं से तुम विदा ले लो, अब हम उन हिमालय के वनों में बसेंगे जहाँ अहर्निश वनौषधियाँ चमकती रहती हैं ॥ ११ ॥

सीता—जैसी आप की आज्ञा ।

रावण—कौशल्यानन्दन; अधिक साहस मत करो । उन्हें मनुष्य नहीं देख सकते ।

राम—क्या वे हिमालय पर रहते हैं ?

रावण—और क्या ?

राम—तो आप देखें—हिमालय स्वयं उस स्वर्णमृग को मेरे सामने उपस्थित करेगा या मेरे बाणों से बिंधकर क्रौंच पर्वत की दशा को प्राप्त करेगा ॥ १२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रावणः—(स्वगतम्) अहो असह्यः खल्वस्यावलेपः । (प्रकाशम्) अये विद्युत्सम्पात इव दृश्यते । कौशल्यामातः ! इहस्थमेव भवन्तं पूजयति हिमवान् । एष काञ्चनपार्श्वः ।

रामः—भगवतो वृद्धिरेषा ।

सीता—दिष्टयाऽऽर्यपुत्रो वर्धते [दिट्ठिआ अय्यउत्तो वड्ढइ ।]

रामः—न न,

तातस्यैतानि भाग्यानि यदि स्वयमिहागतः ।
अर्हत्येष हि पूजायां लक्ष्मणं ब्रूहि मैथिलि ! ॥ १३ ॥

पार्श्वान्, मृगान् हरिणान् मे=मह्यं, दर्शयिष्यति=मद्दृष्टिगोचरं करिष्यति, वा अथवा, मम=रामस्य, बाणानाम्=शराणाम्, वेगेन=जवेन, भिन्नः=विदीर्णः, क्रौञ्चत्वम्=क्रौञ्चपर्वततुल्यदशाम्, गमिष्यति=प्राप्स्यति । पुरा किल शिवाच्छर-विद्यामधीयानयोः परशुरामकार्त्तिकेययोरहमहमिकया स्वबाणविद्योत्कृष्टतां परी-क्षितुं बाणान् क्षिपतोः क्रौञ्चगिरौ रन्ध्रं जातमिति कथानुसंधेया । प्रयुक्तोऽयमर्थो मेघदूते "हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म तत्क्रौञ्चरन्ध्रम्" ॥ १२ ॥

रावणः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) अहो=आश्चर्यम्, असह्यः खल्विति निश्चयेन अवलेपः=शौर्यगर्वः, अस्य=रामस्येति । (प्रकाशम्) अये=इति विस्मये, विद्युतः सम्पात इव दृश्यते=अवलोक्यते । कौशल्यामातः=हे राम, इहस्थमेव=दण्डकारण्ये वसन्तमेव, भवन्तं=श्रीमन्तम्, हिमवान् पूजयति= हिमालयः अर्चयति । एषः=पुरतः पश्य, काञ्चनपार्श्वः=सौवर्णपृष्ठमृगः ।

रामः—भगवतः=श्रीमतः, एषा=पुरो दृश्यमाना, वृद्धिः=प्रभावः ।

सीता—दिष्ट्या=भाग्येन, आर्यपुत्रः=स्वामी, वर्धते=विजयते ।

रामः—न न=नहि नहि,

व्याख्या—यदि=चेत्, इह=अस्मिन् वने, स्वयम्=स्वेच्छया काञ्चनमृगः,

---

रावण—(स्वगत) इसका घमण्ड तो सहा नहीं जाता (प्रकट) अरे कहीं बिजली चमक रही है ? अतः राम ! हिमालय यहीं तुम्हारा सत्कार कर रहा है । देखो, यह रहा काञ्चनमृग ।

राम—यह आपका ही प्रभाव है ।

सीता—आर्यपुत्र का अहोभाग्य ।

राम—नहीं नहीं, यह तो पिताजी का पुण्य है । यह तो पूजा योग्य है, स्वयं यहाँ आया है । सीते, लक्ष्मण से कहो ॥ १३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—आर्यपुत्र ! ननु तीर्थयात्रात उपवर्तमानं कुलपतिं प्रत्युद्गच्छेति सन्दिष्टः सौमित्रिः। [अय्यउत्त ! णं तित्थअत्तादो उवावत्तमाणं कुलवदिं पच्चुग्गच्छेहित्ति सन्दिट्ठो सोमित्ती ।]

रामः—तेन हि अहमेव यास्यामि ।

सीता—आर्यपुत्र ! अहं किं करिष्यामि ? [अय्यउत्त ! अहं किं करिस्सं ?]

रामः—शुश्रूषस्व भगवन्तम् ।

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । [जं अय्यउत्तो आणवेदि ।]

(निष्क्रान्तो रामः)

रावणः—अये अयमर्घ्यमादायोपसर्पति राघवः । एष इदानीं पूजामनवेक्ष्य धावन्तं मृगं दृष्ट्वा धनुरारोपयति राघवः ।

आगतः=समागतः, तर्हि तातस्य=पितुः दशरथस्य, एतानि=भाग्यानि । एषः=मृगः, हि=यतः, पूजायाम्=अर्चायाम्, अर्हति । मैथिलि=सीते, लक्ष्मणम्=ममानुजम्, ब्रूहि=अर्घ्यादिना सम्पूज्यानेतुं कथय ।। १३ ।।

सीता—आर्यपुत्र=स्वामिन्, नन्विति प्रश्ने, तीर्थयात्रातः=तीर्थाटनात्, उपावर्त्तमानम्=प्रत्यावर्त्तमानं, कुलपतिम्=रामतपोवनाधिष्ठातारमृषिश्रेष्ठम्, प्रत्युद्गच्छ=प्रत्युत्थानेन संभावय. इति=इत्थम्, संदिष्टः=संदिश्य प्रेषितः ।

रामः—तेन=कारणेन, हि=यतः, अहमेव=राम एव, यास्यामि=गमिष्यामि ।

सीता—आर्यपुत्र=स्वामिन्, अहम्=सीता, किं करिष्यामि ।

रामः—भगवन्तम्=श्रीमन्तम्, शुश्रूषस्व=सेवाम् कुरु ।

सीता–यत्=यथा, आर्यपुत्रः=स्वामी, आज्ञापयति=आदिशति, तथैवेति भावः।

(निष्क्रान्तो रामः=रामः बहिर्गतः)

रावणः—अये=आश्चर्यम्, अयम्=एषः, अर्घ्यम्=अर्घ्यार्थम् जलम् आदाय=

सीता—आर्यपुत्र, आपने स्वयं लक्ष्मण को तीर्थयात्रा से लौटते हुए कुलपति की अगवानी के लिए भेजा है।

राम—तब तो अब मैं ही जाऊँगा ।

सीता—आर्यपुत्र, मैं क्या करूँगी ?

राम—इन्हीं ऋषिराज की तुम सेवा करो ।

सीता—आपकी जैसी आज्ञा स्वामी ।

(राम का प्रस्थान)

रावण—अभी तो राम मेरे लिए अर्घ्यपात्र लेकर मेरे पास ही आ रहे थे और अभी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अहो बलमहो वीर्यमहो सत्त्वमहो जवः ।
राम इत्यक्षरैरल्पैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत् ॥ १४ ॥

एष मृग एकप्लुतातिक्रान्तशरविषयो वनगहनं प्रविष्टः ।

सीता—(आत्मगतम्) आर्यपुत्रविरहिताया भयं मेऽत्रोत्पद्यते । [अय्यउत्त-विरहिदाए भअं मे एत्थ उप्पज्जइ ।]

रावणः—(आत्मगतम्)

मायायापहृते रामे सीतामेकां तपोवनात् ।
हरामि रुदतीं बालाममन्त्रोक्तामिवाहुतिम् ॥१५॥

नीत्वा, उपसर्पति=अग्रे सरति, राघवः=श्रीरामः । एषः=असौ, इदानीम्=अधुना, पूजाम्=अर्चाम्, अनवेक्ष्य=उपेक्ष्य, धावन्तम्, मृगम्=स्वर्णमृगम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, धनुः=चापम्, आरोपयति राघवः=श्रीरामः ।

व्याख्या—अहो=इत्याश्चर्ये, बलम्=शारीरिकी शक्तिः, वीर्यम्=आन्तरिकः उत्साहः, सत्त्वम्=धैर्यम्, जवः=वेगेनः धनुषि=बाणसंधाने, राम इत्यल्पैरक्षरैरिदम् जगत् व्याप्तम्=पूर्णम् स्थाने युक्तम् । एतादृशलोकोत्तर-वीर्यातिशालिनोऽस्य रामस्य युक्तम् कीर्त्या जगद् व्यापनमिति ॥ १४ ॥

एषः=असौ, मृगः = स्वर्णमृगः, एकप्लुतातिक्रान्तशरविषयः=एकेन=अद्वितीयेन, प्लुतेन=शीघ्रगतिप्रकारभेदेन, अतिक्रान्तः=लङ्घितः, शरविषयः=प्राणगोचरो येन स तथाभूतः, वनगहनम्=घोरं काननम्, प्रविष्टः=प्रवेशं कृतवान् ।

सीता—(आत्मगतम्=स्वगतम्) आर्यपुत्रविरहितायाः=रामरहितायाः भयम्=त्रासम्, मे=मम, उत्पद्यते=जायते ।

व्याख्या—मायया=मायारचितमृगेण, अपहृते=दूरम् नीते, रामे=रामचन्द्रे, एकाम्=अद्वितीयाम्, सीताम्=जानकीम्, तपोवनात्=आश्रमात्, रुदतीम्=

तुरंत काञ्चन मृग को देखते ही उसके पीछे धनुष चढ़ाकर दौड़ रहे हैं । ओह, कैसा असीम पराक्रम, कैसी अनुपम बहादुरी, कैसा लोकोत्तर पौरुष और कैसी अद्भुत गति है । 'राम' इन थोड़े से अक्षरों में मानो सारा संसार समा गया है ॥ १४ ॥

वह देखो, उस हिरन ने एक ही छलांग में राम के वाण की पहुँच से बाहर होकर सघन झाड़ी में अपने को छुपा लिया ।

सीता—(आत्मगत) आर्यपुत्र के विना तो अकेले मुझे डर लग रहा है ।

रावण—(स्वगत) अपने मायाबल से मैंने राम को हटा दिया । यहाँ अब तो केवल निर्जन वन है । अब मैं इस रोती हुई सीता को मन्त्रोच्चार-रहित आहुति की तरह हर लेता हूँ ॥ १५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—यावदुटजं प्रविशामि। (गन्तुमीहते) [जाव उडजं पविसामि।]
रावणः—(स्वरूपं गृहीत्वा) सीते ! तिष्ठ। तिष्ठ।
सीता—(भयम्) हं क इदानीमयम् ? [हं को दाणि अअं ?]
रावणः—किं न जानीषे ?

युद्धे येन सुराः सदानवगणाः शक्रादयो निर्जिताः
दृष्ट्वा शूर्पणखाविरूपकरणं श्रुत्वा हतौ भ्रातरौ।
दर्पाद् दुर्मतिमप्रमेयबलिनं रामं विलोभ्य च्छलैः
स त्वां हर्तुमना विशालनयने ! प्राप्तोऽस्म्यहं रावणः ॥ १६ ॥

आक्रोशन्तीम् बालाम्=युवतीम्, अमन्त्रोक्ताम्=मन्त्रोच्चारणं विना दत्ताम् आहुतिमिव=हव्यमिव, हरामि=अपनयामि। एतेन रावणस्य रामात् भयं व्यञ्जितम् ॥ १५ ॥

सीता—यावत् उटजं=कुटीरम्, प्रविशामि=प्रवेशं करोमि (गन्तुम्=प्रवेष्टुम्, ईहते=वाञ्छति)।

रावणः—(स्वरूपम्=आकृतिम्, गृहीत्वा=आधाय) सीते=मैथिलि, तिष्ठ तिष्ठ=विरम, मा गच्छ।

सीता—(सभयम्=त्रासम्) हम्=आश्चर्यम्, कः=व्यक्तिविशेषः, अयम्=एषः, इदानीम्=अधुना।

रावणः—किं=कथम्, न=नहि, जानीथे—

अन्वयः—विशालनयने! येन सदानवगणाः शक्रादयः सुराः युद्धे निर्जिताः सः अहम् रावणः शूर्पणखाविरूपकरणं दृष्ट्वा भ्रातरौ हतौ श्रुत्वा दर्पात् दुर्मतिम् अप्रमेयबलिनम् रामं छलैः विलोभ्य त्वाम् हर्त्तुमनाः प्राप्तः अस्मि ॥ १६ ॥

व्याख्या—विशालनयने=आयतलोचने, येन=रावणेन, सदानवगणाः=दैत्यसङ्घसहिताः, शक्रादयः=इन्द्रादयः, सुराः=देवाः, युद्धे=समरे, निर्जिताः=पराजिताः, सः=असौ, अहम् रावणः=रावणाख्यः दैत्याधिपतिः अस्मि,

---

सीता—तब तक मैं कुटिया के भीतर जा बैठूँ। (जाना चाहती है)
रावण—(अपना रूप धरकर) सीते, ठहरो ठहरो।
सीता—अरे, यह तब कौन है ?
रावण—क्या नहीं जानती ?

जिसने संग्राम में देव और दानवों को पराजित किया है, जिसने शूर्पणखा का नासाभंग देखा, जिसने खरदूषण जैसे भाई का वध सुना–वही मैं रावण हूँ। इस समय दर्प से उद्धत दुर्मति राम को अपनी माया से दूर हटाकर तुम्हें हरने आया हूँ ॥ १६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—हं रावणो नाम। (प्रतिष्ठते) [हं लावणो णाम।]

रावणः—आः ! रावणस्य चक्षुर्विषयमागता क्व यास्यसि ?

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व। सौमित्रे ! परित्रायस्व परित्रायस्व माम्। [अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि। सोमित्ती ! परित्ताआहि परित्ताआहि मं।]

रावणः—सीते ! श्रूयतां मत्पराक्रमः।

भग्नः शक्रः, कम्पितो वित्तनाथः, कृष्टः सोमो मर्दितः सूर्यपुत्रः।
धिग् भो स्वर्गं भीतदेवैर्निविष्टं, धन्या भूमिर्वर्तते यत्र सीता ॥१७॥

शूर्पणखाविरूपकरण = शूर्पणखाख्याया रावणस्वसुः कर्णनासाकर्त्तनम् लक्ष्मणकृतम् दृष्ट्वा = अवलोक्य, भ्रातरौ = खरदूषणौ, हतौ = रामेण निधनं लम्भितौ, श्रुत्वा = श्रवणं कृत्वा, दर्पात् = अहङ्कारात्, दुर्मतिम् = दुष्टबुद्धिम्, अप्रमेयबलिनम् = अपरिच्छेद्यप्रशस्तबलयोगिनम्, रामम् = राघवम्, छलैः = कपटैः, विलोभ्य = प्रतार्य, त्वाम् = सीताम्, हर्त्तुमनाः = त्वद्धरणं कर्त्तुमिव, प्राप्तोऽस्मि = इहागतोऽस्मि। शार्दूलविक्रीडितम्॥ १६ ॥

सीता—हं = इत्याश्चर्ये, रावणः = दशमुखो नाम। (प्रतिष्ठते = गन्तुमुद्यतो-बभूव)

रावण—आः रावणस्य = दशमुखस्य, चक्षुर्विषयमागता = सम्मुखे समागते सति, क्व = कुत्र, यास्यसि = गमिष्यसि।

सीता—आर्यपुत्र = भर्तः, परित्रायस्व = रक्ष रक्ष, सौमित्रे = हे लक्ष्मण, परित्रायस्व = रक्ष माम्।

रावणः—सीते = मैथिलि, श्रूयताम् = अवधार्यताम्, मत्पराक्रमः = मदीय-शौर्यम्।

व्याख्या—शक्रः = इन्द्रः, भग्नः = समरे पराजितः। वित्तनाथः = धनपतिकुबेरः,

---

सीता—हैं, रावण ! (चलती है)

रावण—मेरी आँखों के सामने आकर अब तू कहाँ जायेगी ?

सीता—आर्यपुत्र, बचाओ। लक्ष्मण ! रक्षा करो, रक्षा करो।

रावण—सीता, सुनो मेरा पराक्रम।

मैंने इन्द्र को जीता, कुबेर को कँपाया, चन्द्र को खींच लिया, और यमराज को मर्दित किया है। धिक्कार है उस स्वर्ग को जहाँ देवगण मेरे भय से संत्रस्त रहते हैं और धन्य है वह पृथ्वी, जहाँ सीता रहती है ॥ १७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व । सौमित्रे ! परित्रायस्व परित्रायस्व माम् । [अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि । सोमित्ती ! परित्ताआहि परित्ताआहि मं ।]

रावणः—

रामं वा शरणमुपेहि लक्ष्मणं वा, स्वर्गस्थं दशरथमेव वा नरेन्द्रम् ।
किं वा स्यात् कुपुरुषसंश्रितैर्वचोभिर्न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति ॥ १८ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व । सौमित्रे ! परित्रायस्व परित्रायस्व माम् । [अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि । सोमित्ती ! परित्ताआहि परित्ताआहि मं ।]

कम्पितः भयेन चालितः, सोमः=चन्द्रः, कृष्टः=कर्षित', सूर्यपुत्रः=यमः मर्दितः=मानमर्दनेन चूर्णितः, भीतदेवैः=भीरुस्वभावसुरैः, निविष्टम्=अधिष्ठितम्, स्वर्गम्=नाकम्, धिक् । भूमिः=पृथिवी, धन्या=श्लाघ्या, यत्र=यस्मिन् स्थाने सीता=जानकी, वर्त्तते=उपस्थिता अस्ति । अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः, शालिनी-वृत्तम् ॥ १७ ॥

सीता—आर्यपुत्र=भर्तः, परित्रायस्व रक्ष, परित्रायस्व=रक्ष, सौमित्रे=हे लक्ष्मण, माम्=सीताम्, परित्रायस्व=रक्ष ।

व्याख्या—वा=इति विकल्पे, रामम्=राघवम्, अथवा लक्ष्मणम्=सुमित्रा-सुतम् अथवा स्वर्गस्थम्=स्वर्गगतम्, नरेन्द्रम्=नृपतिम्, दशरथम्=रामजनकम् एव शरणम्=शरणागतम् उपेहि=याहि, किं वा स्यात्=किं भवेत्, न किम-पीत्यर्थः । कुपुरुषसंश्रितैः=कापुरुषानुद्दिश्य कथितैर्वचोभिः, किं वा=अथवा किम्भवति, मृगशिशवः=हरिणपोताः, व्याघ्रम्=शार्दूलम्, न=नहि, प्रधर्ष-यन्ति=उत्पीडयन्ति । अत्र दृष्टान्तालङ्कारः । प्रहर्षिणी छन्दः ॥ १८ ॥

सीता—आर्यपुत्र=भर्तः, परित्रायस्व=रक्ष, परित्रायस्व=रक्ष, सौमित्रे=लक्ष्मण, परित्रायस्व=रक्ष माम् ।

सीता—आर्यपुत्र ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो । लक्ष्मण, मुझे बचाओ बचाओ ।

रावण—अरी, राम की शरण जा या लक्ष्मण की अथवा स्वर्गस्थ उनके बाप राजा दशरथ की शरण जा । तुम्हें इन कायरों की पुकारने से भला अब क्या होगा ? भला कहीं हिरण के छौने ने शेर को पछाड़ा है ॥ १८ ॥

सीता—स्वामी, बचाओ बचाओ । देवर लक्ष्मण, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रावणः—

विलपसि किमिदं विशालनेत्रे ! विगणय मां च यथा तवार्यपुत्रम् ।
विपुलबलयुतो ममैव योद्धुं ससुरगणोऽप्यसमर्थ एव रामः ॥ १९ ॥

सीता—(सरोषम्) शप्तोऽसि । [सत्तो सि ।]

रावणः—अहह ! अहो पतिव्रतायास्तेजः ।

योऽहमुत्पतितो वेगान्न दग्धः सूर्यरश्मिभिः ।
अस्याः परिमितैर्दग्धः शप्तोऽसीत्येभिरक्षरैः ॥ २० ॥

रावणः—क्रन्दनस्य वैयर्थ्यम् प्रतिपादयति—विलपसीति ।

व्याख्या—हे विशालनेत्रे=विशालाक्षि, किमिदम् विलपसि=कथं रोदिसि, माम्=रावणम्, तव = सीतायाः, आर्यपुत्रम्=पतिम्, विगणय=विशेषेण मन्यस्व, यथा=इव, एष त्वया त्राणार्थम् प्रार्थ्यमानः विपुलबलयुतः=महता सैन्यसहितः, ससुरगणोऽपि=देवसमूहसहितोऽपि, मम=रावणस्य, योद्धुम्=युद्धम् कर्त्तुम् । अत्र ममेति षष्ठीप्रयोगोऽनुचितः । रामः=राघवः, असमर्थः=अशक्तः, एव=यथा स्यात्तथेति । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ १९ ॥

सीता—(सरोषम्=सक्रोधम्) शप्तोऽसि=शापम् ददामि ।

रावणः—अहह ! अहो=इति सोपहासम् वचनम्, पतिव्रतायाः=सीतायाः तेजः=ओजः—

व्याख्या—वेगात्=जवात्, उत्पतितः=उत्थितः आकाशं गतः, योऽहम्=रावणः, सूर्यस्य=रवेः, रश्मिभिः=किरणैः, न=नहि, दग्धः=ज्वलितः । अस्या=सीतायाः, 'शप्तोऽसि' इति परिमितैः=स्वल्पैः, अक्षरैः=वर्णैः, दग्धः=ज्वलितः स्याम् ॥ २० ॥

रावण—हे विशालनयने ! अब तू बेकार क्यों रो रही है ? राम की जगह तू मुझे अपना पति मान ले, क्योंकि अपरिमित सेना के साथ अब यदि सम्पूर्ण देवगण भी राम की सहायता करें तो भी वह अब युद्ध में मुझ से नहीं जीत सकता है ॥ १० ॥

सीता--(क्रोध से) मैं तुमको शाप देती हूँ ।

रावण—अहा हा–वाह रे पतिव्रता का तेज ।

वेग से आकाश में उड़ते समय जो मैं सूर्य की सन्तप्त किरणों से नहीं जला, वही मैं तुम्हारे इन गिने हुए अक्षरों (शाप देती हूँ) से झुलस गया ॥ २० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व । [अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि ।]

रावणः—(सीतां गृहीत्वा) भोः भोः ! जनस्थानवासिनस्तपस्विनः ! शृण्वन्तु भवन्तः—

बलादेव दशग्रीवः सीतामादाय गच्छति ।
क्षात्रधर्मे यदि स्निग्धः कुर्याद् रामः पराक्रमम् ॥ २९ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व । [अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि ।]

रावणः—(परिक्रामन् विलोक्य) अये ! स्वपक्षपवनोत्क्षेपक्षुभितवनखण्डश्चण्डचञ्चुरभिधावत्येष जटायुः । आः ! तिष्ठेदानीम् ।

सीता—आर्यपुत्र=भर्तः, परित्रायस्व=रक्ष, परित्रायस्व=रक्ष माम् ।

रावणः—भो भोः=हे हे जनस्थानवासिनः=दण्डकारण्यवासिनः, तपस्विनः=ऋषयः, शृण्वन्तु=अवधारयन्तु, भवन्तः=श्रीमन्तः ।

व्याख्या—दशग्रीवः=दशाननः रावणः, बलात्=बलपूर्वकात्, सीताम्=जानकीम् आदाय=गृहीत्वा, गच्छति=याति । यदि=स्यात्, रामः=राघवः, क्षात्रधर्मे=क्षत्रियकर्त्तव्ये, स्निग्धः=अनुरागी तदा पराक्रमम्=शौर्यम्, कुर्यात्=प्रकटयेत् ।

सीता—आर्यपुत्र=भर्तः, परित्रायस्व=रक्ष, परित्रायस्व=रक्ष ।

रावणः—(परिक्रामन्=परावर्त्य, विलोक्य=दृष्ट्वा) अये=आश्चर्यम्, स्वपक्षयोः निजगरुतोः, पवनेन=वातेन, उत्क्षेपः=उपरि क्षेपणम्, तेन क्षुभिताः=संचालिताः, वनखण्डाः=वनसमूहाः येन तादृशः, चण्डचञ्चुः=भीषणत्रोटिः, अभिधावति=मामभियोद्धुं त्वरितमुपसर्पति जटायुः=जटायुनामकः गृध्रः । आः तिष्ठ=विरम, इदानीम्=अधुना ।

सीता—आर्यपुत्र, बचाओ बचाओ ।

रावण—(सीता को पकड़ कर) हे दण्डकारण्यवासी तपस्वियों, आप लोग सुन लें-

सीता को मैं रावण बलपूर्वक हरण कर ले जा रहा हूँ । यदि राम को अपने क्षात्रधर्म के प्रति कुछ भी आस्था है तो पराक्रम प्रकट करें ॥ २१ ॥

सीता—आर्यपुत्र, बचाओ बचाओ ।

रावण—(घूमकर तथा देखकर) अरे, अपने पंखों की तेज हवा से सारे वनवृक्षों को कम्पित कर देनेवाला और भयानक चोंचवाला यह जटायु मेरी ही ओर दौड़ा आता है आः, ठहर तो अभी—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मद्भुजाकृष्टनिर्स्त्रिशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः ।
रुधिरैरार्द्रगात्रं त्वां नयामि यमसादनम् ॥ २२ ॥

(निष्क्रान्तौ)

इति पञ्चमोऽङ्कः ।

अथ षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशतो वृद्धतापसौ)

उभौ— परित्रायन्तां परित्रायन्तां भवन्तः !

इयं हि नीलोत्पलदामवचसा मृणालशुक्लोज्ज्वलदंष्ट्रहासिना ।
निशाचरेन्द्रेण निशार्धचारिणा मृगीव सीता परिभूय नीयते ॥ १ ॥

व्याख्या—मद्भुजाकृष्टनिर्स्त्रिशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः = मत्कराकृष्टखड्गच्छिन्नपक्षव्रणगलितैः, रुधिरैः = रक्तैः, यमसदनम् = यमगृहम्, त्वाम् नयामि = प्रेषयामि । पर्यायोक्त्यलङ्कारः ॥ २२ ॥ (निष्क्रान्तौ = निर्गतौ)

इति पञ्चमोऽङ्कः ।

❀ ❀ ❀

जानकीमपहृत्य गच्छतो दशकन्धरस्य मार्गे जटायुना प्रतिरुध्याभियोधनं, विदितसीताहरणवृत्तान्तस्य भरतस्य रामसहायतार्थराजमण्डलोद्योजनाध्यवसायश्चात्र प्रतिपाद्यते । तत्र शुद्धविष्कम्भके जटायुरावणयोर्युद्धप्रक्षेपको वृद्धतापसौ प्रवेशं कुरुतः—तत इत्यादि ।

उभौ—परित्रायन्ताम् = सीताम् रक्षन्तु, परित्रायन्ताम् = रक्षन्तु, भवन्तः = हे जनस्थानवासिनः।

व्याख्या—नीलोत्पलदामवर्चसा=नीलकमलमालातुल्यतेजसा, मृणालशुक्ला=

मैं अपने हाथों से अपनी तेज धारवाली तलवार निकाल कर तेरे पंखों को काटता हूँ और खून से लथपथ कर ही तुम्हें यमराज के घर भेजता हूँ ॥ २२ ॥

(दोनों का प्रस्थान)

पञ्चम अङ्क समाप्त ।

❀ ❀ ❀

(दो वृद्ध तपस्वियों का प्रवेश)

दोनों—वनवासियों, बचाओ बचाओ ।

पहला—नीले कमल की तरह रंग वाला, हँसते समय मृणाल-पंक्ति की तरह श्वेतदन्त-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वितीयः—एषा खलु तत्रभवती वैदेही,

विचेष्टमानेव भुजङ्गमाङ्गना विधूयमानेव च पुष्पिता लता ।
प्रसह्य पापेन दशाननेन सा तपोवनात् सिद्धिरिवापनीयते ॥ २ ॥

उभौ—परित्रायन्तां परित्रायन्तां भवन्तः !

प्रथमः—(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये वचनसमकाल एव दशरथस्यानृण्यं कर्तु 'मयि स्थिते क्व यास्यसी'ति रावणमाहूयान्तरिक्षमुत्पतितो जटायुः ।

विसतन्तुधवला, उज्जवलां = वर्णान्तरासङ्कीर्णश्वेता दंष्ट्रा यस्मिन् कर्मणि तथा हासिना=स्मयमानेन, विसतन्तुधवलदशनरश्मि स्मितेन प्रकाशयते इत्यर्थः। निशार्द्धचारिणा = रात्रिमध्यपर्यटकेन चौरेणेत्यर्थः, निशाचरेन्द्रेण = रावणेन, इयम् = एषा सीता, मृगी = हरिणी, इव = यथा, परिभूय = क्लेशयित्वा नीयते = अपह्रियते । अत्रोपमालङ्कारः । वंशस्थं वृत्तम् ॥ १ ॥

द्वितीयः—एषा = इयम्, तत्रभवती = श्रीमती, वैदेही = जानकी ।

व्याख्या—विचेष्टमाना = व्याप्रियमाणा भुजङ्गमाङ्गना=सर्पिणी इव = यथा, च = पुनः, विधूयमाना = कम्पमाना, पुष्पिता = पल्लविता, लता = वल्लरी, इव = यथा, सा = वैदेही, सिद्धिः = तपःफलसम्पद् इव = यथा, पापेन = पापकारिणा, दशाननेन = रावणेन, तपोवनात् = दण्डकारण्यात्, प्रसह्य = बलात्; नीयते = अपह्रियते । मालोपमालंकारः । वंशस्थं वृत्तम् ॥ २ ॥

उभौ—परित्रायन्ताम् = रक्षन्तु, परित्रायन्ताम् = रक्षन्तु, भवन्तः = वनवासिनः तपस्विनः।

प्रथमः—(ऊर्ध्वम् = आकाशे, अवलोक्य = दृष्ट्वा) अये = इत्याश्चर्ये, वचनसमकाले = परित्रायन्ताम् इति कथनसमये एव, दशरथस्य = नृपदशरथस्य,

---

पंक्तिवाला, निशाचारी, सिंहपराक्रमी राक्षसपति रावण मृगी की तरह छटपटाती सीता को बलपूर्वक लिए जा रहा है ॥ १ ॥

दूसरा—वह पूजनीया सीता—

छटपटाती हुई नागिन की तरह, प्रकम्पित पुष्पलता की तरह सीता को यह पापी रावण तपोवन से तपोवन की सिद्धि को जैसे लिये जा रहा है ॥ २ ॥

दोनों—वनवासियों ! रक्षा करो, रक्षा करो ।

पहला—(ऊपर देखकर) अरे यह जटायु, मेरे कहते ही महाराज दशरथ का ऋण चुकाने के लिए 'मेरे यहाँ रहते कहाँ जायगा'—यह कहते हुए रावण को ललकार कर आकाश की ओर उड़ गया ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वितीयः—एष रोषादुद्वृत्तनयनः प्रतिनिवृत्तो रावणः ।

प्रथमः—एष रावणः ।

द्वितीयः—एष जटायुः ।

उभौ—हन्तैतदन्तरिक्षे प्रवृत्तं युद्धम् ।

प्रथमः—काश्यप ! काश्यप ! पश्य क्रव्यादीश्वरस्य सामर्थ्यम् ।

पक्षाभ्यां परिभूय वीर्यविषयं द्वन्द्वं प्रतिव्यूहते
तुण्डाभ्यां सुनिघृष्टतीक्ष्णमचलः संवेष्टनं चेष्टते ।
तीक्ष्णैरायसकण्टकैरिव नखैर्भीमान्तरं वक्षसो
वज्राग्रैरिव दार्यमाणविषमाच्छैलाच्छिला पाट्यते ॥ ३ ॥

आनृण्यम्=सख्यनिष्क्रियम्, कर्त्तुम्=विधातुम्, मयि स्थिते=मत्सम्मुखे, क्व=कुत्र, यास्यसि=गमिष्यसि, इति आहूय=आवाहनम् कृत्वा, रावणम्=दशाननम्, अन्तरिक्षम्=आकाशे, उत्पतितः जटायुरिति ।

द्वितीयः—एषः=असौ, रोषात्=क्रोधात्, उद्वृत्तनयनः=मण्डलावर्त्तितचक्षुः, प्रतिनिवृत्तः=परावर्त्तितः रावणः ।

प्रथमः—एषः=असौ, रावणः=दशकन्धरः ।

द्वितीयः—एषः=पुरो वर्त्तमानः, जटायुः=सम्पातेर्भ्राता गृध्रः ।

उभौ—हन्त=इति खेदे, एतत्=इदम्, अन्तरिक्षे=आकाशे, युद्धम्=समरम्, प्रवृत्तम्=आरब्धम् ।

प्रथमः—काश्यप, काश्यप, पश्य=अवलोकय, क्रव्यादीश्वरस्य=जटायोः, सामर्थ्यम्=शक्तिम् ।

अन्वयः—(अयम्)पक्षाभ्याम् परिभूय वीर्यविषयम् द्वन्द्वम् प्रतिव्यूहते, अचल तुण्डाभ्याम् सुनिघृष्टतीक्ष्णम् सवेष्टनं चेष्टते, आयसकण्टकैः इव तीक्ष्णैः नखः वक्षसः भीमान्तरम्, वज्राग्रैः दार्यमाणविषमात् शैलात् शिला इव पाट्यते ॥ ३ ॥

व्याख्या—अयम्=जटायुः, पक्षाभ्याम्=परिभूय=अभिहत्य, वीर्यविषयम्=

दूसरा—यह देखो—क्रोध से आँखे तरेर कर पीछे को ओर लौट गया है ।

पहला—ये रहा रावण ।

दूसरा—यह रहा जटायु ।

दोनों—देखो, देखो, आकाश में दोनों के बीच युद्ध ठन गया ।

पहला—काश्यप काश्यप, पक्षिराज का पराक्रम तो देखो-

पंखो से प्रहार कर अद्भुत पराक्रम से युद्ध कर रहा है । स्थिर होकर चोंच के दोनों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वितीयः—हन्त ! संक्रुद्धेन रावणेनासिना क्रव्यादीश्वरः स दक्षिणांसदेशे हतः।
उभौ—हा धिक् । पतितोऽत्रभवान् जटायुः ।
प्रथमः—भोः कष्टम् । एष खलु तत्रभवान् जटायुः—
कृत्वा स्ववीर्यसदृशं परमं प्रयत्नं क्रीडामयूरमिव शत्रुमचिन्तयित्वा ।
दीप्तं निशाचरपतेरवधूय तेजो नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इवावसन्नः ॥ ४ ॥

स्वपराक्रमलक्ष्यभूतम्, द्वन्द्वम्=योद्धृप्रतियोद्धृद्वयावहम् रावणमित्यर्थः, प्रतिव्यूहते=प्रतियुध्यते, अचलः=धीरो जटायुः, तुण्डाभ्याम्=त्रोटिभ्याम्, सुनिघृष्टतीक्ष्णम्=सुष्ठुनिघर्षणयुक्तम् दुःसहं च यथा भवति तथा, संवेष्टनं=सम्यक् वेष्टनयुक्तम् यथा स्यात्तया चेष्टते=प्रयतते, आयसकण्टकैः=लोहमयैः कण्टकैः, इव=यथा, तीक्ष्णै=निशिताग्रभागैः, नखैः=नखरैः, वक्षसः=उरसः, भीमान्तरम्=भयङ्करम् अन्तःस्थितम् मांसादि, वज्राग्रैः=कुलिशकोटिभिः, दार्यमाणविषमात्=पाटितत्वेनान्तरपदार्थप्रत्यक्षीभावभीषणात्, शैलात्=पर्वतात्, शिला-प्रस्तरखण्डमिव, पाट्यते=पाटयित्वा गृह्यते । अत्रोपमालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३ ॥

द्वितीयः—हन्त=इति खेदे,संक्रुद्धेन=रावणेन, असिना=करवालेन, क्रव्यादीश्वरः=गृद्धराजः, सः=असौ, दक्षिणांसदेशे=वामेतरस्कन्धस्थाने, हतः=आहतः ।

उभौ—हा धिक्=हा हन्त, पातितः=अधः समागतः, अत्रभवान्=श्रीमान् जटायुः ।

प्रथमः—भोः कष्टम्=खेदे, एषः=असौ, खलु=निश्चयेन, तत्र भवान्=श्रीमान् जटायुः ।

अन्वयः—(एष जटायुः) शत्रुम् क्रीडामयूरमिव अचिन्तयित्वा, स्ववीर्यसदृशम् परमम् प्रयत्नम् कृत्वा, निशाचरपतेः दीप्तम् तेजः अवधूय नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इव अवसन्नः ॥ ४ ॥

व्याख्या—एष जटायुः, शत्रुम्=रावणतुल्यं विपक्षम्, क्रीडामयूरमिव=

भागों से तीक्ष्ण चोट कर उसे पकड़ने को चेष्टा कर रहा है । लोहकंटक की तरह मजबूत नखों से रावण की भयंकर छाती को वज्र से पर्वत की चट्टानों को जैसे फाड़ रहा है ॥ ३ ॥
दूसरा—हाय, हाय, रावण ने पक्षिराज के दाहिने कन्धे पर तलवार से वार कर दिया।
दोनों—हा धिक् ! जटायु गिर गया ।
पहला—हाय, हाय, बड़े दुःख की बात है । यह पुण्यात्मा जटायु—
अपने पराक्रम के अनुरूप आखिरी दम तक लड़कर शत्रु को 'मोर खिलौने की तरह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उभौ—स्वर्ग्योऽयमस्तु ।

प्रथमः—काश्यप ! आगम्यताम् । इमं वृत्तान्तं तत्रभवते राघवाय निवेदयिष्यावः ।

द्वितीयः—बाढम् । प्रथमः कल्पः । (निष्क्रान्तौ)

(विष्कम्भः)

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

क्रीडनमिव, अचिन्तयित्वा = अविगणय्य, स्ववीर्यसदृशम् = स्वबलोचितम् परमम् = उत्तमम्, प्रयत्नम् = प्रयासम्, कृत्वा = विधाय, निशाचरपतेः = रावणस्य, दीप्तम् = सुसमिद्धम्, तेजः = पराक्रमम्, अवधूय = तिरस्कृत्य, नागेन्द्रभग्नवनवृक्षः = नगेन्द्रभग्नः अरण्यद्रुमः, इव = यथा, अवसन्नः = नाशमुपगतः । उपमालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४ ॥

उभौ—स्वर्ग्यः = स्वर्गार्हः, अयम् = एषः, अस्तु = भवतु, अर्थात् परोपकारत्यक्तदेहत्वात् पुण्यगत्यर्हः ।

प्रथमः—काश्यप = एतदाख्यः ऋषिः, आगम्यताम् = समागम्यताम्, इमम् = एतत्, वृत्तान्तम् = घटनाक्रमम्, तत्रभवते = श्रीमते, राघवाय = श्रीरामाय, निवेदयिष्यावः ।

द्वितीयः—बाढम् = उचितम्, प्रथमः = मुख्यः, कल्पः = विधिः ।

(निष्क्रान्तौ = बहिर्गतौ)

(विष्कम्भः)

(व्याख्यातपूर्वः)

अथ भरतस्य सीतावृत्तान्तज्ञानं घटयिष्यन् काञ्चुकीयं प्रवेशयति = तत इत्यादि ।

समझते हुए उसके बलवीर्य की परवाह किये बिना उसे दबा कर इस समय बनैले हाथी के द्वारा तोड़ फेंके हुए बिचारे वनवृक्ष की तरह नष्ट हो गया ॥ ४ ॥

दोनों—इसे स्वर्ग मिले ।

पहला—काश्यप आओ, आर्य राम को यह समाचार सुना दें ।

दूसरा—बहुत ठीक कहा, सबसे पहले हमें यही करना चाहिए ।

(दोनों का प्रस्थान)

विष्कम्भक

(कञ्चुकी का प्रवेश)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

काञ्चुकीयः—क इह भोः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—आर्य ! अहं विजया। किं क्रियताम् ? [अय्य ! अहं विजया। किं करीअदु ?]

काञ्चुकीयः—विजये ! निवेद्यतां निवेद्यतां भरतकुमाराय—'एष खलु रामदर्शनार्थं जनस्थानं प्रस्थितः प्रतिनिवृत्तस्तत्रभवान् सुमन्त्र' इति।

प्रतिहारी—आर्य ! अपि कृतार्थस्तातसुमन्त्र आगतः ? [अय्य ! अवि किदत्थो तादसुमन्तो आअदो ?]

काञ्चुकीयः—भवति ! न जाने।

हृदयस्थितशोकाग्निशोषिताननमागतम् ।
दृष्ट्वैवाकुलमासीन्मे सुमन्त्रमधुना मनः ॥ ५ ॥

काञ्चुकीयः—कः=पुरुषविशेषः, इह=अत्र, भोः=अस्ति, काञ्चनतोरणद्वारम्=सौवर्णबहिर्द्वारम्, अशून्यम्=सनाथम्, कुरुते।

प्रतिहारी—आर्य=मान्य, अहम् विजया। किं क्रियताम्=आज्ञापयतु।

काञ्चुकीयः—विजये ! निवेद्यताम्=कथ्यताम्, भरतकुमाराय=कुमारभरताय एषः=अयम्, खलु=निश्चयेन, रामदर्शनार्थम्=जनस्थानम्=तपोवनाश्रमपदम्, प्रस्थितः=गतः, प्रतिनिवृत्तः=परावर्त्तितः, तत्र भवान्=श्रीमान् सुमन्त्र इति=नृपसचिव इति।

प्रतिहारी—आर्य=मान्य, अपि कृतार्थः=कृतकार्यः, लब्धरामदर्शन इत्यर्थः। तातसुमन्त्रः, आगतः=समागतः।

काञ्चुकीयः—भवति=आर्ये, न जाने—

अन्वयः—अधुना हृदयस्थितशोकाग्निशोषिताननम् आगतम् सुमन्त्रम् दृष्ट्वा एव मे मनः आकुलम् आसीत् ॥ ४ ॥

कञ्चुकी—अरे ! यहाँ स्वर्णद्वार पर कौन नियुक्त है ?

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—आर्य ! मैं विजया यहाँ हूँ। क्या आदेश है ?

कञ्चुकी—विजये, राजकुमार भरत को सूचित कर दो कि वन में राम के दर्शनार्थ गये सुमंत्र लौट आये हैं।

प्रतीहारी—आर्य, क्या तात सुमन्त्र अपना काम पूरा करके लौटे हैं ?

कञ्चुकी—आर्य, मुझे क्या पता ?

शोकाग्नि से झुलसे मुखवाले समागत सुमन्त्र जी को देखकर तो मेरा दिल घबड़ा रहा है ॥ ५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतिहारी—आर्य ! एतच्छ्रुत्वा पर्याकुलमिव मे हृदयम् । [अय्य ! इदं सुणिअ पय्याउलं विअ मे हिअअं ।]

काञ्चुकीयः—भवति ! किमिदानीं स्थिता ? शीघ्रं निवेद्यताम् ।

प्रतिहारी—आर्य ! इयं निवेदयामि । (निष्क्रान्ता) [अय्य ! इअं णिवेदेमि ।]

काञ्चुकीयः—(विलोक्य) अये ! अयमत्रभवान् भरतकुमारः सुमन्त्रागमनजनितकुतूहलहृदयश्चीरवल्कलवसनश्चित्रजटापुञ्जपिञ्जरितोत्तमाङ्गः इत एवाभिवर्तते । य एषः—

व्याख्या—अधुना=इदानीम्, हृदये=चित्ते, स्थितेन=वर्त्तमानेन शोकरूपेण अग्निना=वह्निना, शोषितम् आननम् मुखम् यस्य तथा भूतम्, आगतम्=समागतम्, सुमन्त्रं=दशरथसचिवम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य एव अर्थात् दर्शनकालमेव, मे=मम मनः, आकुलम्=व्यग्रम्, आसीत् ।। ५ ।।

प्रतिहारी—आर्य=मान्य, एतत्=पूर्वोक्तम् कथनम्, श्रुत्वा=श्रवणं कृत्वा, पर्याकुलमिव=व्यग्रमिव, मे=मम हृदयम् ।

काञ्चुकीयः—भवति=श्रीमति, किम्=कथम्, इदानीम्=अधुना स्थिता । शीघ्रम्=सत्वरम्, निवेद्यताम्=कथ्यताम् ।

प्रतिहारी—आर्य=मान्य, इयम्=एषा, निवेदयामि=कथयामि । (निष्क्रान्ता =बहिर्गता) ।

काञ्चुकीयः—(विलोक्य=दृष्ट्वा) अये=आश्चर्यम्, अयम्=एषः, अत्र भवान्=श्रीमान्, भरतकुमारः=कुमारो भरतः, सुमन्त्रागमनजनितकुतूहलहृदयः सुमन्त्रस्य आगमनेन जनितम्=उत्पादितम्, कुतूहलम्=उत्कण्ठातिशयो यत्र तत् सुमन्त्रागमनजनितकुतूहलम्, तादृशम् हृदयम्=चित्तम् यस्य सः, चीरवल्कलवसनः चीरवल्कले=वृक्षत्वगुपभेदकल्पिते वसने परिधानोत्तरीये यस्य सः । चित्रजटापुञ्जपिञ्जरितोत्तमाङ्गः नानाप्रकाराणाम् जटानाम् समूहेन पिञ्जरितम् पीतरक्तताम् नीतम् उत्तमाङ्गं शिरो यस्य सः तथाभूतः, इत एव=अस्याम् दिशायामेव, अभिवर्त्तते=समागच्छति च । एष :—

प्रतीहारी—आर्य, यह सुनकर तो मैं भी घबड़ा गयी हूँ ।

कञ्चुकी—अब तुम खड़ी क्यों हो ? जाकर निवेदित करो न ।

प्रतीहारी—ये लीजिये महाराज, अभी निवेदित करती हूँ । (प्रस्थान)

कञ्चुकी—(देखकर) अरे, कुमार भरत तो स्वयं ही सुमन्त्र जी का आगमन सुनकर इधर ही आ रहे हैं । इनके शरीर पर वल्कल और शिर पर भूरी जटाएँ शोभा दे रही हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रख्यातसद्गुणगणः प्रतिपक्षकालस्तिग्मांशुवंशतिलकस्त्रिदशेन्द्रकल्पः ।
आज्ञावशादखिलभूपरिरक्षणस्थः श्रीमानुदारकलभेभसमानयानः ॥ ६ ॥

(ततः प्रविशति भरतः प्रतिहारी च)

भरतः—विजये ! एवमुपगतस्तत्रभवान् सुमन्त्रः ?

गत्वा तु पूर्वमयमार्यनिरीक्षणार्थं, लब्धप्रसादशपथे मयि सन्निवृत्ते ।
दृष्ट्वा किमागत इहात्रभवान् सुमन्त्रो, रामं प्रजानयनबुद्धिमनोभिरामम् ॥ ७ ॥

व्याख्या—प्रख्यातः=जगद्विदितः, सद्गुणानाम्=सुष्ठुगुणानाम् गणः समूहो यस्य तथाभूतः, प्रतिपक्षकालः=शत्रुयमः, तिग्मांशुवंशतिलकः=सूर्यवंशभूषणभूतः त्रिदशेन्द्रकल्पम् = सुराधिपादीषदूनः, आज्ञावशात् = रामस्यादेशानुरोधात्, अखिलभूपरिरक्षणस्थः=सर्वभूमिपालनाधिकारस्थितः, श्रीमान्=प्रशस्तश्रीकः, उदारकलभेभसमानयानः=प्रशस्तत्रिंशद्वर्षकुञ्जरतुल्यगमनः । एष भरतोऽस्तीति बोध्यम् । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ६ ॥

(तत=तत्पश्चात् प्रविशति भरतः प्रतिहारी च)

भरतः—विजये, एवम्=इत्थम्, उपगतः=समागतः, तत्र भवान्=श्रीमान् सुमन्त्रः ?

अन्वयः—लब्धप्रसादशपथे मयि सन्निवृत्ते अयम् अत्रभवान् सुमन्त्रः पूर्वम् आर्यनिरीक्षणार्थम् गत्वा प्रजानयनबुद्धिमनोभिरामम् रामं दृष्ट्वा इह आगतः किम् ? ॥ ७ ॥

व्याख्या—लब्धप्रसादशपथे=लब्धः प्रसादो रामपादुकालक्षणः शपथः, 'चतुर्दशवर्षान्ते राज्यं प्रतिग्रहीष्यामि' इत्येवंलक्षणो येन तस्मिन् तथाभूते । मयि सन्निवृत्ते=रामसकाशादागते, अयमत्रभवान्=पूज्यः, सुमन्त्रः, पूर्वम्=प्रथमवारम्, आर्यस्य=रामस्य, निरीक्षणार्थम् दर्शनार्थम्, गत्वा प्रजानयनबुद्धिमनोभिरामम्=प्रजानाम् नयनयोः बुद्धेर्मनसश्च रमणीयम्, बुद्धिमनसोर्भेदेनोपादानम्

ये भरत अपने सद्गुणों के लिए लोकविख्यात हैं, अपने शत्रुओं के लिए यमतुल्य हैं, सूर्यकुल के तिलक हैं, देवराज इन्द्र के सम हैं, श्रीराम की आज्ञा से पृथ्वी के संरक्षण में संलग्न हैं, मत्त गजराज की चाल से इधर आ रहे हैं ॥ ६ ॥

भरत—विजये, तात सुमन्त्र क्या लौटकर आ गये हैं ?

पादुका लेकर तथा शपथ स्वीकार कराकर मेरे लौटने के बाद आर्य सुमन्त्र प्रथम वार रामदर्शन के लिए वन गये थे । पता नहीं प्रजा की आँखों, बुद्धि एवं भावनाओं में रमे राम के इन्हें दर्शन भी हुए या नहीं ? ॥ ७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

काञ्चुकीयः—(उपगम्य) जयतु ।

भरतः—अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते तत्रभवान् सुमन्त्रः ?

काञ्चुकीयः—असौ काञ्चनतोरणद्वारे ।

भरतः—तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम् ?

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति कुमारः। (निष्क्रान्तौ)

(ततः प्रविशति सुमन्त्रः प्रतिहारी च)

सुमन्त्रः—(सशोकम्) कष्टं भोः ! कष्टम् ।

ग्रहणस्मरणावस्थाभेदविवक्षया कृतम्, तेन प्रथमदर्शनसमये कालान्तरस्मरणे चानन्दकरम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, इह=अत्र, आगतः=समागतः किमिति प्रश्ने ? वसन्ततिलका वृत्तम् ।। ७ ।।

काञ्चुकीयः—(उपगम्य=समीपम् गत्वा) जयतु=सर्वतोभावेन विजयताम्, कुमारः=कुमारो भरतः ।

भरतः—अथ=इति प्रश्ने, कस्मिन् प्रदेशे=कुत्र, वर्त्तते=अस्ति, तत्रभवान्=श्रीमान्, सुमन्त्रः=महाराजसचिवः ।

काञ्चुकीयः—असौ=सः, काञ्चनतोरणद्वारे=स्वर्णतोरणद्वारे स्थितः अस्ति ।

भरतः—तेन हि=तं सुमन्त्रम् शीघ्रम्=सत्वरम्, प्रवेश्यताम् ।

काञ्चुकीयः—यत्=यथा, आज्ञापयति=आदिशति, कुमारः=भरतः । (निष्क्रान्तौ=बहिर्गतौ)

(ततः=तत्पश्चात् प्रविशति सुमन्त्रः प्रतिहारी च)

सुमन्त्रः—(सशोकम्=सखेदम्) कष्टम्=दुःखम्, भोः=कष्टम् ।

कन्चुकी—(पास जाकर) कुमार की जय हो ।

भरत—आर्य सुमन्त्र किधर हैं ?

कन्चुकी—बाहर काञ्चन-द्वार पर ।

भरत—तो उन्हें शीघ्र भीतर बुलायें ।

कन्चुकी—जैसी श्रीमान् की आज्ञा ।

(दोनों का प्रस्थान)

(सुमन्त्र के साथ प्रतिहारी का प्रवेश)

सुमन्त्र—(शोक से) कोढ़ पर खाज ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नरपतिनिधनं मयानुभूतं नृपतिसुतव्यसनं मयैव दृष्टम् ।
श्रुत इह स च मैथिलीप्रणाशो गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ॥ ॥

प्रतिहारी—(सुमन्त्रमुद्दिश्य) एत्वेत्वार्यः । एष भर्ता । उपसर्पत्वार्यः । [एदु एदु अय्यो । एसो भट्टा । उपसप्पदु अय्यो ।]

सुमन्त्रः—(उपसृत्य) जयतु कुमारः ।

भरतः—तात ! अपि दृष्टस्त्वया लोकाविष्कृतपितृस्नेहः । अपि दृष्टं द्विधाभूतमरुन्धतीचारित्रम् । अपि दृष्टं त्वया निष्कारणविहितवनवासं सौभ्रात्रम् ।

व्याख्या—मया=सुमन्त्रेण, नरपतिनिधनम्=दशरथमरणम्, अनुभूतम्=प्रत्यक्षीकृतम्, नृपतिसुतव्यसनम्=रामवनवासजन्यदुःखम्, दृष्टम=अवलोकितम्; इह च=अस्मिन् आयुषि च, मैथिलीप्रणाशः=सीताहरणम्, श्रुतः=ज्ञातः, मे=मम, आयुषा=गुणेन बह्वपराद्धम् आयुषो दीर्घत्वं गुण एव चात्र दोषो जातः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ ८ ॥

प्रतिहारी—(सुमन्त्रम्=राजसचिवम् उद्दिश्य) एतु एतु आर्यः=समागम्यताम् । मान्यः एषः=अत्र भर्त्ता=स्वामी भरतः, उपसर्पतु=अग्रे सरतु, आर्यः=श्रीमान् ।

सुमन्त्रः—(उपसृत्य=समीपमुपगम्य) जयतु=विजयताम्, कुमारः=कुमारभरतः ।

भरतः—तात=मान्य, अपि दृष्टः=अवलोकितः, त्वया=सुमन्त्रेण, लोकाविष्कृतपितृस्नेहः=लोके=संसारे, आविष्कृतः=प्रकटितः पितृभक्तिः अथवा कीर्त्तितपितृभक्तिर्वा अर्थात् रामः । अपि दृष्टम्=अवलोकितम्, द्विधाभूतम्=द्वितीयेन रूपेण सीतालक्ष्मणेन स्थितम्, अरुन्धतीचरित्रम्=तदभिधानायाः=वसिष्ठभार्यायाः प्रसिद्धं पातिव्रत्यम्, अपि दृष्टं त्वया निष्कारणविहितवनवासम्

मैंने राजा की मृत्यु देखी, राम का वनवास भी देखा, सीताहरण भी सुना । मेरी लम्बी आयु ने गुण के बदले अपराध ही अधिक किये ॥ ८ ॥

प्रतिहारी--(सुमन्त्र की ओर उन्मुख होकर) आइए श्रीमान्, ये हैं स्वामी कुमार भरत, इनसे मिल लें ।

सुमन्त्र—(पास आकर) कुमार की जय हो ।

भरत--तात, क्या आपने लोकविख्यात पितृभक्ति की प्रतिमूर्ति श्रीराम के दर्शन किये ? क्या आपने पतिव्रता-प्रधान अरुन्धती का द्वितीय चरित्र देखा ? क्या आपने स्वेच्छा से वनवास स्वीकार करने वाले भ्रातृस्नेह की साक्षात् प्रतिमूर्ति को देखा ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(सुमन्त्रः सचिन्तस्तिष्ठति)

प्रतिहारी—भर्तृदारकः खल्वार्यं पृच्छति । [भट्टिदारओ खु अय्यं पुच्छदि ।]

सुमन्त्रः—भवति ! किं माम् ?

भरतः—(स्वगतम्) अतिमहान् खल्वायासः । सन्तापाद् भ्रष्टहृदयः । (प्रकाशम्) अपि मार्गात् प्रतिनिवृत्तस्तत्रभवान् ?

सुमन्त्रः—कुमार ! त्वन्नियोगाद् रामदर्शनार्थं जनस्थानं प्रस्थितः कथमहमन्तरा प्रतिनिवर्तिष्ये ।

भरतः—किन्नु खलु क्रोधेन वा लज्जया वात्मानं न दर्शयन्ति ?

सौभ्रात्रम्=पित्राज्ञादिकारणं विनैवागतारण्यवासो मूर्त्तिमान् भ्रातृस्नेहः=स चासौ लक्ष्मणः ।

(सुमन्त्रः=सचिवः, सचिन्तः=चिन्तायुक्तः तिष्ठति)

प्रतिहारी—भर्तृदारकः=कुमारो भरतः, खलु=निश्चयेन, आर्यं=भवन्तम् पृच्छति ।

सुमन्त्रः—भवति=श्रीमति, किम् माम्=सुमन्त्रम् पृच्छसि ?

भरतः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) अतिमहान्=अत्यधिकम्, आयासः=खेदः, सन्तापात्=शोकात्, भ्रष्टहृदयः=भ्रष्टं स्थानात् चलितम् चित्तम् यस्य सः । (प्रकाशम्=व्यक्तम्) मार्गात्=पथः प्रतिनिवृत्तः=परावर्त्तितः, तत्र भवान्=श्रीमान् सुमन्त्रः । अर्थात् रामनिवासवनमगत्वैवार्धपथात् प्रत्यायातः ।

सुमन्त्रः—कुमार=हे राजकुमार, त्वन्नियोगात्=तवाज्ञया, रामदर्शनार्थम्=रामस्य दर्शननिमित्तकं, जनस्थानम्=तपोवनम्, प्रस्थितः=चलितः, कथम्=केन प्रकारेणाहम्=सुमन्त्रः, अन्तरा=विनैव, प्रतिनिवर्त्तिष्ये ।

भरतः—सुमन्त्रोक्तेन तद्दशया च भरतो रामादीनाम् दर्शनम् नाभूदस्येति

(सुमन्त्र चिन्ताग्रस्त से दीखते हैं)

प्रतिहारी—कुमार, आपसे ही पूछ रहे हैं ?

सुमन्त्र--मुझ से ?

भरत--(स्वगत) बड़ी तकलीफ है । दुःख के कारण इनकी मनःस्थिति ठीक नहीं है । (प्रकट) क्या आप रास्ते से तो नहीं लौट आये ?

सुमन्त्र--कुमार ! आपकी आज्ञा जब मुझे जनस्थान जाने के लिए मिली थी तो भला मैं बीच से ही कैसे जाता ?

भरत--संभव है क्रोध या लज्जा के कारण अपने को वे दिखाना नहीं चाहते हों ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुमन्त्रः—कुमार !

कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् ।
मया दृष्टं तु तच्छून्यं तैर्विहीनं तपोवनम् ॥ ९ ॥

भरतः—अथ क्व गता इति श्रुताः ।

सुमन्त्रः—अस्ति किल किष्किन्धा नाम वनौकसां निवासः । तत्र गता इति श्रुताः ।

भरतः—हन्त ! अविज्ञातपुरुषविशेषाः खलु वानराः । दुःखिताः प्रतिवसन्ति ।

अनुमायादर्शने कारणं विकल्पयति—किन्तु, क्रोधेन=कोपेन, वा=अथवा लज्जया=ह्रिया वा आत्मानम्=स्वीयम् मुखं न दर्शयन्ति ।

व्याख्या—विनीतानाम्=विनयावनतानाम्, क्रोधः=कोपः, कुतः=कस्मात् कारणात् वा=अथवा, कृतचेतसाम्=कृतम्=सुसंस्कृतम् चेतो येषाम्, लज्जाकृतम् एवं च तद्दर्शनं न क्रोधेन न लज्जया वा जनितम्, किन्तु स्थानपरित्यागेनेत्याह—मया=सुमन्त्रेण, तैर्विहीनम्=विरहितम् अतएव शून्यम्=रिक्तम् इव तपोवनम्=दण्डकारण्यम् दृष्टम्=अवलोकितम् । जनस्थाने ते न निवसन्ति ॥ ९ ॥

भरतः—अथ=इति प्रश्ने, क्व गता इति=ते रामादयः क्व गताः इति भरतस्य जिज्ञासा ।

सुमन्त्रः—अस्ति=वर्त्तते, किलेति वार्त्तायाम्, किष्किन्धा नाम=किं किं नदधातीति निपातसिद्धोऽयं शब्दः, वनौकसाम्=वानराणाम्, निवासः=आवासस्थानम् । तत्र गता इति श्रुताः ।

भरतः—हन्त=खेदे, अविज्ञातपुरुषविशेषाः=अविदितपुरुषतारतम्याः, खलु निश्चयेन, वानराः=कपयः, दुःखिताः=पीडिताः, प्रतिवसन्ति=निवसन्ति ।

सुमन्त्र--कुमार !

विनयी जनों को क्रोध कैसा ? निर्मल अन्तःकरण में लज्जा का प्रवेश कहाँ ? किन्तु जब मैंने तपोवन देखा--उनसे शून्य था ॥ ९ ॥

भरत--अच्छा तो फिर वे कहाँ चले गये, आपको कुछ पता है ?

सुमन्त्र--कुमार, वनवासी वानरों का किष्किन्धा नामक एक स्थान है, सुना है--वहीं गये हैं ।

भरत--बड़े दुःख की बात है । वानरों को पुरुषपरिचय नहीं होता, उन्हें तकलीफ होनी होगी ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुमन्त्रः—कुमार ! तिर्यग्योनयोऽप्युपकृतमवगच्छन्ति ।

भरतः—तात ! कथमिव ?

सुमन्त्रः—सुग्रीवो भ्रंशितो राज्याद् भ्रात्रा ज्येष्ठेन वालिना ।
हृतदारो वसञ्छैले तुल्यदुःखेन मोक्षितः ॥ १० ॥

भरतः—तात ! कथं तुल्यदुःखेन नाम ?

सुमन्त्रः—(स्वगतम्) हन्त ! सर्वमुक्तमेव मया । (प्रकाशम्) कुमार ! न खलु किञ्चित् । ऐश्वर्यभ्रंशतुल्यता ममाभिप्रेता ।

सुमन्त्रः—कुमार = राजकुमार, तिर्यग्योनयः = कीटादिपशवः अपि, उपकृतम् = कृतज्ञाः, अवगच्छन्ति = भवन्ति ।

भरतः—तात = मान्य, कथमिव = केन प्रकारेण ?

व्याख्या—ज्येष्ठेन—ज्येष्ठेन भ्रात्रा = अग्रजन्मना वालिना, राज्यात् भ्रंशितः अपहृतराज्यलक्ष्मीकः, हृतदारः = स्वायत्तीकृतपत्नीकः, शैले = पर्वते, वसन् = निवासं कुर्वन्, सुग्रीवः = एतदाख्यः वानरः, तुल्यदुःखेन = समानकष्टेन, मोक्षितः = मोक्षं प्रापितः । वालिनं हत्वा राजपदे प्रतिष्ठापितः ॥ १० ॥

भरतः—तात = पूज्यवर, कथम् = केन प्रकारेण, तुल्यदुःखेन नाम = दुःखस्य समानतेति प्रश्नाशयः ।

सुमन्त्रः—(आत्मगतम् = स्वगतम्) हन्त = कष्टम्, सर्वम् = सकलम्, उक्तमेव = कथितमेव, मया = सुमन्त्रेण । (प्रकाशम् = प्रकटम्) कुमार ! न खलु किञ्चित् = नान्यत्, ऐश्वर्यभ्रंशतुल्यता = ऐश्वर्यभ्रंशेन या सुग्रीवतुल्यता रामस्य सा, न तु दारतुल्यतेत्यर्थः, मम = सुमन्त्रस्य, अभिप्रेता = विवक्षिता ।

सुमन्त्र--कुमार ! पशुपक्षी भी उपकार मानते हैं ।

भरत--यह कैसे, पूज्यवर ?

सुमन्त्र--सुग्रीव नामक वानर का एक बड़ा भाई था । उसका नाम वाली था । उसने उसका राज्य छीन लिया और उसकी पत्नी को भी अपने साथ रख लिया । समानधर्मा होने के कारण कुमार राम ने उसे क्लेशमुक्त कर दिया है ॥ १० ॥

भरत--तात, आपके समानधर्मा से क्या तात्पर्य है ?

सुमन्त्र--(**स्वगत**) शोक है कि मैंने सारी बातें खोल दीं । (**प्रकट**) कुमार कुछ नहीं, मेरा तात्पर्य है कि दोनों राज्यभ्रष्ट हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः— तात ! किं गूहसे ? स्वर्गं गतेन महाराजपादमूलेन शापितः स्याः, यदि न सत्यं ब्रूयाः ।

सुमन्त्रः—का गतिः । श्रूयतां,

वैरं मुनिजनस्यार्थे रक्षसा महता कृतम् ।
सीता मायामुपाश्रित्य रावणेन ततो हृता ॥ ११ ॥

भरतः—कथं हृतेति ? (मोहमुपगतः)

सुमन्त्रः—समाश्वसिहि, समाश्वसिहि ।

भरतः—(पुनः समाश्वस्य) भोः कष्टम् ।

भरतः—तात=पूज्य, किं गूहसे=छादयसि, स्वर्गम्=देवलोकम् गतेन=प्राप्तेन, महाराजपादमूलेन=मत्पितृचरणेन, शापितः स्याः=सशपथं लम्भितः, यदि सत्यम् न ब्रूयाः ।

सुमन्त्रः—का गतिः=अवस्था । श्रूयताम्=अवधार्यताम्=अर्थात् न काऽपि गतिरिति ।

व्याख्या—मुनिजनस्य=ऋषिजनस्य, अर्थे कृते, महता=बलवता रक्षसा=रावणेन, वैरं=विरोधम्, कृतम्=विहितम्, ततः=तस्मात्, रावणेन=दशकन्धरेण, मायाम्=कपटम् उपाश्रित्य=ग्रहणम् कृत्वा, सीता=जानकी हृता=चोरिता ॥ ११ ॥

भरतः—कथम्=केन प्रकारेण, हृता=चोरिता (मोहम्=चेतनाहीनत्वम्-उपगतः=प्राप्तः)

सुमन्त्रः—समाश्वसिहि=लब्धचैतन्यो भव ।

भरतः—(पुनः समाश्वस्य=आश्वासनं प्राप्य) भोः कष्टम्=दुःखम् ।

भरत--आप मुझसे छिपाते हैं ? आपको स्वर्गवासी महाराज की शपथ है, यदि मिथ्या बताया ।

सुमन्त्र--लाचारी है । सुनिये--

मुनियों की रक्षा के लिए राम ने बलवान् राक्षसों से शत्रुता मोल ली है । इसी से रावण ने कपट वेश बनाकर सीता को अपहृत कर लिया है ॥ ११ ॥

भरत--क्या कहा ? हरली गयी । (अचेत हो जाता है)

सुमन्त्र--कुमार धीरज रखिये, धीरज ।

भरत--(सचेत होकर) आह, दुःख पर दुःख--

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पित्रा च बान्धवजनेन च विप्रयुक्तो दुःखं महत् समनुभूय वनप्रदेशे।
भार्यावियोगमुपलभ्य पुनर्ममार्यो जीमूतचन्द्र इव खे प्रभया वियुक्तः ॥ १२ ॥
भोः! किमिदानीं करिष्ये? भवतु, दृष्टम्! अनुगच्छतु मां तातः!

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति कुमारः।

(उभौ परिक्रामतः)

सुमन्त्रः—कुमार! न खलु न खलु गन्तव्यम्। देवीनां चतुश्शालमिदम्।

भरतः—अत्रैव मे कार्यम्। भोः! क इह प्रतिहारे?

(प्रविश्य)

व्याख्या—मम=भरतस्य, आर्यः=मान्यः रामः, पित्रा=दशरथेन, बान्धवजनेन=पारिवारिकसदस्येन, विप्रयुक्तः=दूरीकृतः, वनप्रदेशे=अरण्यदेशे, महत्=दुस्सहं, दुःखम्=क्लेशम् अनुभूय=प्राप्य, भार्यावियोगम्=पत्नीविरहम् उपलभ्य=आसाद्य, पुनः, खे=आकाशे, जीमूतचन्द्र इव=मेघाच्छन्ननिशाकर इव प्रभया=ज्योत्स्नया, वियुक्तो जातः। अत्रोपमालङ्कारेण मेघावरणे चन्द्रस्य प्रभेव रामस्य पुनः संभवति सीतया संयोगरूपं वस्तु व्यज्यते। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १२ ॥

भोः इति खेदे, किम्=किम् प्रकारकम् कार्यम्, इदानीम्=अधुना करिष्ये, भवतु=जातु, दृष्टम्=वृद्धम्, अनुगच्छतु=अनु पश्चात् गच्छतु=यातु, मां=भरतम्, तातः=पूज्यः।

सुमन्त्रः—यत्=यथा आज्ञापयति=आदिशति कुमारः=कुमारो भरतः।

(उभौ=द्वौ, परिक्रामतः=भ्रमतः)

सुमन्त्रः—कुमार=भरत, न खलु गन्तव्यम्=तत्र न गन्तव्यमिति। देवीनाम्=राजमहिषीणाम्, चतुश्शालम्=गृहप्रकारभेदः।

भरतः—अत्रैव=अस्मिन्नेव स्थाने, मे=मम, कार्यम्=प्रयोजनम्। भोः कः=सेवकः. अत्र=अस्मिन्, प्रतिहारे=द्वारे अस्ति।

मेरे मान्य श्रीराम पिता तथा बन्धु-बान्धवों से बिछुड़े, वन मे उन्होंने दारुण दुःख सहा, उन्हें वहाँ पत्नी का वियोग मिला, अभी वे आकाश में मेघावृत चन्द्रमा की तरह प्रभाहीन हो गये हैं ॥ १२ ॥

हाय, अब क्या किया जाय? अथवा सोच लिया, आप मेरे साथ आयें!

सुमन्त्र--जो आज्ञा। **(दोनों घूम जाते हैं)**

सुमन्त्र--कुमार, उधर मत जाइये, यह देवियों का अन्तःपुर है।

भरत--यहीं तो मुझे काम है। यहाँ दरवाजे पर कौन है?

(प्रतिहारी का प्रवेश)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतिहारी—जयतु भर्तृदारकः। विजया खल्वहम्। [जेदु भट्टिदारओ। विजआ खु अहं।]

भरतः—विजये ! ममागमनं निवेदयात्र भवत्यै।

प्रतिहारी—कतमस्यै भट्टिन्यै निवेदयामि ? [कदमाए भट्टिणीए णिवेदेमि?]

भरतः—या मां राजानमिच्छति।

प्रतिहारी—(आत्मगतम्) हं किन्नु खलु भवेत् ? (प्रकाशम्) भर्तः ! तथा ! [हं किणु खु भवे ? भट्टा ! तह।]

(निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति कैकेयी प्रतिहारी च)

कैकेयी—विजये ! मां प्रेक्षितुं भरत आगतः ? [विजए ! मं पेखिदुं भरदो आअदो ?]

प्रतिहारी—जयतु=विजयताम्, भर्तृदारकः=स्वामी, विजया=एतदाख्या सेविका, अहमत्र नियोजितेति भावः।

भरतः—विजये ! मम=भरतस्य, आगमनम्=उपस्थितिम्, निवदय=कथय, अत्रभवत्यै=श्रीमत्यै।

प्रतिहारी—भरतस्याशयं ज्ञातुमशक्नुवन्ती विशेपं पृच्छति—कतमस्यै भट्टिन्यै निवेदयामि=कथयामीति।

भरतः—साभिप्रायमुत्तरमाह भरतः–या माम्=भरतम्, राजानम्=राजपदम्, इच्छति=कामयते।

प्रतिहारी—(आत्मगतम्=स्वगतम्) हमिति प्रश्ने, किन्नु खलु भवेत्=का वार्त्ता भवेदिति। (प्रकाशम्) भर्तः=स्वामिन्, तथा (निष्क्रान्ता=निर्गता)।

(ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति=प्रवेशं करोति प्रतिहारी कैकेयी च)

कैकेयी—विजये, माम्=कैकेयीम् प्रेक्षितुम्=द्रष्टुम्, भरतः=कुमारः;

प्रतिहारी—कुमार की जय हो, यहाँ मैं विजया हूँ।

भरत—विजया, आर्या को मेरे आने की खबर करो।

प्रतिहारी—किस महारानी को आपके आगमन की सूचना दूँ कुमार !

भरत—जो मुझे राजा देखना चाहती हैं।

प्रतिहारी—(स्वगत) पता नहीं क्या बात है ? (प्रकट) आपकी जैसी आज्ञा

(जाती है)

(कैकेयी तथा प्रतिहारी का प्रवेश)

कैकेयी—क्या भरत मुझसे मिलने आये हैं ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतिहारी—भट्टिनि ! तथा भर्तृदारकस्य रामस्य सकाशात् तातसुमन्त्र आगतः । तेन सह भर्तृदारको भरतो भट्टिनी प्रेक्षितुमिच्छति किल । [भट्टिणि ! तह । भट्टिदारअस्स रामस्स सआसादो तादसुमन्तो आअदो । तेन सह भट्टिदारओ भरदो भट्टिणिं पेक्खिदुं इच्छति किल !]

कैकेयी—(स्वगतम्) केन खलूद्घातेन मामुपालप्स्यते भरतः ? [केण खु उग्घादेण मं उवालम्भिस्सदि भरदो ?]

प्रतिहारी—भट्टिनि ! किं प्रविशतु भर्तृदारकः ! [भट्टिणि ! किं पविसदु भट्टिदारओ ?]

कैकेयी—गच्छ । प्रवेशयैनम् । [गच्छ । पवेसेहि णं ।]

प्रतिहारी—भट्टिनि ! तथा (परिक्रम्योपसृत्य) । जयतु भर्तृदारकः । प्रविशतु किल । [भट्टिणि ! तह जेदु भट्टिदारओ । पविसदु किल ।]

आगतः = समागत इति ।

प्रतिहारी—भट्टिनि = स्वामिनि, तथा = अस्त्येवम् । भर्तृदारकस्य सकाशात् = समीपात् तातसुमन्त्रः = मान्यः सचिवः आगतः । तेन सह = सचिवेन सह भर्तृदारको भरतः, भट्टिनीम् श्रीमतीम्, प्रेक्षितुम् = द्रष्टुम्, इच्छति = वाञ्छति ।

कैकेयी—(स्वगतम् = आत्मगतम्) केन खलु, उद्घातेन = प्रस्तावेन, माम् = कैकेयीम्, उपालप्स्यते = धिक्करिष्यति भरत इति ।

प्रतिहारी—भट्टिनि, किमिति प्रश्ने । प्रविशतु = प्रवेशङ्करोतु, भर्तृदारकः = कुमारो भरतः ।

कैकेयी—गच्छ = गम्यताम् । प्रवेशय एनम् = भरतम् ।

प्रतिहारी—भट्टिनि = स्वामिनि, तथा = यथाऽऽदिशतु तथैव । (परिक्रम्य = प्रक्रम्य, उपसृत्य = समीपम् गत्वा) जयतु = विजयताम् भर्तृदारकः = स्वामी, प्रविशतु = प्रवेशम् करोतु । इति ।

प्रतिहारी—जी हां, कुमार राम के यहाँ से सुमन्त्र जी लौट कर आये हैं । उनके साथ कुमार भरत आप से मिलना चाहते हैं ।

कैकेयी—(**स्वगत**) पता नहीं, किस उपक्रम में भरत मुझे उलाहना दें ?

प्रतिहारी—महारानी, क्या कुमार आ सकते हैं ?

कैकेयी—जाओ, उन्हें भीतर बुला लाओ ।

प्रतिहारी—जैसी आज्ञा । (**कुछ कदम चलकर फिर पास आकर**) जय हो कुमार भरत की, कुमार भीतर चलें ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः— विजये ! किं निवेदितम् ?

प्रतिहारी— आम् ।

भरतः—तेन हि प्रविशावः । (प्रविशतः) ।

कैकेयी—जात ! विजया मन्त्रयते— रामस्य सकाशात् सुमन्त्र आगत इति । [जाद ! विअआ मन्तेदि —रामस्य सआसादो सुमन्तो आअद त्ति ।]

भरतः—अतः परं प्रियं निवेदयाम्यत्रभवत्यै ।

कैकेयी—जात ! अपि कौशल्या सुमित्रा च शब्दयितव्ये । [जाद ! अपि कोसल्ला सुमित्ता अ सद्दावइदव्वा ।]

भरतः—न खलु ताभ्यां श्रोतव्यम् ।

भरतः—विजये, किम् निवेदितम्=निवेदनम् कृतवती ।

प्रतीहारी—आमिति स्वीकारे ।

भरतः—तेन=तेन कारणेन, हीति निश्चये, प्रविशावः=प्रवेशम् कुर्वः ।

कैकेयी—जात=पुत्र, विजया मन्त्रयते=भाषते, रामस्य सकाशात्=समीपात् सुमन्त्र आगतः=समागत इति ।

भरतः—अतः परम्=इतोधिकम्, प्रियम् निवेदयामि=कथयामि, अत्रभवत्यै=श्रीमत्यै ।

कैकेयी—जात=हे पुत्र, अपि कौशल्या सुमित्रा च शब्दयितव्ये=आकारयितव्ये । रामसकाशादागतजनातीतवृन्तान्तस्य तथापि श्रोतुमिष्यमाणत्वान्मातृभावेनौचित्याच्च ।

भरतः—न=नहि, खलु=निश्चयेन, साम्यात्=कौशल्यासुमित्राभ्याम्, श्रोतव्यम्=श्रवणीयमिति । भवत्याः एव रामनिष्कासनपुण्योपचयशालितया तत्र रामदुःखगाथाश्रवणेऽधिकारो न तयोरिति भरतस्य सोपालम्भं तात्पर्यम् ।

भरत—विजये, तुमने उन्हें सूचना दे दी ।

प्रतिहारी—जी हाँ ।

भरत—तो भीतर चलें ।

(दोनों का भीतर प्रवेश)

कैकेयी—वत्स विजया कहती है–'राम के यहाँ से सुमन्त्र जी आये हैं ।'

भरत—इससे भी अधिक प्रिय बात आपको सुनाता हूँ ।

कैकेयी—तो कौशल्या और सुमित्रा को भी बुला लिया जाय ?

भरत—नहीं नहीं, उनके सुनने की बात नहीं है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कैकेयी—(आत्मगतम्) हं किन्नु खलु भवेद् ? (प्रकाशम्) भण जात ! [हं किं णु हु भवे ? भणाहि जादे !]

भरतः—श्रूयतां,

य: स्वराज्यं परित्यज्य त्वन्नियोगाद् वनं गतः ।
तस्य भार्या हृता सीता पर्याप्तस्ते मनोरथः ॥ १३ ॥

कैकेयी:—हं ।

भरतः—हन्त भोः ! सत्त्वयुक्तानामिक्ष्वाकूणां मनस्विनाम् ।
वधूप्रधर्षणं प्राप्तं प्राप्यात्रभवतीं वधूम् ॥ १४ ॥

कैकेयी—(आत्मगतम) भवतु, इदानीं कालः कथयितुम् । (प्रकाशम्) जात ! त्वं जानासि महाराजस्य शापम् । [भोदु दाणि कालो कहेउं । जाद ! तुवं ण जाणासि महाराअस्स सावं ।]

कैकेयी—(आत्मगतम् = स्वगतम्) कैकयी भरतस्याशयमबुध्यमाना तर्कयन्त्याह हम्—किन्नु—(प्रकाशम्) भण = कथय, जात = पुत्र ।

भरतः—श्रूयताम् = अवधार्यताम् ।

व्याख्या—यः = रामः, त्वन्नियोगात् = तव वचनात्, स्वराज्यम् = निजसाम्राज्यम्, परित्यज्य त्यक्त्वा, वनम् = अरण्यम् गतः, तस्य = रामस्य, भार्या = पत्नी, हृता = अपहृता, ते = तव, मनोरथः = अभिलाषः, पर्याप्तः = पूरितः ॥ १३ ॥

कैकेयी—हम् = सीताहरणवृत्तान्तं श्रुत्वा कैकेयी केवलम् हमिति वदति । हमिति खेदप्रकाशकमव्ययपदमिति ।

व्याख्या—हन्त = इति खेदे, अत्र भवतीम् = पूजनीयाम्, वधूम् = पुत्रवधूम्, प्राप्य = लब्ध्वा, सत्त्वयुक्तानाम् पराक्रमशालिनाम्, मनस्विनाम् = मानवताम्, इक्ष्वाकूणाम् = तदाख्यवंशोद्भवानाम्, वधूप्रधर्षणम् = नारीहरणम्, प्राप्तम् = उपनतम् ।

कैकेयी—(आत्मगतम् = स्वगतम्) भवतु, इदानीम् = अधुना, कालः =

कैकेयी—(**स्वगत**) हाय, ऐसी कौन सी बात होगी । (**प्रकट**) बेटा कहो ।

भरत—सुनिये—जो राम तुम्हारी आज्ञा से अपना राज छोड़कर जङ्गल गया, उसकी पत्नी सीता हरी गयी, अब तो तुम्हारा मनोरथ पूरा हुआ ॥ १३ ॥

कैकेयी—अच्छा ।

भरत—हा शोक, तुम्हारी तरह बहू को पाकर महापराक्रमी एवं मनस्वी इक्ष्वाकुवंश को वधूहरण के दिन भी देखने पड़े ॥ १४ ॥

ककेयी—(**मन ही मन**) अच्छा, अब रहस्य कह देने का अवसर आ गया ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—किं शप्तो महाराजः ?

कैकेयी—सुमन्त्र ! आचक्ष्व विस्तरेण । [सुमन्त ! आअक्ख वित्थरेण ।]

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति भवती । कुमार ! श्रूयताम्—पुरा मृगयां गतेन महाराजेन कस्मिंश्चित् सरसि कलशं पूरयमाणो वनगजबृंहितानुकारिशब्दसमुत्पन्न-वनगजशङ्कया शब्दवेधिना शरेण विपन्नचक्षुषो महर्षेश्चक्षुर्भूतो मुनितनयो हिंसितः ।

भरतः—हिंसित इति । शान्तं शान्तं पापम् । ततस्ततः ?

सुमन्त्रः—ततस्तमेवंगतं दृष्ट्वा—

समयः, कथयितुम्=वक्तुम् । (प्रकाशम्=प्रकटम्) जात=पुत्र, त्वम् न जानासि महाराजस्य=नृपदशरथस्य, शापम्=अभिशापम् ।

भरतः—किमिति प्रश्ने, शप्तः=शापग्रस्तः, महाराजः=नृपदशरथः ।

कैकेयी—सुमन्त्र=सचिव, आचक्ष्व=कथय, विस्तरेण=विस्तारपूर्वकेण ।

सुमन्त्रः—यत्=यथा, आज्ञापयति=आदिशति, भवती=श्रीमती । कुमार, श्रूयताम्, पुरा=पूर्वकाले, मृगयाम्=आखेटकम् गतेन महाराजेन=नृपदशरथेन, कस्मिंश्चित्, सरसि=सरोवरे, कलशम्=घटम् पूरयमाणः, वनगजबृंहितं=आरण्यकरिगर्जितम्, तदनुकरोतीति तथा भूतेन शब्देन हेतुना उत्पन्ना वनगज-विषयिणी शङ्का तया हेतुना शब्दवेधिना=शब्दानुसारलक्ष्यवेधिना, शरेण=बाणेन, विपन्नचक्षुषः=अन्धस्य, महर्षेः=ऋषेः, चक्षुर्भूतः=नेत्रस्थानीयः, मुनितनयः मुनिसुतः, हिंसितः=हतः ।

भरतः—हिंसितः इति=हत इति । शान्तम् पापम् । ततस्ततः=तत्पश्चात् ।

सुमन्त्रः—ततः = तत्पश्चात् अर्थात् मुनितनयमरणानन्तरम् तम्=मुनि-

---

(प्रकट) बेटा, तुम महाराज के शाप की बात नहीं जानते हो।

भरत—क्या कहा ? महाराज शापग्रस्त थे ?

कैकेयी—सुमन्त्र जी, इन्हें पूरी बात सविस्तर बता दें ।

सुमन्त्र—आप की जैसी आज्ञा । सुनिए कुमार, बहुत बरस पहले की बात है । एक बार महाराज शिकार खेलने गये । दुर्भाग्य से उसी समय एक अन्ध तपस्वी दम्पति का एक मात्र जीवनाधार पुत्र किसी तालाब में पानी का घड़ा भर रहा था । घड़ा भरने की गड़गड़ाहट से जङ्गली हाथी के भ्रम से महाराज ने शब्दवेधी बाण चला दिया । उस बाण से उस मुनिपुत्र की मृत्यु हो गयी ।

भरत—क्या कहा, मारा गया ? बड़ा अनर्थ हुआ ? आगे

सुमन्त्र—तब उसकी ऐसी दशा देखकर—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तेनोक्तं रुदितस्यान्ते मुनिना सत्यभाषिणा।
यथाहं भोस्त्वमप्येवं पुत्रशोकाद् विपत्स्यसे ॥ १५ ॥ इति।

भरतः—नन्विदं कष्टं नाम !

कैकेयी—जात ! एतान्निमित्तमपराधे मां निक्षिप्य पुत्रको रामो वनं प्रेषितः, न खलु राज्यलोभेन। अपरिहरणीयो महर्षिशापः पुत्रविप्रवासं विना न भवति। [जाद ! एतण्णिमित्तं अवराहे मां णिक्खिविअ पुत्तओ रामो बणं पेसिदो, ण हु रज्जलोहेण। अपरिहरणीओ महरिसिसाओ पुत्तविप्पवासं विणा ण होइ]

भरतः—अथ तुल्ये पुत्रविप्रवासे कथमहमरण्यं न प्रेषितः ?

तनयम् एवम्=एवम्भूतामवस्थाम्, मृतावस्थाम्, गतम्=प्राप्तम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य।

व्याख्या—सत्यभाषिणा=अवितथवचनेन, तेन=मुनिना, रुदितस्य=रोदनस्य अन्ते=अन्तिमकाले, यथाऽहम्=येन प्रकारेणाहम्, पुत्रशोकात्=तनयवियोगात् विपद्ये, एवम्=अनेन प्रकारेण, त्वमपि=भवानपि. विपत्स्यसे=मरिष्यसि इत्यमेवमुक्तम्=अभिशप्तम् ॥ १५ ॥

भरतः—ननु=निश्चयेन, इदम्=एतत्, कष्टम्=दुःखम् नाम।

कैकेयी—जात=पुत्र, एतन्निमित्तम्=मुनिशापश्चरितार्थः स्यादित्येवमर्थम्, अपराधे, माम्=आत्मानम् निक्षिप्य=विनिक्षिप्य, पुत्रकः=सुतः रामः वनम्=अरण्यम्, प्रेषितः, न खलु राज्यलोभेन=रामवनप्रेषणे मुनिशापसार्थक्यकरणमेव मरणम्, न तु राज्यलोभ इति भावः। अपरिहरणीयः=अवश्यम्भावी महर्षिशापः=मुनिशापः, पुत्रविप्रवासम् विना=पुत्रवियोगं विना न भवतीति।

भरतः—अथेति प्रश्ने, तुल्ये=समाने, पुत्रविप्रवासे=सुतवियोगे, कथमहम्=भरतः, अरण्यम्, वनम् न प्रेषितः ?

सत्यवादी उस मुनि ने रोते हुए कहा – जैसे बेटे के वियोग से मेरी मृत्यु हो रही है, इसी तरह पुत्रशोक से तुम भी तड़प तड़प कर मरोगे ॥ १५ ॥

भरत—यह कष्टकर कथा है।

कैकेयी—बेटा, इसीलिए मैंने अपने को अपराधिनी बनाकर पुत्र राम को जङ्गल भेजा, राज्यलोभ से नहीं। अवश्यम्भावी ऋषिशाप पुत्रवियोग के बिना चरितार्थ कैसे होता ?

भरत—मुझे भी वन भेजने से तो पुत्रवियोग हो ही सकता था, तो तुमने मुझे ही क्यों नहीं भेजा ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कैकेयी—जात ! मातुलकुले वर्तमानस्य प्रकृतीभूतस्ते विप्रवासः । [जाद ! मादुलकुले वत्तमाणस्स पइदीहूदो दे विप्पवासो ।]

भरतः—अथ चतुर्दश वर्षाणि किं कारणमवेक्षितानि

कैकेयी—जात ! चतुर्दश दिवसा इति वक्तुकामया पर्याकुलहृदयया चतुर्दश वर्षाणीत्युक्तम् । [जाद ! चउद्दस दिअस त्ति वतुकामाए पय्याउलहिअआए चउद्दस वरिसाणि त्ति उत्तं ।]

भरतः—अस्ति पाण्डित्यं सम्यग् विचारयितुम् । अथ विदितमेतद् गुरुजनस्य ?

सुमन्त्रः—कुमार ! वसिष्ठवामदेवप्रभृतीनामनुमतं विदितं च ।

भरतः—हन्त त्रैलोक्यसाक्षिणः खल्वेते । दिष्ट्यानपराद्धात्रभवती । अम्ब !

कैकेयी—जात = पुत्र, मातुलकुले = मातृके, वर्त्तमानस्य = उपस्थितस्य, प्रकृतिभूतः = स्वाभाविकः सञ्जातः, ते = तव विप्रवासः = वियोग इति ।

भरतः—अथ = इति प्रश्ने, चतुर्दशवर्षाणि किं कारणम् = किं निमित्तम् अवेक्षितानि = प्रार्थितानि ।

कैकेयी—जात = पुत्र, 'चतुर्दशदिवसा' इति = एवं वक्तृकामया = वदितुमिच्छया, पर्याकुलहृदयया = भाविपुत्रवियोगोद्भ्रान्तचित्तया, चतुर्दशवर्षाणि इत्युक्तम् = इति कथितम् ।

भरतः—अस्ति = विद्यते, पाण्डित्यम् = चातुर्यम् सम्यग् विचारयितुम् = विचार कर्त्तुम् । अथ विदितम् = ज्ञातम्, एतत गुरुजनस्य = श्रेष्ठजनस्य ।

सुमन्त्रः—कुमार = हे भरत, वशिष्ठवामदेवप्रभृतीनाम्, अनुमतम् = सम्मतम् च = पुनः, विदितम् = ज्ञातम् ।

भरतः—हन्त इति खेदे; त्रैलोक्यसाक्षिणः = त्रिलोकदर्शिनः, खलु =

कैकेयी—बेटा, तुम तो ननिहाल में थे न, फिर तुम्हारे वहाँ रहने के कारण तुम्हारा बियोग उनको सह्य हो गया था ।

भरत—माना, फिर वनवास की अवधि चौदह साल की निश्चित क्यों की गई ?

कैकेयी—मैं तो मात्र चौदह दिन ही कहना चाहती थी, किन्तु मानसिक असंतुलन के कारण चौदह साल कहा गया ।

भरत—इसी को कहते हैं बात मिला देने की चातुरी । क्या बातों का पता गुरुजनों को नहीं था ?

सुमन्त्र—कुमार, वशिष्ठ-वामदेव प्रभृति को ये सारी बातें ज्ञात थीं !

भरत—धन्यभाग, ये त्रैलोक्य-साक्षी हैं । भाग्यवश मेरी माँ निर्दोष है । माँ, मैंने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यद् भ्रातृस्नेहाद् समुत्पन्नमन्युना मया दूषितात्रभवती, तद् सर्वं मर्षयितव्यम् अम्ब ! अभिवादये ।

कैकेयी—जात ! का नाम माता पुत्रस्यापराधं न मर्षयति ? उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । कोऽत्र दोषः । [जात ! का णाम माता पुत्तअस्स अवराहं ण मरिसेदि ? उट्ठेहि उट्ठेहि । को एत्थ दोसो ।]

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आपृच्छाम्यत्रभवतीम् । अद्यैवाहमार्यस्य साहाय्यार्थं कृत्स्नं राजमण्डलमुद्योजयामि । अहमिदानीम्—

वेलामिमां मत्तगजान्धकारां करोमि सैन्यौघनिवेशनद्धाम् ।
बलैस्तरद्भिश्च नयामि तुल्यं ग्लानिं समुद्रं सह रावणेन ॥ १६ ॥

निश्चयेन, एते =वामदेवादयः । दिष्ट्या=भाग्येन, अनपराद्धा=निरपराधा, अत्र भवती=श्रीमती । अम्ब=जननि, यद् भ्रातृस्नेहाद् = अग्रजस्नेहाद्; समुत्पन्नमन्युना=क्रोधेन, मया=भरतेन, दूषिता=दोषेण योजिता, अत्रभवती श्रीमती, तद् सर्वम्=सकलम्, मर्षयितव्यम्=क्षन्तव्यम् । अम्ब=जननि, अभिवादये=नमस्करोमीति ।

कैकेयी—जात=पुत्र, का नाम माता=जननी, पुत्रकस्य=सुतस्य, अपराधम्=दोषम् न=नहि मर्षयति । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । कोऽत्र दोषः, न किमपीत्यर्थः ।

भरतः—अनुगृहीतः=कृपान्वितः, अस्मि=भवामि, आपृच्छामि=आमन्त्रये, अत्र भवतीम्=श्रीमतीम् । अद्यैव अस्मिन्नेवकाले, अहम्=भरतः, आर्यस्य श्रीरामस्य=रावणजिगीषोः, साहाय्यार्थम्=सहायतार्थम्, कृत्स्नम्=सम्पूर्णम्, राजमण्डलम्, उद्योजयामि=प्रोत्साहयिष्ये । अयम्=एषः, इदानीम्=अधुना—

व्याख्या—इमाम्=बुद्धिस्थाम्, वेलाम्=समुद्रकूलम्, मत्तगजान्धकाराम्=प्रमत्तगजरूपान्धकारवतीम्, सैन्यौघनिवेशनद्धाम् सेनाशिविरव्याप्तां, करोमि=

भ्रातृस्नेह से क्रुद्ध होकर जो कुछ भी तुम्हारा अपमान किया है, उसके लिए लज्जित हूँ । क्षमा करो माँ, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ ।

कैकेयी—बेटा, भला ऐसी कौन सी माता होगी, जो अपने पुत्रके अपराध को क्षमा न कर दे और तुमने अपराध किया ही क्या ? उठो ।

भरत—अनुगृहीत हुआ माँ, अब मुझे जाने की आज्ञा दो । आर्य राम की सहायता के लिए अभी ही मुझे सम्पूर्ण राज्यमण्डल को सन्नद्ध करना है । अभी ही मैं—

इस सागर को अपने मतवाले हाथियों से अन्धकाराच्छन्न कर दूँगा । तथा साहसी अपनी तैरती हुई सेना से रावण के साथ ही इस सागर को भी म्लान कर दूँगा ॥ १६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अये शब्द इव। तूर्णं ज्ञायतां शब्दः।

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—जयतु कुमारः। इमं वृत्तान्तं श्रुत्वा ज्येष्ठभट्टिनी मोहं गता। [जेदु कुमारो इमं वुत्तन्तं सुणिअ जेट्टभट्टिणी मोहं गआ।]

कैकेयी—हम्।

भरतः—कथं मोहमुपगताम्बा ?

कैकेयी—एहि ! जात ! आर्यामाश्वासयिष्यावः [एहि ! जाद ! अय्यां अस्सासइस्सामो।]

विदधामि। तरद्भिः=लङ्घयद्भिः, बलैः=सैन्यैश्च, रावणेन सह=राक्षसेन्द्रेण सह, समुद्रम्=सागरम्, तुल्यम्=समकालम्, ग्लानिम्=हर्षक्षयभाजम्, नयामि=करोमीत्यर्थः। उपजातिर्वृत्तम्। सहोक्तिरलङ्कारः॥ १६॥

अये इत्याश्चर्यम्, शब्द इव=कोलाहल इव, श्रूयते। तूर्णम्=शीघ्रम्, ज्ञायताम्=बुध्यताम्।

(प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा)

प्रतिहारी—जयतु=विजयताम्, कुमारः=कुमारो भरतः। इमम् वृत्तान्तम्=एतां कथां, श्रुत्वा=अवधार्य, ज्येष्ठभट्टिनी=कौसल्या, मोहम्=अचैतन्यम्, गता=प्राप्ता।

कैकेयी—हम् इत्याश्चर्ये दुःखे वा।

भरतः—कथम्=केन प्रकारेण, मोहम्=अचैतन्यम्, उपगता=प्राप्ता, अम्बा=जननी ?

कैकेयी—एहि=समागच्छ, जात=पुत्रक, आर्याम्=कौसल्याम्; आश्वासयिष्यावः।

अरे, कुछ कोलाहल-सा लग रहा है। शीघ्र पता करो, क्या बात है ?

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी—राजकुमार की जय हो। इस दुःखद समाचार को सुनते ही बड़ी रानी बेहोश हो गई।

कैकेयी—हाय,

भरत—क्या कहा ? माताजी बेहोश हो गई।

कैकेयी—आओ बेटे, आर्या को धीरज बँधायें।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरतः—यदाज्ञापयत्यम्बा । (निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति षष्ठोऽङ्कः ।

❀ ❀ ❀

अथ सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति तापसः)

तापसः—नन्दिलक ! नन्दिलक !

(प्रविश्य)

नन्दिलकः—आर्य अयमस्मि । [अय्य अअं ह्मि ।]

भरतः—यत्=यथा, आज्ञापयति=आदिशति, अम्बा=जननी ।

(निष्क्रान्ताः=बहिर्गताः, सर्वे=सकलाः ।)

इति षष्ठोऽङ्कः ।

अथ सप्तमोऽङ्कः । रावणं निहत्य रामस्य सपरिवारस्य सीतया सह तपोवनं प्रति गमनं ,तत्रैव सपरिवारस्य भरतस्यापि समागमः, रामस्याभिषेकः, ततः सर्वैः सह रामस्यायोध्याम् प्रति प्रस्थानं चेह निबद्धम् । तत्रादौ रामस्य तपोवनागमनं मिश्रविष्कम्भकेन सूचयन् तदर्थं तापसस्य प्रवेशमाह—तत इत्यादि ।

तापसः—नन्दिलक ! सम्बोधनपदमिदम् ।

नन्दिलकः—आर्य=मान्यवर, अयमस्मि=अत्राहमस्मि ।

भरत—आपकी जो आज्ञा ।

(सबों का प्रस्थान)

छठा अङ्क समाप्त ।

❀ ❀ ❀

(तपस्वी का प्रवेश)

तपस्वी—नन्दिलक ! नन्दिलक !

(नन्दिलक का प्रवेश)

नन्दिलक—आर्य यह हूँ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तापसः—नन्दिलक ! कुलपतिर्विज्ञापयति—एष खलु स्वदारापहारिणं त्रैलोक्य विद्रावणं रावणं नाशयित्वा राक्षसगणविरुद्धवृत्तं गुणगणविभूषणं विभीषणमभिषिच्य देवदेवर्षिसिद्धविमलचारित्रां तत्रभवतीं सीतामादाय ऋक्षराक्षसवानरमुख्यैः परिवृतः सम्प्राप्तस्तत्रभवान् शरद्विमलगगनचन्द्राभिरामो रामः । तदद्यास्मिन्नाश्रमपदेऽस्मद्विभवेन यत् सङ्कल्पयितव्यम्, तत् सर्वं सज्जीक्रियतामिति ।

नन्दिलकः—आर्य ! सर्वं सज्जीकृतम् । किन्तु, [अय्य ! सव्वं सज्जीकिदं । किन्तु,]

तापसः—किमेतत् ?

तापसः—नन्दिलक! कुलपतिः=तपोवनाधिष्ठाता मुनिश्रेष्ठः, विज्ञापयति=विशेषेण बोधयतीत्यर्थः । एषः=असौ, खलु=निश्चयेन, स्वदाराहारिणम्=निजपत्न्याः अपहर्त्तारम्, त्रैलोक्यविद्रावणम्=त्रयो लोकास्त्रैलोक्यम् तद् विद्रावयति भयान्वितं करोतीति तथाभूतम्, रावणम्=राक्षसराजम्, नाशयित्वा=विनाशङ्कृत्वा, राक्षसगणविरुद्धवृत्तम्=सज्जनोचितचरित्रम्, विभीषणम्=रावणानुजम्, अभिषिच्य=लङ्काराज्याभिषिक्तं कृत्वा, देवदेवर्षिसिद्धविमलचारित्राम्=देवैः ऋषिभिश्च सिद्धम्=प्रमाणितम् विमलम्=निष्कलङ्कम् चारित्रम्=शीलम् यस्यास्ताम्, तत्र भवतीम्=श्रीमतीम्; सीताम्=जानकीम्, आदाय=नीत्वा, ऋक्षराक्षसवानरमुख्यैः=जाम्बवद्विभीषणसुग्रीवादिभिः परिवृतः सम्प्राप्तः=समागतः, तत्रभवान्=श्रीमान्, शरद्विमलगगनचन्द्राभिरामः=शरदि विमलं यत् गगनमाकाशं तस्य तत्र वा चन्द्रः तद्वत् अभिरामः=आह्लादकः, रामः=कौसल्यानन्दनः । तत् तस्मात्, यदि=स्यात्, अस्मिन् आश्रमपदे, अस्मद् विभवेन=आरण्यकसुलभेन, यत्=किंचित् सङ्कल्पयितव्यम् तत् स्वागतार्थमुपकल्पनीयम् ।

नन्दिलकः—आर्य=मान्यवर, सर्वम्=सकलम्, सज्जीकृतम्=स्वागतार्थमुपकल्पितम्, किन्तु=पुनश्च—

तापसः—किमेतत्='किन्तु' इत्यग्रे किं भवता विवक्षितम् तदुच्यताम् ।

तपस्वी—नन्दिलक, कुलपति ने आदेश दिया है कि श्रीरामचन्द्र के स्वागतार्थ आश्रम में उपलब्ध होनेवाली सारी वस्तुएँ प्रस्तुत की जायँ। उन्होंने त्रिभुवनविजेता, सीतापहर्त्ता रावण का विनाश किया है। आदर्श-चरित विभीषण को उन्होंने लंका का राज्य दिया है। जाम्बवान्, विभीषण, सुग्रीवादि प्रमुख भी उनके साथ हैं। देवर्षियों के सम्मुख सिद्ध निष्कल सीता जी भी उनके साथ हैं। स्वयं वे शरदिन्दु की तरह सुन्दर सुशोभित हैं।

नन्दिलक—आर्य, सारी सुविधायें उपलब्ध कराने की व्यवस्था करा दी गई है। किन्तु,

तपस्वी—किन्तु से तात्पर्य ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नन्दिलकः—अत्र विभीषणसम्बन्धिनो राक्षसाः। तेषां भक्षणनिमित्तं कुलपतिः प्रमाणम्। [एत्थ विभीषणकेरआ रक्खसा। तेसां भक्खणणिमितं कूलवदी पमाणं।]

तापसः—किमर्थम् ?

नन्दिलकः—ते खलु खादन्ति। [ते खु खज्जन्ति।]

तापसः—अलमलं सम्भ्रमेण। विभीषणविधेयाः खलु राक्षसाः।

नन्दिलकः—नमो राक्षससज्जनाय। (निष्क्रान्तः) [णमो रक्खस-सज्जणाअ]

तापसः—(विलोक्य) अये अत्रभवान् राघवः। य एव—

नन्दिलकः—अत्र = अस्मिन् स्थाने, विभीषणसम्बन्धिनः = विभीषणस्य परिजनाः, राक्षसाः=निशाचराः, तेषाम्=रक्षसाम्, भक्षणनिमित्तम्=भोजनार्थम्, कुलपतिः=वनवासिमुनिमुख्यः, प्रमाणम्=निर्णयप्रभुः।

तापसः—किमर्थम्=कस्मै प्रयोजनाय।

नन्दिलकः—ते=क्रव्यादाः, खलु=निश्चयेन, खादन्ति=भक्षणं कुर्वन्ति।

तापसः—अलमलम्=व्यर्थम्, सम्भ्रमेण=सन्देहेन। विभीषणविधेयाः= तदधीनाः खलु, राक्षसाः=निशाचराः।

नन्दिलकः—नमो राक्षससज्जनाय = निशाचरमुख्याय। (निष्क्रान्तः= बहिर्गतः।)

तापसः—(विलोक्य=दृष्ट्वा) अये=आश्चर्यम्, अयम्=एष, अत्रभवान्=श्रीमान्, राघवः=रामः, य एष—

नन्दिलक—विभीषण के साथ उनके सम्बन्धी भी तो आ रहे हैं। उनके भोजन का दायित्व कुलपति पर होगा।

तपस्वी—ऐसा क्यों ?

नन्दिलक—वे तो खाते हैं... ... ...

तपस्वी—नहीं नहीं डरो मत, वे सभी राक्षस तो विभीषण के आज्ञाकारी हैं।

नन्दिलक—तो फिर सज्जन राक्षस के लिए प्रणाम।

(प्रस्थान)

तपस्वी—(देखकर) आह, ये हैं राघव, जिन्होंने --

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जय नरवर ! जेयः स्याद् द्वितीयस्तवारि-
स्तव भवतु विधेया भूमिरेकातपत्रा ।
इति मुनिभिरनेकैः स्तूयमानः प्रसन्नैः
क्षितितलमवतीर्णो मानवेन्द्रो विमानात् ॥ १ ॥

जयतु भवान् जयतु । (निष्क्रान्तः)

(मिश्रविष्कम्भकः ।)

(ततः प्रविशति रामः)

रामः—भोः !

समुदितबलवीर्यं रावणं नाशयित्वा
जगति गुणसमग्रां प्राप्य सीतां विशुद्धाम् ।

अन्वयः—जय नरवर, तव द्वितीयः अरिः जेयः स्यात्, भूमिः एकातपत्रा तव विधेया भवतु—इति प्रसन्नैः अनेकैः मुनिभिः स्तूयमानः मानवेन्द्रः विमानात् क्षितितलम् अवतीर्णः ।

व्याख्या—जय=सर्वोत्कर्षेण वर्तस्व, नरवर=पुरुषश्रेष्ठ, तव=भवतः, द्वितीयः=अपरः, अरिः=शत्रुः, जेयः=जेतुमर्हः, स्यात्=भवेत्, भूमिः=पृथ्वी, एकातपत्रा=एकच्छत्रम्, तव=भवतः, विधेया, भवतु=स्यात्, इति=इत्थं, प्रसन्नैः=रावणवधसन्तुष्टैः, अनेकैः=भूरिभिः मुनिभिः=तपस्विभिः, स्तूयमानः=प्रशस्यमानः, मानवेन्द्रः=नरेन्द्रः, विमानात्=व्योमयानात्, क्षितितलम्=पृथ्वीतलम्, अवतीर्णः=अवरूढः ॥ १ ॥

जयतु=विजयताम्, भवान्=श्रीमान् जयतु । (निष्क्रान्तः=बहिर्गतः)

(मिश्रविष्कम्भकः)

(ततः प्रविशति रामः)

व्याख्या—समुदितम्=सम्यक् वृद्धं बलवीर्यं यस्य तं, रावणम्=निशाचरनाथम्, नाशयित्वा=विनाश्य, जगति=संसारे, गुणसमग्राम्=सकलगुणयुताम् विशुद्धाम्=

हे नरश्रेष्ठ, आपकी जय हो, आप दूसरे शत्रुओं पर भी इसी तरह विजयी बनें, सम्पूर्ण धरती पर आपका एकछत्र राज्य हो, इस प्रकार अनेक संतुष्ट मुनियों द्वारा स्तकृत श्रीराम पुष्पक-विमान से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं ॥ १ ॥

आपकी विजय हो (प्रस्थान)

(मिश्रविष्कम्भक)

(उसके बाद राम का प्रवेश)

राम—अतुल पराक्रमी रावण का संहार कर संसार की सर्वगुणसम्पन्ना, निष्कलंका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वचनमपि गुरूणामन्तशः पूरयित्वा
मुनिजनवनवासं प्राप्तवानस्मि भूयः ॥ २ ॥

तापसीनामभिवादनार्थमभ्यन्तरं प्रविष्टा चिरायते खलु मैथिली। (विलोक्य) अये ! इयं वैदेही।

सखीति सीतेति च जानकीति यथावयः स्निग्धतरं स्नुषेति।
तपस्विदारैर्जनकेन्द्रपुत्री सम्भाष्यमाणा समुपैति मन्दम् ॥ ३ ॥

(ततः प्रविशति सीता तापसी च)

पवित्राम्, सीताम्=स्वपत्नीं जानकीम्; प्राप्य=पुनरासाद्य, गुरूणाम्=पित्रादीनाम्, वचनम्=आदेशम्, अन्तशः=अक्षरशः, पूरयित्वा=परिपाल्य, भूयः=पुनः, मुनिजनवनवासम्=मुनिजनाध्युषितवनवर्तिप्राचीनस्वनिवासदेशम् प्राप्तवानस्मि। मालिनी वृत्तम् ।। ३ ।।

तापसीनाम्=तपस्विनीनाम्, अभिवादनार्थम्=प्रणामार्थम्, अभ्यन्तरम्=उटजाभ्यन्तरम्, प्रविष्टा=गता, मैथिली=सीता, खलु=निश्चयेन, चिरायते=विलम्बते। अये इयम्=एषा वैदेही,–

व्याख्या—जानकी=जनकेन्द्रपुत्री, यथावयः=स्वस्य अवस्थानुरूपम्, सखीति तुल्यवयोभिः, सीतेति, जानकीति च। वयसाधिकाभिः वृद्धाभिश्च स्नुषेति, तपस्विदारैः=मुनिपत्नीभिः, स्निग्धतरम्=अतिप्रेम्णा यथा स्यात्तथा सम्भाष्यमाणा=आलप्यमाणा, मन्दम्=शनैः शनैः, समुपैति=मामुपसर्पति। स्वभावोक्तिरलङ्कारः। उपजातिः वृत्तम् ।। ३ ।।

(ततः प्रविशति तापसी सीता च)

सीता को पुनः प्राप्त कर मैं उसी तपोवन में पिताजी की आज्ञा का अक्षरशः पालन कर पहुँच गया हूँ ॥ २ ॥

मुनिपत्नियों की वन्दना हेतु सीता कुटीर के भीतर गई थी, उसने बड़ी देर कर दी। (देखकर) अये यह सीता—

ऋषिपत्नियों के साथ मधुर आलाप करती हुई धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़ती चली आ रही है। ऋषिपत्नियाँ अवस्थानुसार उसे कोई सखी कहकर पुकार रही हैं, कोई सीता एवं जानकी कहकर पुकार रही हैं और कोई उसे बहू भी कह रही हैं।

(सीता और तापसी का प्रवेश)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तापसी—हला ! एष ते कुटुम्बिकः । उपसर्पैनम् । न शक्यं त्वामेकाकिनीं प्रेक्षितुम् । [हला ! एसो दे कुटुम्बिओ । उपसप्प णं । ण सक्कं तुमं एआइणिं पेक्खिदुं ।]

सीता—हम् अद्याप्यविश्वसनीयमिव मे प्रतिभाति । (उपसृत्य) जयत्वार्यपुत्रः । [हं अज्ज वि अविस्ससणीअं मं पडिभादि । जेदु अय्यउत्तो ।]

रामः—मैथिलि ! अपि जानासि, पूर्वाधिष्ठानमस्माकं जनस्थानमासीत् । अप्यत्र ज्ञायन्ते पुत्रकृतका वृक्षाः ।

सीता—जानामि जानामि । अवलोकितपुत्रका उल्लोकयितव्या इदानीं संवृत्ताः । [जाणामि जाणामि । ओलोइअपत्तआ उल्लोअइदव्वा दाणिं संवुत्ता ।]

तापसी—हला=सखी, एषः=पुरोदृश्यमानः, ते=तव, कुटुम्बिकः=भर्ता । एनम्=महापुरुषम्, उपसर्प=समीपम् गच्छ । न शक्यम्, त्वाम्=सीताम्, एकाकिनीम्=सहायान्तररहिताम्, प्रेक्षितुम्=द्रष्टुमिति ।

सीता—हम् इत्यङ्गीकारे, एवमेव करोमीत्यर्थः, अद्यापि=अधुनाऽपि, अर्थात् रावणे हतेऽपि, अविश्वसनीयमिव=विश्वासानर्हमिव, मे=मम, प्रतिभाति=भर्तृरहिताम् आत्मानमरक्षितां मन्ये । (उपसृत्य=समीपम् गत्वा) जयतु=सर्वतोभावेन विजयताम्, आर्यपुत्रः=स्वामीति ।

रामः—मैथिलि=सीते, अपि जानासि=स्मरसि किम् ? पूर्वाधिष्ठानम्=अतीतकालेऽधिकृतम् अस्माकम् जनस्थानम्=दण्डकारण्यम् आसीत्, अप्यत्र=अस्मिन्स्थाने, पुत्रकृतकाः=कृत्रिमपुत्राः, वृक्षाः=द्रुमाः, ज्ञायन्ते ।

सीता—जानामि=अवगच्छामि अर्थात् परिचिनोमि, अवलोकितपुत्रकाः=अतिबालतया द्वित्रिपत्रा अत एव च अपक्षिप्तचक्षुषा दृष्टाः, इदानीम् उल्लोकयितव्याः=सन्नतत्वादूर्ध्वं निक्षिप्तचक्षुषा द्रष्टव्याः, संवृत्ताः=जाताः ।

तापसी—सखी ये तुम्हारे स्वामी हैं। इनके पास जाओ। हम तुम्हें अकेली नहीं देख सकतीं।

सीता—हाँ, अभी भी मुझे विश्वास नहीं होता है। (पास जाकर) स्वामी की जय हो।

राम—सीते, तुम्हें याद है। यहाँ हम पहले कभी रहे थे ? यह जनस्थान है। इन वृक्षों को पहचानती तो हो, जिन्हें तुम पुत्र की तरह मानती थीं।

सीता—पहचानती हूँ, स्वामी इन्हें खूब पहचानती हूँ। पहले इन्हें सर नीचे कर देख ती थी, अब इन्हें सर उठाकर देखना पड़ता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—एवमेतत् । निम्नस्थलोत्पादको हि कालः । मैथिलि ! अप्युपलभ्यतेऽस्य सप्तपर्णस्याधस्ताच्छुक्लवाससं भरतं दृष्ट्वा परित्रस्तं मृगयूथमासीत् ।

सीता—आर्यपुत्र ! दृढं खलु स्मरामि । [अय्यउत्त ! दिढं खु सुमरामि ।]

रामः—अयं तु नस्तपसः साक्षिभूतो महाकच्छः । अत्रास्माभिरासीनैस्तातस्य निवपनक्रियां चिन्तयद्भिः काञ्चनपार्श्वो नाम मृगो दृष्टः ।

सीता—हम् आर्यपुत्र ! मा खलु मा खल्वेवं भणितुम् । (भीता वेपते ।) [हं अय्यउत्त । मा खु मा खु एवं भणिदुं ।]

रामः—अलमलं सम्भ्रमेण । अतिक्रान्तः खल्वेष कालः । (दिशो विलोक्य) अये कुतो नु,

---

रामः—एवमेतत् = इत्थमेव, निम्नस्थलोत्पादकः = निम्नश्च स्थलश्च निम्न-स्थलम् तयोः उत्पादकः निम्नस्थलोत्पादकः, हि = यतः, कालः = समयः । मैथिलि = सीते, अप्युपलभ्यते = स्मर्यते, अस्य = एतस्य, सप्तपर्णस्य = सप्तच्छदस्य, अधस्तात् = अधःप्रदेशे शुक्लवाससम् = शुभ्रवस्त्रधारिणम्, भरतम् = कुमारं भरतम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, परित्रस्तम् = भयभीतम्, मृगयूथम् = हरिणकुलम् आसीत् ।

सीता—आर्यपुत्र = भर्तः ! दृढम् स्मरामि = स्मरणम् करोमि ।

रामः—अयम् = एषः, तु = किन्तु, नः = अस्माकम्, तपसः = तपस्यायाः साक्षिभूतः = साक्षिस्वरूपः, महाकच्छः = महांस्तटाकः । अत्र = अस्मिन् स्थाने, अस्माभिः आसीनैः = समासीनैः, तातस्य = पितुः, निवपनक्रियाम् = श्राद्धक्रियाम्, चिन्तयद्भिः = चिन्तां कुर्वद्भिः, काञ्चनपार्श्वः = स्वर्णशरीरः, मृगः = हरिणः, दृष्टः अवलोकितः ।

सीताः—हम् = इति खेदे, आर्यपुत्र = भर्तः, मा खलु मा खलु = अत्र प्रसङ्गे काञ्चनपार्श्वाभिधानस्मरणेन रावणकृतापहरणस्मरणात् तच्चर्चा प्रतिषेधयति—एवम् = इत्थम्, भणितुम् = कथितुम् (भीता = भयाक्रान्ता, वेपते = कम्पते) ।

रामः—अलम् = व्यर्थम्, सम्भ्रमेण = सन्देहेन, अतिक्रान्तः = व्यतीतः, खलु =

राम—ठीक कहती हो। समय अन्तर उत्पन्न कर देता है। सीते, तुम्हें याद है-इस तमाल के पेड़ के नीचे शुक्ल वस्त्रधारी भरत को देखकर हरिणों का झुण्ड डर गया था।

सीता—आर्यपुत्र, मुझे अच्छी तरह याद है।

राम—यह वही सरोवर है जिसके तटपर बैठकर मैंने स्वर्गीय पिता की श्राद्धक्रिया के सम्बन्ध में सोचते समय काञ्चनपार्श्व मृग को देखा था।

सीता—नहीं स्वामी नहीं, इसकी चर्चा मत कीजिए। (डर जाती है।)

राम—सीता, डरो मत, अब वे दिन बीत गये। (चारों ओर देखकर) अरे कहाँ से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रेणुः समुत्पतति लोध्रसमानगौरः सम्प्रावृणोति च दिशः पवनावधूतः ।
शङ्खध्वनिश्च पटहस्वनधीरनादैः सम्मूर्च्छितो वनमिदं नगरीकरोति ॥ ४ ॥

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः । आर्य !

अयं सैन्येन महता त्वद्दर्शनसमुत्सुकः ।
मातृभिः सह सम्प्राप्तो भरतो भ्रातृवत्सलः ॥ ५ ॥

निश्चयेन, एषः कालः=समयः । (दिशः विलोक्य=दृष्ट्वा) अये=आश्चर्यम् कुतो नु-भरतस्यागमात् समुद्भूतम् रजो दूरात् पश्यन् तदुत्पत्तिकारणाज्ञानादाशङ्कते—

अन्वयः—लोध्रसमानगौरः रेणुः समुत्पतति, पवनावधूतः च दिशः सम्प्रावृणोति, पटहस्वनधीरनादैः संमूर्च्छितः शंखध्वनिः वनम् नगरी करोति ॥ ४ ॥

व्याख्या—लोध्रसमानगौरः=लोध्रतुल्यगौरवर्णयुक्तः, रेणुः=धूलिः, समुत्पतति=ऊर्ध्वं गच्छति, च=पुनः, किञ्च, पवनावधूतः=वायुना चालितः, च=पुनः, दिशः सम्प्रावृणोति=सम्यगाच्छादयति, पटहस्वनधीरनादैः=पटहस्वनैः धीराणाम्=वीराणाम्, नादैः=सिंहनादैः, संमूर्च्छितः=सम्यक् वर्धितः, शङ्खध्वनिः=शङ्खनादः, इदं वनम्=इदमरण्यम् नगरीकरोति=नगरभावं जनयति । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४ ॥

(प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा)

लक्ष्मणः—जयतु=सर्वतोभावेन विजयताम्, आर्यः=पूज्यः ।

व्याख्या—अयम्=पुरो दृश्यमानः, भ्रातृवत्सलः=भ्रातृप्रेमी, त्वद्दर्शनसमुत्सुकः–तव=भवतः दर्शनम्=अवलोकनम्, तस्मिन् समुत्सुकः=उत्कण्ठितः, भरतः=कैकेयीसुतः, महता=विशालेन, सैन्येन=सैन्यदलेन, सह=साकम्, सम्प्राप्तः=समागतः ॥ ५ ॥

लोध के फूलों की तरह धवल धूल उड़ती आ रही है। यह हवा में मिलकर दशों दिशाओं को मानो ढँक रही है। ये शंखध्वनि, नगाड़े की चोट, वीरों के सिंह-गर्जन मिलकर शान्त तपोवन को भी नगर बना रहा है ॥ ४ ॥

(लक्ष्मण का प्रवेश)

लक्ष्मण—जय हो आर्य की। आर्य,

भ्रातृवत्सल भरत आपके दर्शन की लालसा से माताओं के साथ भारी सेना से घिरा इधर ही आ रहा है ॥ ५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—वत्स लक्ष्मण ! किमेवं भरतः प्राप्तः ?

लक्ष्मणः—आर्य ! अथ किम् ।

रामः—मैथिलि ! श्वश्रूजनपुरोगं भरतमवलोकयितुं विशालीक्रियतां ते चक्षुः ।

सीता—आर्यपुत्र ! एष्टव्ये काले भरत आगतः । [अय्यउत्त ! इच्छिदव्वे काले भरदो आअदो ।]

(ततः प्रविशति भरतः समातृकः)

भरतः—तैस्तैः प्रवृद्धविषयैर्विषमैमुक्तं मेघैर्विमुक्तममलं शरदीव सोमम् ।
आर्यासहायमहमद्य गुरुं विवृक्षुः प्राप्तोऽस्मि तुष्टहृदयः स्वजनानुबद्धः ॥६॥

रामः—वत्स=प्रिय लक्ष्मण, किमेवम्=अनेन प्रकारेण किम् भरतः= कुमारः भरतः, प्राप्तः=समागतः ।

लक्ष्मणः—आर्य=मान्य, अथ किम्=इत्यङ्गीकारे ।

रामः—मैथिलि=सीते, श्वश्रूजनपुरोगम्=श्वश्रूजनपुरस्सरम्, भरतम्=कैकेयी-सुतम् अवलोकयितुम्=द्रष्टुम्, विशालीक्रियताम्=दीर्घीक्रियताम्, ते=तव, चक्षुः ।

सीता—आर्यपुत्र=स्वामिन्, इष्टव्ये=अभीष्टे, काले=समये, भरतः आगतः= समागतः ।

(ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति=प्रवेशङ्करोति भरतः, समातृकः=मातृभिः सहितः)

अन्वयः—अद्य तुष्टहृदयः स्वजनानुबद्धः शरदि मेघैः वियुक्तम् अमलम् सोमम् इव तैः तैः प्रवृद्धविषयैः विमुक्तम् आर्यासहायम् गुरुम् दिदृक्षुः प्राप्तः अस्मि ।।६।।

व्याख्या—अद्य तुष्टहृदयः=प्रसन्नमना, स्वजनानुबद्धः=स्वजनानुयातः, अहम्, शरदि=शरत्काले, मेघैः वियुक्तम्=अपगतावरणम्, अमलम्=निर्मलम्, सोमम्=चन्द्रम्, इव=यथा, तैः तैः=प्रख्यातैः, प्रवृद्धविषयैः=नानाप्रकारैः, विषमैः सङ्कटैः, विमुक्तम्=विरहितम्, आर्यासहायम्=आर्या सीता सहाया यस्य तम्, गुरुम्=पूज्यम्, दिदृक्षुः=द्रष्टुमिच्छुः, प्राप्तोऽस्मि=समागतोऽस्मि । सङ्कट-

---

राम—लक्ष्मण, क्या सचमुच भरत आया है ।

लक्ष्मण—हाँ श्रीमन्,

राम—सीते, भरत के साथ तुम्हारी सासें आ रहीं है, उन्हें देखने के लिए आँखें फैलाओ ।

सीता—आर्यपुत्र, भरत ठीक समय से आये हैं ।

(माताओं के साथ भरत का प्रवेश)

भरत—मेघमुक्त शरत्कालीन चन्द्रमा की तरह अनेक संकटों से मुक्त सीता सहित श्रीराम के दर्शनार्थ आत्मीयजनों के साथ अति प्रसन्न हृदय से मैं यहाँ आया हूँ ॥ ६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—अम्बाः ! अभिवादये ।

सर्वाः—जात ! चिरं जीव । दिष्ट्या वर्धामहे अवसितप्रतिज्ञं त्वां कुशलिनं सह वध्वा प्रेक्ष्य । [जाद ! चिरं जीव । दिट्ठिआ वड्ढामो अवसिदपडिण्णं तुमं कुसलिणं सह बहूए तेक्खिअ ।]

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

लक्ष्मणः—अम्बाः ! अभिवादये ।

सर्वाः—जात ! चिरं जीव । [जाद ! चिरं जीव ।]

लक्ष्मणः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

सीता—आर्याः वन्दे । [अय्या ! वन्दामि ।]

मुक्तस्य रामस्य मेघनिर्मुक्तचन्द्रसादृश्यवर्णनादुपमालङ्कारः । किञ्च यथा मेघविमुक्ते चन्द्रे जनाः आह्लादन्ते, तथैवैनम् विलोक्य प्रजाजना आह्लादिष्यन्ते इति वस्तु व्यज्यते । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ६ ॥

रामः—अम्बाः=मातरः, अभिवादये=प्रणमामि ।

सर्वाः—जात=पुत्र, चिरंजीव=चिरायुर्भव, दिष्ट्या=भाग्येन, वर्धामहे= आनन्देन परिपूर्णाः स्मः । अवसितप्रतिज्ञम्=पूर्णव्रतम्, त्वाम्=श्रीरामम् कुशलिनम्, सह=साकम्, वध्वा=सीतया, प्रेक्ष्य=दृष्ट्वा ।

रामः—अनुगृहीतः=कृपान्वितः, अस्मि=भवामि ।

लक्ष्मणः—अम्बाः=मातरः, अभिवादये ।

सर्वाः—जात=पुत्र, चिरंजीव=आयुष्मान् भव ।

लक्ष्मणः—अनुगृहीतोऽस्मि=कृपान्वितोऽहमस्मि ।

सीता—आर्या=मान्याः, वन्दे=अभिवादये ।

राम—माताओं, मैं प्रणाम करता हूँ ।

सब—प्रिय पुत्र, जीओ, हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है । प्रतिज्ञापूर्ति के बाद वधू के साथ हम तुम्हें सकुशल देख रही हैं ।

राम—अनुगृहीत हुआ ।

लक्ष्मण—माताओं को प्रणाम ।

सब—बेटा, चिरञ्जीवी रहो ।

लक्ष्मण—अनुगृहीत हुआ ।

सीता—पूज्य चरणों में प्रणाम ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सर्वाः—वत्से ! चिरमङ्गला भव । [वच्छ ! चिरमङ्गला होहि ।]
सीता—अनुगृहीतास्मि । [अणुग्गहिदम्हि ।]
भरतः—आर्ये ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।
रामः—एह्येहि वत्स ! इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।
वक्षः प्रसारय कपाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ।। ७ ।।
भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।
सीता—आर्यपुत्रेण चिरसञ्चारी भव । [अय्यउत्तेण चिरसञ्चारी होहि ।]
भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य! अभिवादये ।

सर्वाः—वत्से = पुत्रि, चिरमंगला = चिरकालावस्थायि मङ्गलम् = कल्याणं यस्यास्तथाभूता भवेत्यादि ।

सीता—अनुगृहीतास्मि = अनुग्रहप्राप्ता अस्मि ।

भरतः—आर्य = मान्य, अभिवादये = प्रणमामि, भरतोऽहमस्मि = तवैवाहम् अनुजः कैकेयीसुत इति भावः ।

रामः—एहि = समागच्छ, वत्स = भ्रातः इक्ष्वाकुकुमार, स्वस्ति = कल्याणं भवतु, आयुष्मान् भव=चिरञ्जीव । वक्षः प्रसारय—व्याख्यातपूर्वम् पद्यमिदम् ।। ७।।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये=मान्ये, अभिवादये भरतः=कुमारः भरतः तवानुचरः अस्मि ।

सीता—आर्यपुत्रेण = श्रीरामचन्द्रेण सह, चिरसंचारी भव=चिरकालपर्यन्तं सुखमुपभुङ्क्ष्व ।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य = मान्य (लक्ष्मणम्प्रति), अभिवादये ।

सब—सदा तुम्हारा कल्याण हो ।
सीता—अनुगृहीत हुई ।
भरत—आर्य, भरत का प्रणाम स्वीकार हो ।
राम—आओ भरत, तुम्हारा कल्याण हो, जीओ ।
कपाटतुल्य अपनी चौड़ी छाती फैलाओ, अपनी विशाल बाहुओं में मुझे जकड़ लो ।
शरच्चन्द्र की तरह आह्लादक अपने मुख को ऊपर उठाकर हमारी छाती जुड़ाओ ॥ ७ ॥
भरत—अनुगृहीत हुआ । आर्ये, भरत का प्रणाम स्वीकार हो ।
सीता—स्वामी के साथ सुखी जीवन व्यतीत करो, कुमार !
भरत—अनुगृहीत हुआ । आर्य, प्रणाम ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लक्ष्मणः—एह्येहि वत्स ! दीर्घायुर्भव। परिष्वजस्व गाढम्। (आलिङ्गति)

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ! आर्य ! प्रतिगृह्यतां राज्यभारः।

रामः—वत्स ! कथमिव ?

कैकेयीः—जात ! चिराभिलषितः खल्वेष मनोरथः। [जाद ! चिराहिलसिदो खु एसो मणोरहो।]

(ततः प्रविशति शत्रुघ्नः)

शत्रुघ्नः—विविधैर्व्यसनैः क्लिष्टमक्लिष्टगुणतेजसम्।
द्रष्टुं मे त्वरते बुद्धिः रावणान्तकरं गुरुम् ॥ ८ ॥

लक्ष्मणः—(आलिङ्गति = आलिङ्गनं करोति) एह्येहि वत्स, दीर्घायुर्भव = चिरं जीव। परिष्वजस्व गाढम् = गाढालिङ्गनम् कुरु।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। प्रतिगृह्यताम् = अङ्गीक्रियताम्, राज्यभारः = स्वकीयराज्यम्।

रामः—वत्स, कथमिव = भरताय राज्यं प्रार्थितवत्याः कैकेय्यास्तत्रोपस्थितौ वास्तविकं कारणमजानन् राज्यस्वीकारे शिथिलादर इत्याह—कथमिव। तदुत्तरं कैकेयी एवमाह—

कैकेयी—जात, चिराभिलषितः = चिरकालादिच्छितः, खलु = निश्चयेन, एष मनोरथः = अभिलाषः।

(ततः = तत्पश्चात् प्रविशति शत्रुघ्नः = लक्ष्मणानुजः)

व्याख्या—विविधैः = नानाप्रकारकैः, व्यसनैः = संकटैः, क्लिष्टम् = सम्पीडितम्, अक्लिष्टगुणतेजसम् = अनुपहतगुणप्रभावम्, रावणान्तकरम् = रावणहन्तारम्, तम् गुरुम् = श्रीरामम्, द्रष्टुम् = दर्शनार्थम्, मे = मम शत्रुघ्नस्य, बुद्धिः = मनः,

---

लक्ष्मण—आओ, आओ भरत, चिरजीवी बनो। गाढ़ आलिङ्गन करो। (आलिङ्गन करता है)

भरत—अनुगृहीत हुआ। आर्य अपना राज्यभार ग्रहण करें।

राम—भाई, यह क्यों ?

कैकेयी—बेटा, बहुत दिनों से यही इच्छा है।

(शत्रुघ्न का प्रवेश)

शत्रुघ्न—अनेक संकटों के बीच घिरकर भी जिनका तेज दिव्य और गुण प्रदीप्त होता रहा, जिन्होंने प्रबल शत्रु रावण को आसानी से विनाश किया ऐसे पूज्य श्रीराम के दर्शनार्थ मेरा मन मचल रहा है ॥ ८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(उपगम्य) आर्य ! शत्रुघ्नोऽहमभिवादये ।

रामः—एह्येहि वत्स ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये ! अभिवादये ।

सीता—वत्स ! चिरं जीव । [वच्छ ! चिरं जीव ।]

शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवादये ।

लक्ष्मणः—स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! एतौ वसिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिषेकं पुरस्कृत्य त्वद्दर्शनमभिलषतः ।

तीर्थोदकेन मुनिभिः स्वयमाहृतेन नानानदीनदगतेन तव प्रसादात् ।
इच्छन्ति ते मुनिगणाः प्रथमाभिषिक्तं द्रष्टुं मुखं सलिलसिक्तमिवारविन्दम् ॥९॥

त्वरते=शीघ्रताम् करोतीत्यर्थः ।। ८ ।।

(उपगम्य =समीपं गत्वा) आर्य=मान्य, शत्रुघ्नः=एतदाख्यः तवानुजः अहमस्मि । अभिवादये=प्रणमामि ।

रामः—एहि =समागच्छ, आयुष्मान् भव =चिरञ्जीव ।

शत्रुघ्नः—आर्य =मान्य, एतौ=सन्निहितौ, वशिष्ठवामदेवौ=कुलपुरोहितौ, सह प्रकृतिभिः=प्रजाभिः सह, अभिषेकं पुरस्कृत्य=अभिषेचनमुद्दिश्य, त्वद्दर्शनमभिलषतः=त्वाम् द्रष्टुमिच्छतः इति ।

व्याख्या—मुनिगणाः =ऋषयः, तव प्रसादात्=कृपया, स्वयमाहृतेन=स्वयमानीतेन नानानदीनदगतेन तीर्थोदकेन, प्रथमाभिषिक्तम् = प्राक्कृताभिषेकम्, तव

(समीप जाकर) मैं शत्रुघ्न, श्रीमान् को प्रणाम करता हूँ ।

राम—आओ, आओ भाई, बहुत दिनों तक जीओ, तुम्हारा कल्याण हो ।

शत्रुघ्न—बड़ी कृपा । आर्ये, प्रणाम ।

सीता—तुम्हारा कल्याण हो ।

शत्रुघ्न—बड़ी कृपा । आर्य प्रणाम ।

लक्ष्मण—प्रिय, तुम्हारा जीवन मंगलमय हो ।

शत्रुघ्न—कृपान्वित हुआ, ये महर्षि वसिष्ठ, वामदेव तथा प्रजाजन सभी एक साथ आपके राज्याभिषेक की प्रतीक्षा कर रहे हैं—

मुनिजन स्वयं जाकर छोटी-बड़ी नदियों से तीर्थजल लाये हैं । उनकी इच्छा है कि आप सर्वप्रथम अभिषेकजल ग्रहण करें । उसके बाद अभिषेक-जल से सिक्त कमल की तरह विकसित आपके मुख का दर्शन करना चाहते हैं ॥ ९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कैकेयी—गच्छ जात ! अभिलषाभिषेकम् । [गच्छ जाद ! अभिलसेहि अभिसेअं ।]

रामः—यथाज्ञापयत्यम्बा । (निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये)

जयतु भवान् । जयतु स्वामी । जयतु महाराजः । जयतु देवः । जयतु भद्रमुखः । जयत्वार्यः । जयतु रावणान्तकः ।

कैकेयी—एते पुरोहिताः कञ्चुकिनः पुत्रकस्य मे विजयघोषं वर्धयन्त आशीर्भिः पूजयन्ति । [एदे पुरोहिता कञ्चुइणो पुत्तअस्स मे विजअघोसं वड्ढअन्तो आसीहि पूजअन्ति ।]

सुमित्रा—प्रकृतयः परिचारकाः सज्जनाश्च पुत्रकस्य मे विजयं वर्धयन्ति । [पइदीओ परिचारआ सज्जणा अ पुत्तअस्स मे विजअं वड्ढअन्ति ।]

मुखम्, सलिलसिक्तम्=जलाभ्युक्षितम् कमलमिव द्रष्टुमिच्छन्ति । उपमालंकारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ९ ॥

कैकेयी—गच्छ=गम्यताम्, जात=पुत्र, अभिषेकम्, अभिलष=गृहाण ।

रामः—यत्=यथा, आज्ञापयति=आदिशति, अम्बा=जननी । (निष्क्रान्तः= बहिर्गतः)

(नेपथ्ये=जवनिकान्तरे)

जयतु=सर्वतोभावेन विजयताम्, भवान्=श्रीमान्, भद्रमुखः–भद्रं=कल्याणमयं मुखम् यस्यासौ, रावणान्तकः=रावणहतकः ।

कैकेयी—एते=जनाः, पुरोहिताः=कुलपुरोहिताः, मे=मम, पुत्रकस्य= सुतस्य, विजयघोषम्=विजयध्वनिम्, आशीर्भिः पूजयन्ति=अभिनन्दन्ति ।

सुमित्रा—प्रकृतयः=प्रजाः, परिचारकाः=सेवकाः सज्जनाः=सत्पुरुषाः मे=मम, पुत्रकस्य=सुतस्य, वर्धयन्ति=बृद्धिम् अभिलषन्ति ।

कैकेयी—जाओ पुत्र, राज्याभिषेक स्वीकार करो ।

राम—आपकी आज्ञा मान्य है । (निकल जाते हैं) ।

(नेपथ्य में)

आपकी जय, स्वामी की जय, देव की जय, भद्रमुख की जय, आर्य की जय, रावण के संहारक की जय हो ।

कैकेयी—ये पूज्य पुरोहित, कन्चुकी प्रभृति विजय-घोषणा से मेरे पुत्र को आशीष दे रहे हैं, अभिनन्दन कर रहे हैं ।

सुमित्रा—अहा ! प्रजाजन, सत्पुरुष एवं नौकर-चाकर सभी मेरे पुत्र की विजय-घोषणा कर रहे हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(नेपथ्ये)

भो भो जनस्थानवासिनस्तपस्विनः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः ।

हत्वा रिपुप्रभवमप्रतिमं तमोघं
सूर्योऽन्धकारमिव शौर्यमयैर्मयूखैः ।
सीतामवाप्य सकलाशुभवर्जनीयां
रामो महीं जयति सर्वजनाभिरामः ॥ १० ॥

कैकेयी—अम्महे ! पुत्रस्य मे विजयघोषणा वर्धते । [अम्महे ! पुतअस्स मे विजअघोषणा वुढ्ढइ ।]

(ततः प्रविशति कृताभिषेको रामः सपरिवारः)

(नेपथ्ये)

भो भो, जनस्थानवासिनः=दण्डकारण्यनिवासिनः, तपस्विनः=ऋषयः, शृण्वन्तु भवन्तः=श्रीमन्तः ।

व्याख्या—अप्रतिमम्=अनुपमम्, रिपुप्रभवम्=शत्रुसम्भवम्, तमोघम्=तमसाम्=दुःखानाम्, ओघम्=वृन्दम्, सूर्यः=रविः, अन्धकारमिव, शौर्यमयैः=पराक्रमरूपैः, मयूखैः=किरणैः, हत्वा=विनाश्य, सकलैः=सम्पूर्णैः, अशुभैः=अमङ्गलैः, वर्जनीयाम्=रहिताम्, सीताम्=जानकीम्, प्राप्य=लब्ध्वा, सर्वजनाभिरामः=सकललोकप्रियः रामः, महीम्=पृथ्वीम्, जयति=स्वायत्तीकरोति । अस्मिन् श्लोके सूर्येण अन्धकारस्य विनाशेन रामकृतः शत्रुविनाशः उपमित इत्युपमालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १० ॥

कैकेयी—अम्महे = इत्याश्चर्यसहिते आनन्दे, पुत्रस्य=सुतस्य, मे=मम, विजयघोषणा वर्धते ।

(ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति=प्रवेशं करोति कृताभिषेकः=निष्पन्नाभिषेककार्यः सपरिवारः रामः ।)

(नेपथ्य में)

दण्डकारण्यवासी तपस्वीगण, आपलोग सभी ध्यान से सुनें—

जिस प्रकार सूर्य अपनी प्रमुख किरणों से अन्धकार का नाश करता है, उसी प्रकार अपने परम पुरुषार्थ से शत्रुओं द्वारा उत्पन्न संकटों को नष्ट कर मंगलमयी सीता को पाकर नयनाभिराम राम ने सारी धरती पर अधिकार कर लिया है ॥ १० ॥

कैकेयी—अहो ! पुत्र की जयघोषणा हो रही है ।

(राज्याभिषिक्त सपरिवार राम का प्रवेश)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—(विलोक्याकाशे) भोस्तात !

स्वर्गेऽपि तुष्टिमुपगच्छ विमुञ्च दैन्यं
कर्म त्वयाभिलषितं मयि यत् तदेतत् ।
राजा किलास्मि भुवि सत्कृतभारवाही
धर्मेण लोकपरिरक्षणमभ्युपेतम् ॥ ११ ॥

भरतः—अधिगतनृपशब्दं धार्यमाणातपत्रं
विकसितकृतमौलिं तीर्थतोयाभिषिक्तम् ।
गुरुमधिगतलीलं वन्द्यमानं जनौघै-
र्नवशशिनमिवार्यं पश्यतो मे न तृप्तिः ॥ १२ ॥

रामः—(आकाशे = खे, विलोक्य = दृष्ट्वा) भोस्तात = हे पितः—

व्याख्या—स्वर्गेऽपि = देवलोकेऽपि, तुष्टिम् = सन्तोषम्, उपगच्छ = लभस्व, दैन्यम् = चिन्ताम्, विमुञ्च = जहीहि । त्वया मयि यत्कर्म राज्यारोहणरूपमभिलषितम् इच्छितम्, तदेतत् = राज्याभिषेकलक्षणम् निर्वृत्तमिति शेषः । भुवि = संसारे, सत्कृतभारवाही = पूजितस्य भारस्य वोढा, राजा = नृपः, अस्मि = भवामि, धर्मेण = धर्मपूर्वकेण, लोकपरिरक्षणम् = प्रजाजनस्य संरक्षणम्, अभ्युपेतम् = स्वीकृतम् मयेति । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ११ ॥

व्याख्या—अधिगतनृपशब्दम् = अधिगतः स्वायत्तीकृतः, नृपः = राजशब्दवाच्यता येन तम्, धार्यमाणातपत्रम् = धार्यमाणमातपत्रम् छत्रम् यस्मिन् तम्, समालम्बितराजधार्यश्वेतातपत्रम्, विकसितकृतमौलिम् = उन्नमितमूर्द्धानम्, तीर्थतोयाभिषिक्तम् = तीर्थाहृतजलेनाभिषिक्तम् गुरुम् = पूज्यम्, अधिगतलीलम् = आसादित-

---

राम—(आकाश की ओर देखते हुए) पितृदेव—
आप अब चिन्ता छोड़कर स्वर्ग में ही आनन्द अनुभव करें । आपने मेरा राज्याभिषेक करना चाहा था—आज आपकी इच्छा पूरी हुई । धरती पर पुण्यभार का वहन करने वाला राजा अब मैं बन गया हूँ । न्यायपूर्वक प्रजा के पालन का भार अब मैंने अपने ऊपर उठा लिया है ॥ ११ ॥

भरत—आज अपने बड़े भाई राजा राम को देखते मेरी आँखें नहीं थकती हैं । उन्होंने आज महाराज की पदवी पाई, राजछत्र ग्रहण किया और राजगौरव पाया । चारों ओर प्रजा उनकी जयध्वनि कर रहे हैं । आह्लादक नवीन चन्द्र की तरह उनका अभिनन्दन किया जा रहा है ॥ १२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शत्रुघ्नः—एतदार्याभिषेकेण कुलं मे नष्टकल्मषम् ।
पुनः प्रकाशतां याति सोमस्येवोदये जगत् ॥ १३ ॥

रामः—वत्स लक्ष्मण ! अधिगतराज्योऽहमस्मि ।

लक्ष्मणः—दिष्ट्या भवान् वर्धते ।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः । एष खलु तत्रभवान् विभीषणो विज्ञापयति-सुग्रीवनीलमैन्दजाम्बवद्धनूमत्प्रमुखाश्चानुगच्छन्तो विज्ञापन्ति—'दिष्ट्या भवान् वर्धत' इति ।

श्रीकम्, जनौघैः=लोकसमूहैः, वन्द्यमानम्=प्रणम्यमानम्, नवशशिनम्=नवचन्द्रम्, इव=यथा, आर्यं=रामं पश्यतो न मे तृप्तिः जायते इति शेषः । उपमालङ्कारः । मालिनीवृत्तम् ॥ १२ ॥

व्याख्या—आर्यस्य, अभिषेकेण=राज्यारोहणेन, नष्टम्=विनष्टम् कल्मषम्=कलङ्को यस्य तदेवं मे मम कुलम्=वंशः, सोमस्य=चन्द्रस्य, उदये=उदयकाले जगत्=संसार, इव=यथा पुनः प्रकाशताम्=दीप्तिशालिताम् याति=प्राप्नोति ॥१३॥

रामः—वत्स=भ्रातः लक्ष्मण, अधिगतराज्यः=प्राप्तराज्यः अस्मि ।

लक्ष्मणः—दिष्ट्या=भाग्येन, भवान्=श्रीमान्, वर्धते=सर्वतोभावेन विजयताम्।

(प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा)

काञ्चुकीयः—जयतु=विजयताम्, महाराजः=श्रीरामचन्द्रः । एषः=सन्मुखस्थः, खलु=निश्चयेन, तत्रभवान्=श्रीमान्, विभीषण=रावणानुजः, विज्ञापयति=सूचयति, सुग्रीवनीलमैन्दजाम्बवद्हनूमत्प्रमुखाश्च अनुः=पश्चात् गच्छन्तश्चरन्तः विज्ञापयन्ति=निवेदयन्ति—दिष्ट्या भवान्=श्रीमान् वर्धते ।

शत्रुघ्न—आर्य के अभिषेक से आज कुल के कलंक का नाश हो गया। जैसे चन्द्रोदय से संसार प्रकाशित हो जाता है, उसी तरह इनके राज्यारोहण से रघुकुल आज प्रदीप्त हो गया है ॥ १३ ॥

राम—वत्स लक्ष्मण, मेरा राज्याभिषेक हो गया।

लक्ष्मण—हर्ष का विषय है। बधाई आर्य को।

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—जय हो महाराज की। आर्य विभीषण कहते हैं कि सुग्रीव, नील, मैन्द, जाम्बवान् और हनुमान् प्रभृति आपको बधाई देते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः—'सहायानां प्रसादाद् वर्धत' इति कथ्यताम् ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

कैकेयी—धन्या खल्वस्मि । इममभ्युदयमयोध्यायां प्रेक्षितुमिच्छामि ।[धण्णा खुम्हि । इदं अब्भुदअं अओज्झाअं पेक्खिदं इच्छामि ।]

रामः—द्रक्ष्यति भवती । (विलोक्य) अये ! प्रभाभिर्वनमिदमखिलं सूर्यवत् प्रतिभाति । (विभाव्य) आः ज्ञातम् । सम्प्राप्तं पुष्पकं दिवि रावणस्य विमानम् । कृतसमयमिदं स्मृतमात्रमुपगच्छतीति । तत् सर्वैरारुह्यताम् ।

रामः—विभीषणसुग्रीवादीनाम् वर्धापने प्रत्युत्तरमाह—सहायानाम्=भवताम् प्रसादात्=कृपया, वर्धते रामः इति कथ्यताम्=निवेद्यतामिति भावः ।

काञ्चुकीयः—यत्=यथा, आज्ञापयति=आदिशति, महाराजः=श्रीमान् इति।

कैकेयी—धन्या = कृतपुण्या, अस्मि=भवामि, इमम्=पुरो वर्त्तमानम्, अभ्युदयम्=राज्याभिषेकरूपम् महोत्सवम्, अयोध्यायाम्=राजधान्याम्, प्रेक्षितुम्=द्रष्टुम्, इच्छामि=अभिलषामि ।

रामः—द्रक्ष्यति=अवश्यम् प्रेक्ष्यति, भवती=श्रीमती । (विलोक्य=दृष्ट्वा) अये=हर्षे, प्रभाभिः=तेजोभिः; इदम् वनम्=अरण्यम्, अखिलम्=सम्पूर्णम्, सूर्यवत्=रविरिव, प्रतिभाति=प्रकाशते । आः ज्ञातम्=बुद्धम्, साम्प्रतम्=अधुना पुष्पकम्=एतदाख्यविमानम्, दिवि=आकाशे, कृतसमयम्=दत्तसंकेतम्, स्मृतिमात्रम्=स्मरणकाल एव, उप=समीपम् आगच्छतीति शेषः । तत्=तस्मात् सर्वैः=जनैः आरुह्यताम्=आरोहणम् क्रियताम् ।

राम—उन्हें कह दो—ये सब उन्हीं सहायक मित्रों की कृपा का फल है ।

कञ्चुकी—महाराज की जैसी आज्ञा ।

कैकेयी—मैं धन्य हूँ, राज्याभिषेक महोत्सव को मैं अयोध्या में देखना चाहती हूँ ।

राम—आप अवश्य देखेंगी । (देखकर) ओह, प्रभापुञ्ज से यह सारा जङ्गल चमक उठा है । (सोचकर) अच्छा समझ गया । आकाश में रावण का पुष्पक विमान आया है । स्मरण मात्र से ही यह ठीक समय पर उपस्थित हो जाता है । अब आप लोग इस पर सवार हों ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(सर्वे आरोहन्ति)

रामः—अद्यैव यास्यामि पुरीमयोध्यां सम्बन्धिभिर्मित्रैरनुगम्यमानः ।
लक्ष्मणः—अद्यैव पश्यन्तु च नागरास्त्वां चन्द्रं सनक्षत्रमिवोदयस्थम् ॥१४॥

(भरतवाक्यम्)

यथा रामश्च जानक्या बन्धुभिश्च समागतः ।
तथा लक्ष्म्या समायुक्तो राजा भूमिं प्रशास्तु नः ॥ १५ ॥

(सर्वे=जनाः, आरोहन्ति)

रामः—अद्यैव=इदानीमेव, अयोध्याम्=स्वराजधानीम्, पुरीम्=नगरीम् अहं सम्बन्धिभिः=बान्धवैः मित्रैः=सुहृद्भिः, अनुगम्यमानः यास्यामीति ।

लक्ष्मणः—अद्यैव = अस्मिन्नेव दिने, नागराः = अयोध्यानगरवास्तव्याः जनाः, उदयस्थम्–उदये=उदयाचले तिष्ठतीति तम्, सनक्षत्रम्=चन्द्रमिव उदयस्थम्=उत्कर्षस्थानप्राप्तम् त्वाम् = श्रीरामचन्द्रम् पश्यन्तु=अवलोकयन्तु । अत्राप्युपमालङ्कारः । इन्द्रवज्रा छन्दः ॥ १४ ॥

(भरतवाक्यम् भरतस्य नटस्य वाक्यम् सामाजिकाभ्युदयाशंसनरूपम् । एष हि समुदाचारो यत् नाटकान्ते भरतेन सामाजिकतत्प्रमुखादीनाम् शुभाशंसनमाचर्यते । सा चेयं प्रशस्तिः निर्वहणसन्धिचरमाङ्गम् ।)

रामो जानक्या च बन्धुभिश्च यथा समागतस्तथा लक्ष्म्या समायुक्तो नोऽस्माकम् राजा भूमिं प्रशास्तु परिपालयत्वित्यर्थः ॥ १५ ॥

(सभी सवार होते हैं)

राम—मैं आज ही अपने बन्धु-बान्धवों के साथ अयोध्या जा रहा हूँ ।

लक्ष्मण—और आज ही सभी नगरवासी उदयाचल पर पूर्ण नक्षत्र-मण्डल के साथ चन्द्रमा की तरह आपके दर्शन करेंगे ॥ १४ ॥

(भरतवाक्य)

जिस प्रकार भगवान् राम सीता और अपने बन्धुओं के साथ राज्यसुख प्राप्त करते रहे, उसी तरह राजलक्ष्मी से युक्त हमारे महाराज पृथ्वी का पालन करें ॥ १५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति सप्तमोऽङ्कः ।

* * * *

(निष्क्रान्ताः = बहिर्गताः, सर्वे = अभिनेतारः)

सप्तमाङ्कपरिसमाप्तिः ।

इति बेगूसरायमण्डलान्तर्गत–अकबरपुर-ग्रामवासि-

डॉ० जगदीशचन्द्र मिश्र प्रणीता "विमला" समाप्ता ।

❀ ❀ ❀

सबों का प्रस्थान ।

॥ प्रतिमानाटक समाप्त ॥

डॉ जगदीशचन्द्र मिश्र कृत हिन्दी रूपान्तर समाप्त ।

❀ ❀ ❀

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिशिष्टम्

[क]

प्रतिमानाटकगतानि सुभाषितानि

अनुचरति शशाङ्कम् राहुदोषेऽपि तारा ।
अलमिदानीम् व्रणे प्रहर्तुम् ।
अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते ।
ईदृग्विधाः पुरुषा ईदृशीमापदमनुभवन्तीति विधिरनतिक्रमणीयः ।
किं ब्रह्मघ्नानपि परेण निवेदनं क्रियते ?
कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता ।
गोपहीना गावो विलयं यान्ति ।
छायां परिहृत्य शरीरं न लङ्घयामि ।
तिर्यग्योनयोऽप्युपकृतमवगच्छन्ति ।
न न्याय्यं परदोषमभिधातुम् ।
न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति ।
निम्नस्थलोत्पादको हि कालः ।
निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च ।
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च ।
पिपासार्त्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ।
पुरुषाणां मातृदोषो न दोषः ।
बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम ।
भर्तृनाथा हि नार्यः ।
राज्यं नाम मुहूर्त्तमपि नोपेक्षणीयम् ।
शरीरेऽरिः प्रहरति स्वजनो हृदये ।
सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम ।
सर्वोऽपि मृदुः परिभूयते ।
सुलभापराधः परिजनो नाम ।
स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो विस्मयः ?
हस्तस्पर्शो हि मातॄणामजलस्य जलाञ्जलिः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[ख]

नाटकीयवस्तुलक्षणानि

१. नाटकम्—

नाटक रूपक का एक भेद है। जिसमें वीर या श्रंगार दो में से कोई एक रस प्रधान हो, अन्य रस अङ्गभूत रहे, नायक कोई प्रख्यात व्यक्ति हो, उसे नाटक कहा जाता है।

वीरश्रृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्ण्यते।
प्रख्यातनायकोपेतं नाटकं तदुदाहृतम्॥
प्रकृतित्वादथान्येषां भूयो रसपरिग्रहात्।
सम्पूर्णलक्षणत्वाच्च पूर्वं नाटकमुच्यते॥

—दशरूपक ३। १॥

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम्।
विलासद्धर्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः॥
सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम्।
पञ्चादिका दश परास्तत्राङ्काः परिकीर्त्तिताः॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः॥
एक एव भवेदङ्गी श्रृंगारो वीर एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः॥
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः।
गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्त्तितम्॥

—साहित्यदर्पण—परि० ३, श्लो० ७—११

२. पूर्वरङ्ग—

नाटकीय कथा की अवतारणा से पहले नटगण रङ्गभूमि के विघ्नों को दूर करने के लिए जो कुछ भी करते हैं, उसे पूर्वरङ्ग कहते हैं।

यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते॥

—सा० द० ६–२२.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३. नान्दी—

'नान्दी' देव, द्विज, नृप आदि की ऐसी स्तुतिगीति है जिसमें सामाजिकों की शुभाशंसा का अभिप्राय गर्भित रहा करता है। इस नान्दीगीति के लिए अपेक्षित है कि इसके द्वारा शंख, चक्र, पद्म, चक्रवाक, कैरव आदि मंगलास्पद वस्तुओं की अभिव्यंजना हो जाय। नान्दी अष्टपदा भी होती है और द्वादश पदा भी—

> 'आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
> देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥
> माङ्गल्यशंखचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी।
> पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत॥
>
> —सा० द० ६, श्लो० २४-२५

४. सूत्रधार—

सूत्रधार रङ्गमञ्च का अधिकारी ही नहीं होता, उसे सजाने की कला में भी प्रवीण होता है। यह नाटक के नायक, कवि एवं कथावस्तु के गुणों का संक्षेप में वर्णन करता है—

> आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुनः।
> रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इहोदितः॥

५. नेपथ्य—

नेपथ्य (Green-room) रङ्गभूमि का वह आन्तरिक भाग है, जहाँ नाटकीय अभिनय की सारी तैयारियाँ होती हैं। वहीं पर नाटक के सभी पात्र वेश बदलते हैं। कभी-कभी आवश्यकतानुसार बहुत सी बातें नेपथ्य से ही कह दी जाती हैं। नेपथ्य पर्दे से घिरा होता है—

> कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।

६. प्रयोगातिशय—

यदि किसी एक ही प्रयोग में अन्य प्रयोग प्रारम्भ हो जाय और उसी के द्वारा पात्र का प्रवेश कराया जाय तो उसे प्रयोगातिशय कहते हैं। यह प्रस्तावना का ही एक भेद है।

> यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते।
> तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा॥

७. प्रस्तावना—

नाटक आरम्भ होने के पहले सूत्रधार (Manager of the Stage) नटी (Actress), विदूषक आदि के बीच प्रस्तुत होने वाले नाटक के बारे में वार्तालाप या बातचीत को प्रस्तावना कहते हैं। इसमें विचित्र उक्तियों द्वारा वार्त्तालाप होता है और बड़े कौशल से नाटक प्रारम्भ होता है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदुषकम् ।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ॥

८. अङ्क—

नाटक की समस्त घटनाओं के विकास को कई हिस्सों में बाँट देने पर प्रत्येक भाग को अङ्क कहते हैं। प्रत्येक अङ्क में नायक एवं नायिका आदि पात्रों का चरित्र दिखाया जाता है। व्यर्थ की बातें करने से अङ्क दूषित हो जाता है। अङ्क रूपक का प्रधान अङ्ग है। प्रत्येक खण्ड या अङ्क में एक ही रस की प्रधानता होनी चाहिए—

अङ्क इति रूढशब्दो भावैश्च रसैश्च रोहत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात्तस्माद्भवेदङ्कः ॥
यथार्थस्य समाप्तिर्यस्य च बीजस्य भवति संहारः ।
किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्कः सदाऽवगन्तव्यः ॥

९. मिश्रविष्कम्भक—

बीती हुई और आगे आनेवाली घटनाओं की सूचना तथा कथांश का संक्षेप करने वाला लघु अङ्क विष्कम्भक कहलाता है। उसके प्रयोग का स्थान अङ्क का आदि माना गया है। जहाँ विष्कम्भक में एक अथवा दो मध्यम पात्र का प्रयोग हो उसे शुद्ध विष्कम्भक और नीच तथा मध्यम दोनों तरह के पात्रों का प्रयोग हो उसे मिश्र-विष्कम्भक मानते हैं—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां सम्प्रयोजितः ।
शुद्धः स्यात् स तु सङ्कीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥

१०. स्वगतम्—

कभी कभी रङ्गमञ्च का पात्र अपने मन की गुप्त बातों को प्रकाश में लाने के लिए दूसरे पात्र की ओर से मुँह फेरकर इस तरह बातें करता है, जिसको दर्शक हो सुन लेते हैं, पर रङ्गमञ्च के अन्य पात्र सुन नहीं पाते। स्वगत पात्र की मानसिक भावनाओं का व्यक्तिगत प्रकाशन होता है।

'अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम् ।

११. प्रकाशम्—

जो बात सबों को सुनाकर या सुनाने के लिए कही जाय उसे प्रकाश कहते हैं—

'सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात् ।

१२. प्रवेशक—

प्रवेशक का प्रयोग नीचपात्रों के द्वारा ही कराया जाता है। इसमें उदात्त रमणीय उक्तियों का अभाव होना चाहिए—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।

१३. अपवारितम्—

जो बात कुछ पात्रविशेष से छिपाकर कुछ पात्रों को कही जाती है, उसे अपवारित कहते हैं—

रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्याऽपवारितम् ।

१४. आकाशभाषितम्—

अभिनेता के उस कथनविशेष को कहते हैं जिसमें वह आकाश की ओर दृष्टि उठाकर कोई प्रश्न इस भाँति करता है, मानो उसी से वह प्रश्न किसी के द्वारा किया जा रहा है। तत्पश्चात् वही उसका उत्तर भी प्रस्तुत करता है।

किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत् ।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम् ॥

१५. अङ्कावतार—

कभी-कभी पात्रों द्वारा एक अङ्क के अन्त में अगले अङ्क के अभिनय का आभास मिलता है। इसी अङ्क को अङ्कावतार कहते हैं।

अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः ।

१६. काञ्चुकीय—

यह रनिवास का संरक्षक वृद्ध व्यक्ति होता है। यह सत्यवादी, कामदोषशून्य, व्यवहारकुशल एवं विवेकशील पुरुष होता है—

ये नित्यं सत्यसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः ।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते मताः ॥

१७. कथावस्तु या इतिवृत्त—

रूपकों का पहला भेदक वस्तु है। इसे ही कथा, इतिवृत्त या कथावस्तु कहते हैं। कथावस्तु (Plot) दो प्रकार की होती है, एक आधिकारिक और दूसरी प्रासंगिक। आधिकारिक कथावस्तु मूल या मुख्य होती है और प्रासंगिक कथावस्तु गौण—

इत्याद्यशेषमिह वस्तुविभेदजातं रामायणादि च विभाव्य बृहत्कथाञ्च ।
आसूत्रयेत्तदनु नेतृरसानुगुण्यां चित्रां कथामुचितचारुवचः प्रपञ्चे ॥

[ग]

प्रतिमानाटक में प्रयुक्त वृत्त के लक्षण

१. इन्द्रवज्रा— स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।

जिस छन्द में दो तगण, एक जगण एवं दो गुरु वर्ण हों, उसे इन्द्रवज्रा कहते हैं।

२. उपजाति— स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः, उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जिस छन्द के चरणों में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों छन्दों के लक्षण चरणभेद से उपलब्ध हों उसे ही उपजाति छन्द कहा जाता है।

३–मालिनी— **ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।**

अर्थात् यदि दो नगण, एक मगण और दो यगण हों, तो उस छन्द का नाम 'मालिनी' होता है।

४. पुष्पिताग्रा— **अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।**

जिस छन्द के विषम चरणों में दो नगण, एक रगण, अनन्तर एक यगण हो और सम चरणों में नगण, जगण, पुनः जगण, रगण उसके आगे एक गुरुवर्ण हो, उसे पुष्पिताग्रा कहते हैं।

५. वसन्ततिलका— **उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।**

जिस छन्द में तगण, भगण पुनः जगण, उसके बाद दो गुरु हों, तो वह वृत्त वसन्ततिलका कहलाता है।

६. वंशस्थ— **जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।**

जगण, तगण, रगण यदि क्रम से हों तो वंशस्थ नामक वृत्त कहा गया है।

७. प्रभा— **स्वरशरविरतिर्ननौ रौ प्रभा।**

दो नगण, दो रगण तथा सात और पांच वर्णों पर विराम जिस छन्द में हो उसे प्रभा कहते हैं।

८. शार्दूलविक्रीडितम्— **सूर्याश्वैर्मसजास्ताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।**

जिस छन्द में मगण, सगण, जगण, सगण, तगणद्वय और एक गुरुवर्ण हो, बारह और सात वर्णो पर यति हो, उसे शार्दूलविक्रीडित नामक छन्द कहते हैं।

९. सुवदना— **ज्ञेया सप्ताश्वषड्भिः मरभनययुता म्लौ गः सुवदना।**

जिस छन्द में मगण, रगण, भगण, नलण, यगण, पुनः मगण, एक लघुवर्ण और अन्त में एक गुरुवर्ण रहे, सात, सात तथा छह वर्णो पर यति हो, उसे सुवदना छन्द कहते हैं।

१०. स्रग्विणी— **रैश्चतुर्भियुंता स्रग्विणी संमता।**

जिस छन्द में चार रगण एक साथ प्रयुक्त हों उस छन्द को स्रग्विणी कहा जाता है।

११. शालिनी— **शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः।**

जिस छन्द में एक मगण, दो तगण, तदनन्तर दो गुरुवर्ण रहें और चार तथा सात वर्णों पर यति हो उसे शालिनी कहते हैं।

१२. प्रहर्षिणी— **म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्।**

यदि क्रमशः मगण, नगण, रगण और अन्त में एक गुरुवर्ण हो तो उसे प्रहर्षिणी नामक वृत्त कहते हैं। इस वृत्त में ३ और १० वर्णों पर यति होती है।

Bhawan's Shankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya Bhartiya Vidya

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१३. शिखरिणी—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।

यगण, मगण- नगण, सगण, भगण इन पाँच गणों के बाद एक लघु और एक गुरु हो और ६ तथा ११ वर्णों पर यति हो तो उस वृत्त को शिखरिणी कहते हैं।

१४. स्रग्धरा—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।

यदि मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, यगण, यगण इस तरह गणन्यास हो और तीन बार प्रति सातवें वर्ण पर यति हो तो उस छन्द को स्रग्धरा कहते हैं।

१५. आर्या— यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या॥

वह एक मात्रिक छन्द है। इसके प्रथम और तृतीय चरणों में १२-१२ मात्रायें तथा द्वितीय चरण में १८ एवं चतुर्थ चरण में १५ मात्रायें रहती हैं।

१६. अनुष्टुप्— पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः।
षष्ठं गुरु विजानीयात् एतत् पद्यस्य लक्षणम्॥

अनुष्टुप् छन्द के प्रत्येक चरण के पाँचवाँ वर्ण लघु, छठा वर्ण गुरु और द्वितीय चतुर्थ चरणों में ७ वाँ वर्ण लघु होता है।

१७. हरिणी— रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा।

जिस छन्द में नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, तदन्तर एक लघु एक गुरु वर्ण हों, छह, चार और सप्तम वर्णों पर यति हो उस वृत्त को हरिणी कहते हैं।

गण सामान्य के लक्षण—

मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः सोऽन्त्यगुरुः कथितोऽन्त्यलघुस्तः॥

इस परिभाषा के अनुसार—

मगण—SSS, नगण ।।।, भगण S।।, जगण ।S।, रगण S।S, सगण ।।S, तगण SS। यही आठ गण हैं। खड़ी पाई से ह्रस्व एवं विकारी (S) से दीर्घ का बोध होता है।

१८. नेता या नायक—

रूपकों का दूसरा भेदक नेता है। नेता शब्द के साथ नायक का सारा परिवार आ जाता है। नायिका, नायक के सभी साथी, नायिका की सखियाँ, प्रतिनायक और उसके साथी सभी नेता के अङ्ग माने गये हैं। अतः किसी भी नाटक का यह मुख्य पात्र होता है। इनकी कुछ विशेषतायें होती हैं—दानशील, पण्डित, सत्कुलप्रसूत, धनवान्, रूप-यौवन-सम्पन्न, उत्साह से परिपूर्ण, चतुर, लोकप्रिय, तेजस्वी और सुशील पुरुष नेता होता है। इन्हें ही नाटक का नायक भी कहा जाता है—

'त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१९. नायिका—

नाटकादि रूपक में नायिका का भी वही महत्त्व है जो नायक का है। नाटिका में नायिका का महत्त्व या व्यक्तित्व अपेक्षाकृत नायक से भी अधिक होता है।

नायकसामान्यगुणैर्युक्ता नायिका।

२०. धीरोदात्त—

धीरोदात्त प्रकृति का नायक भी प्रायः राजा या राजकुलोत्पन्न होता है। वह निरभिमानी, अत्यन्त गम्भीर, स्थिरतया अविकत्थन होता है। जिस व्रत को यह धारण कर लेता है, उसे छोड़ता नहीं है। धीरोदात्तनायक नायक के सम्पूर्ण आदर्शों से युक्त होता है। नाटक का नायक इसी प्रकृति का चुना जाता है। प्रतिमा का नायक इसी कोटि का नायक है।

२१. रस—

'अविकत्थनः क्षमावानतिगंभीरो महासत्त्वः।
स्थेयान् निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः॥'

भारतीय नाट्यशास्त्र में रस की स्थिति भरत से भी पहले से चली आ रही है। दृश्यकाव्य के तीन भेदकों में रस भी एक है। इसकी व्यञ्जना करना सामाजिकों के हृदय में रसोद्रेक उत्पन्न करना दृश्यकाव्य का प्रमुख लक्ष्य है। दृश्यकाव्य में नटों का यही उद्देश्य है कि उनके अभिनय के द्वारा सामाजिकों में रसोद्बोध हो।

वस्तुतः काव्य के पठन, श्रवण या दर्शन से जिस आनन्द का अनुभव हमें होता है, वही आनन्द रस कहलाता है। इसकी निष्पत्ति विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी के संयोग से होती है—

'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।
विभावेनानुभावेन व्यक्तः सञ्चारिणा तथा॥
रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेताम्।
प्रपानकरसन्यायच्चार्व्यमाणो रसो भवेत्॥'

इस सम्बन्ध में महापात्र विश्वनाथ का कहना है कि सहृदयों के हृदय में वर्त्तमान रत्यादि स्थायीभाव विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव की सहायता से अभिव्यक्त होकर प्रपानकरस की तरह आस्वादविषय बनकर [illegible] को प्राप्त होता है।

२२. करुण रस— इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत्।
शोकोऽत्र स्थायिभावः स्याच्छोच्यमालम्बनं मतम्॥

इष्ट वस्तु के विनाश तथा अनिष्ट की प्राप्ति से करुणरस का [illegible] होता है। इसमें शोक स्थायिभाव और शोच्य आलम्बन विभाव होता है—

२३. वीररस— उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावकः।

जिस रस का स्थायिभाव उत्साह हो और जो केवल उत्तम पात्र में ही आश्रित हो, उसे ही वीररस कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Bharatiya Vidya Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya *
565

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कतिपय परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरात्मक ग्रन्थ

साहित्यदर्पणालोकः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री रामजी लाल शर्मा ३०-००
काव्यप्रकाश-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्रीरामजी लाल शर्मा १५-००
चन्द्रालोक-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । मानवल्ली तथा वेताल ३०-००
शिशुपालवध-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) १-४सर्ग । अशोकचन्द्र गौड ३०-००
सांख्यकारिकादर्शः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री राजेन्द्रप्रसाद कोठारी १५-००
अलङ्कारशास्त्रस्येतिहासः (प्रश्नोत्तरात्मकः) श्रीपरमेश्वरदीन पाण्डेय १२-५०
नलचम्पू-रहस्यम्(प्रश्नोत्तरात्मकः)१-५उच्छ्वास । परमेश्वरदीनपाण्डेय २०-००
वेदान्तसार-प्रदीपः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्रीराजेन्द्रप्रसाद कोठारी १५-००
मध्यसिद्धान्तकौमुदी-चन्द्रिका (प्रश्नोत्तरात्मकः) विजयमित्र शास्त्री ७५-००
मृच्छकटिक-सोपानम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । डॉ० नरेश झा २०-००
वेणीसंहार-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) श्री परमेश्वरदीन पाण्डेय १५-००
नैषध-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) १-५ सर्ग । श्री रमाशंकर मिश्र ३५-००
दशरूपक-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) श्री त्रिलोकीनाथ द्विवेदी १७-५०
भट्टिकाव्य-दर्पणः । स्वामी प्रज्ञाभिक्षु १-४ सर्ग २५-००, ५-८ सर्ग १५-००
भट्टिकाव्यालोकः डॉ० रमाशंकर मिश्र १४-१७सर्ग २५-०,१८-२२सर्ग २५-००
भारतीय-संस्कृतिः । लोकमणि दाहाल १५-००
संस्कृतभाषाविज्ञानम् । डॉ० शिवप्रसाद द्विवेदी १५-००
चन्द्रकलानाटिका-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) श्रीपरमेश्वरदीन पाण्डेय १५-००
संस्कृतसाहित्येतिहासः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री परमानन्द शास्त्री १५-००
रसगङ्गाधर-हृदयम् । (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री ज्ञानचन्द्र त्यागी २५-००
लघुसिद्धान्तकौमुदी-चन्द्रिका (प्रश्नोत्तरात्मकः) विजयमित्र शास्त्री ४०-००
कादम्बरी-कलाप्रकाशः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । डॉ० नरेश झा ३०-००
लघुमञ्जूषारहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । स्वामी रामेश्वर पुरी १५-००
शाकुन्तलरहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । त्रिलोकीनाथ द्विवेदी ३०-००
मेघदूत-तत्त्वालोकः (प्रश्नोत्तरात्मकः) डॉ० अशोकचन्द्र गौड़ शास्त्री १५-००
महाभाष्यनवाह्निकालोचनम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) विजयमित्र शास्त्री ३०-००
मुक्तावली-प्रकाशः (न्यायसिद्धान्तमुक्तावली-प्रश्नोत्तरी) ।
श्री राजेन्द्रप्रसाद कोठारी १५-००
औचित्यविचारचर्चा-मञ्जरी (प्रश्नोत्तरात्मकः) । डॉ० नरेश झा १२-५०
वक्रोक्तिजीवितम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) डॉ० नरेश झा ११-५०
भारतीयसंस्कृति-सोपानम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) डॉ० शिवप्रसाद द्विवेदी १५-००